हिन्दी कहानी और कहानीकार

प्रो० वासुदेव, एम.ए

हिन्दी कहानी

और

कहानीकार

लेखक

प्रोफेसर वासुदेव, एम० ए०

प्रकाशक

वाणी-विहार, बनारस

प्रकाशक
वाणी-विहार
बनारस

प्रथमावृत्ति
सितम्बर १९५१
३॥)

मुद्रक
विश्वनाथ प्रसाद (भगतजी)
श्रीराम प्रेस, बुलानाला—बनारस

समर्पण

अपने उन सभी आदरणीय आचार्यों

को

जिनके चरणोंमें बैठकर मैंने

हिन्दी साहित्य

का

अध्ययन किया है।

—वासुदेव

आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की सम्मति

श्रीवासुदेवजीकी पुस्तक 'हिन्दी कहानी और कहानीकार' देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि मुझे पूरी पुस्तक पढ़नेका समय नहीं मिला परन्तु मैंने स्थान स्थानपर पढ़कर इसके सम्बन्धमें जो धारणा बनायी है वह उत्तम कोटिकी है। लेखकमें अन्तर्दृष्टि है और विश्लेषण करनेकी क्षमता भी है। आधुनिक हिन्दी साहित्यके दो अङ्गोंका अच्छा विकास हुआ है—कविता का और कथा-साहित्यका। यह उचित ही है कि हिन्दीके कहानीकारोंकी विशेषताओंका अध्ययन किया जाय। श्रीवासुदेवजीका संकल्प है कि दूसरी पुस्तकमें बहुत हालकी कहानियोंकी भी आलोचना करेंगे। मुझे यह कहते बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि लेखकमें वह अन्तर्दृष्टि और अध्यवसाय विद्यमान है जो आलोचकको बड़ा बनाते हैं। आशा है वे और भी अनेक पुस्तकें लिखकर साहित्यको समृद्ध करेंगे।

काशी
२८-९-५१

हजारीप्रसाद द्विवेदी

मेरी बात

हिन्दी कहानी साहित्यपर आलोचनात्मक पुस्तकोंका अभाव मुझे तभीसे खटक रहा था जब मैं बी. ए. का विद्यार्थी था। प्रस्तुत पुस्तक इस अभावकी पूर्ति करनेका दावा तो नहीं करती लेकिन इससे यदि हिन्दीके सामान्य विद्यार्थियोंको थोड़ा भी लाभ पहुँच सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा। इसमें मैंने हिन्दीके उन्हीं कहानी-कारोंका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिनकी कहानियाँ विश्वविद्यालयोंके हिन्दी पाठ्य-क्रममें सम्मिलित की जाती हैं। उनके अतिरिक्त मैंने उन कहानीकारोंको भी स्थान दिया है जिनका रचना-काल १९३०–३२ के आस-पास आरम्भ हुआ है। आशा है, इसके बादके कहानीकारोंका आलोचनात्मक अध्ययन मैं शीघ्र ही दूसरी पुस्तकमें प्रस्तुत करूँगा।

हिन्दीके जिन आलोचकोंकी पुस्तकोंसे मुझे सहायता मिली है उनका नाम निर्देश मैंने पाठ-टिप्पणीमें यथा-स्थान कर दिया है। इसके लिए मैं उन सभी लेखकोंका हृदयसे आभारी हूँ। मैं अपने आदरणीय मित्र प्रो० अर्जुन चौबे काश्यपके प्रति भी बड़ा कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समयपर हर तरहसे प्रोत्साहन और सहयोग दिया है।

हिन्दी विभाग
गया कालेज
गया
१५ सितम्बर १९५१ ई०

वासुदेवनन्दन प्रसाद

विषय-सूची

—:०:—

हिन्दी कहानी और कहानीकार

कहानीकी परिभाषा—

क्षण-क्षण रूप बदलनेवाली वस्तुको भाषाके चौखटेमें बाँध रखना एक कठिन काम है। जिस तरह प्रेम, ईश्वर, कविता आदिकी अबतक निश्चित परिभाषाएँ नहीं बन सकी हैं, उसी तरह कहानीकी भी एक सुनिश्चित परिभाषा नहीं बतायी जा सकती। कारण स्पष्ट है। रविबाबूने कहा था कि जीवनका प्रतिक्षण एक सार गर्भित कहानी है। कहानी क्या है, उसका स्वरूप क्या है—इन प्रश्नोंपर विद्वानोंके अलग-अलग मत हैं—जितने मुँह उतनी बातें। श्रीयुत् गुलाबरायने ठीक ही कहा है कि 'कहानीकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है, जितना बिहारीकी नायिकाकी तसवीर खींचना, जो चतुर चितेरोंको भी क्रूर बना देता है।' फिर भी कुछ अनुभवी देशी-विदेशी आलोचकोंने अपने सुविधानुसार कहानीकी कुछ परिभाषाएँ बनायी हैं।

पाश्चात्य देशोंमें एडगर एलन पो (Edgar Allen poe) आधुनिक कहानीके जन्मदाता माने जाते हैं। १८४२ ई० में हाथर्नकी कहानी 'Twice told tales' की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा था कि 'A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression, on the reader, excluding all that does not forward that impression, complete and final in itself अर्थात् 'कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि एक बैठकमें पढ़ा जा सके और जो पाठकपर एक ही प्रभावके उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे लिखा गया हो। उसमें ऐसी सब बातोंका बहिष्कार कर दिया जाता

है जो उस प्रभावको अग्रसर करनेमें सहायक न हों। वह स्वतः पूर्ण होता है।' पो महाशयने कहानीकी संक्षिप्ततापर जोर देते हुए बताया है कि किसी भी कहानीको समाप्त करनेमें कम-से-कम आध घंटा और अधिक-से-अधिक दो घंटोंका समय लगना चाहिये। पाश्चात्य कहानी-साहित्यके इतिहासमें कहानीकी उक्त परिभाषा सर्वथा नवीन और मौलिक सिद्ध हुई है। तबसे कहानी-लेखकोंके दृष्टिकोण और कहानीके रूपमें परिवर्तन होते रहे हैं। यद्यपि पो महाशयकी कहानी-परिभाषाका उतना गहरा प्रभाव उसके परवर्ती लेखकोंपर नहीं पड़ा तथापि सबने एक स्वरसे कहानीकी संक्षिप्तताको अवश्य स्वीकार किया है। आधुनिक अमेरिकन कहानीकारोंने तो यह नियम-सा बना लिया है कि सफल और श्रेष्ठ कहानी लिखनेके लिए कम-से-कम एक सौ शब्दोंका और अधिक-से-अधिक पन्द्रह सौ शब्दोंका व्यवहार होना चाहिये। अमेरिकन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेवाली कहानियाँ एक पृष्ठसे अधिक लम्बी नहीं होतीं।

पो महाशयकी उपर्युक्त परिभाषा वर्तमान कहानीकारोंको स्वीकार नहीं है। कहानीमें समयकी लम्बाईपर ही ध्यान नहीं दिया जाता वरन् इसके अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं जिनपर आजके कहानीकारोंका ध्यान जाने लगा है। हिन्दीके कुछ कहानीकारोंने कहानीकी विषयगत और उद्देश्यगत परिभाषाएँ बनायी हैं। इस ओर प्रेमचन्दने ही पहली बार ध्यान दिया।

हिन्दी कहानी लेखकोंमें प्रेमचन्दका स्थान सबसे ऊँचा है। इसलिए कहानीकी जो व्याख्या उन्होंने की है वह आज भी पुरानी नहीं है। उनका कहना है कि "कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवनके किसी एक अंग या किसी एक मनोभावको प्रदर्शित करना ही लेखकका उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एकभावको पुष्ट करते हैं। उपन्यासकी भाँति उसमें मानव-जीवनका सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखानेका प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यासकी भाँति सभी रसोंका सम्मिश्रण ही होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँतिके फूल, बेल, बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधेका

माधुर्य अपने समुन्नत रूपमें दृष्टिगोचर होता है।" "कहानीकला और प्रेमचन्द"के लेखक प्रो० श्रीपतिशर्माने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'कहानीकी इतनी सुन्दर व्याख्या शायद ही किसीने की हो।[१]

प्रेमचन्दके बाद दूसरे श्रेष्ठ हिन्दी कहानीकार श्रीजैनेन्द्र कुमारने कहानीकी परिभाषा, अपने ढंगपर दी है। इनकी दृष्टिमें कहानी मनुष्यके चिरंतन प्रश्नों, शंकाओं और चिन्ताओंके उचित समाधानकी खोज है। श्रीजैनेन्द्रके शब्दोंमें 'कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समाधान पानेकी कोशिश करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं, चिन्ताएँ होती हैं, और हमीं उनका उत्तर, उनका समाधान खोजनेका, पानेका, सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। उदाहरणों और मिसालोंकी खोज होती रहती है। कहानी उस खोजके प्रयत्नका एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर तो नहीं दे देती, पर यह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है और पाठक अपनी चिन्तन-क्रियाके सहारे उस सूझको ले लेते हैं।'[२]

हिन्दी कहानी-साहित्यके तीसरे श्रेष्ठ और कुशल कहानीकार श्री 'अज्ञेय' ने कहानीकी परिभाषा इस प्रकार दी है जो उनकी व्यक्तिगत मनोवृत्तिकी परिचायक है—'कहानी जीवनकी प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है, जो उम्रभर मिलती है और समाप्त नहीं होती।' उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि 'कहानीकार एक प्रकारके मानसिक संघर्षमें जीता है। संघर्ष कलाकी जननी है। यह संघर्ष संकल्प और परिस्थितिमें चला करता है। संघर्ष प्रगतिको जन्म देता है।' इसी प्रकार एक विद्वान् कहानीकार श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने लिखा है कि "घटनात्मक इकहरे चित्रणका नाम कहानी है और साहित्यके सभी अंगोंके समान रस इसका आवश्यक गुण है।" कहानीकी इस परिभाषामें दो बातोंपर विशेष बल दिया गया है—(१) घटनात्मक इकहरे चित्रणका नाम कहानी है (२) रस

* १कहानी-कला और प्रेमचन्द, पृ. १३ * २.जैनेन्द्रके विचार पृ. २७३

कहानीका आवश्यक गुण है। वर्तमान कहानीकारोंके सामने यह प्रश्न है कि कहानीमें घटनाओंका समावेश होना चाहिये या नहीं। हिन्दीके कहानीकारोंके बीच इस प्रश्नके सम्बन्धमें विचारोंकी एकता नहीं है। प्रेम-चन्दने अपनी कहानियोंमें घटनाओंका अत्यधिक वर्णन किया है; हाँ, पीछे चलकर, धीरे-धीरे ये सूक्ष्म और पतली होती गयी हैं। श्री जैनेन्द्र कुमारने अपनी कहानियोंमें घटनाओंके विविध रूपोंके विधानकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इसीलिए इनकी कहानियोंमें घटनाएँ रेगिस्तानमें उगे हुए ओयसिसके समान आती हैं, जिनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। सच तो यह है कि कहानीमें घटनाओंकी हम चाहे कितनी ही उपेक्षा क्यों न करें लेकिन एक केन्द्रीय घटना—चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल-का होना बहुत आवश्यक है। घटना या घटनाओंकी आधारशिलापर ही कहानीका भवन खड़ा किया जाता है।

वर्तमान कहानीकारोंके सामने दूसरा विकट प्रश्न यह है कि क्या प्राचीन साहित्यकी तरह कहानीका उद्देश्य भी रसका परिपाक है? इसके सम्बन्धमें भी विद्वानोंके मत एक नहीं हैं। प्रो० शिवनन्दन प्रसादजीके शब्दोंमें "रस कविताका प्रधान गुण है, लेकिन यद्यपि रसात्मक व्यंजनाका अन्तःसूत्र कहानी में भी अवश्य वर्तमान होना चाहिये, फिर भी कहानीका उद्देश्य रस-व्यंजना नहीं। उसका उद्देश्य मानव-जीवनकी विभिन्न परिस्थितियों और मानव-मनके विविध रहस्योंके उद्‌घाटन द्वारा जीवनकी व्याख्या करना है। इसलिए कहानीमें प्रासंगिक रूपसे शृंगार, वीर, करुण, हास्य आदि सभी प्रमुख रस आ सकते हैं, पर कथा-सूत्रके विकासके मूलमें अद्‌भुत-रस ही रहता है जिसके प्रभावसे पाठकोंका कौतूहल जाग्रत होता है।"[1] अतः इस विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि कहानीमें रस प्रधान नहीं है; इसमें चाहे तो किसी एक घटनाकी प्रधानता होगी या चरित्रकी या दोनोंकी।

१ कहानीके तत्व, पृ, ३

आधुनिक कहानीकार प्राचीन साहित्यकार नहीं है। वह प्राचीनोंके समान पाठकोंके मनमें रसकी अनुभूति उत्पन्न कर लोकोत्तर आनन्दकी सृष्टि करनेके लिए कहानियाँ नहीं लिखता। साथ ही, वह मध्ययुगीन कहानीकारोंकी तरह विचित्र और कौतूहल-पूर्ण अस्वाभाविक घटनाओंका रंगीन वर्णन नहीं करता। वर्तमान कहानीकारोंका विषय है, जर्जर और विषण्ण मानव-जीवन—उसकी समस्याएँ, चिन्ताएँ और समाधान। श्री जैनेन्द्र कुमारने कहानीकी जो परिभाषा दी है उसपर हम वर्तमान मानव-जीवनकी विषम समस्याओंकी छाप पाते हैं। उनकी कहानियाँ वर्तमान परिस्थितियोंकी उपज हैं। इसलिए अज्ञेयजीने अपनी बातको स्पष्ट करते हुए ठीक ही लिखा है कि 'कहानी जीवनकी प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है।' प्रेमचन्दने भी 'मानव-जीवन' शब्दका व्यवहार कर यह बतला दिया है कि कहानीका चरम उद्देश्य जीवनके किसी एक पहलू या खण्डका मार्मिक चित्रण करना है। कहानी 'हास्य-की भाँति संक्षिप्त' हो, यह सही बात है, लेकिन उसमें जीवनके किसी गहनतम प्रश्नका उद्घाटन होता है, यह न भूलना चाहिये। वह अपने छोटे मुँहसे बड़ी बात कहती है। यह सच है कि कहानी पाठकोंके मनोरंजनके लिए उचित सामग्रियोंका संग्रह करती है। लेकिन श्रीयुत् राय कृष्णदासके शब्दोंमें 'वह (कहानी) मनोरंजनके साथ-साथ अवश्य किसी-न-किसी सत्यका उद्घाटन करती है।'

हम ऊपर कह आये हैं कि कहानीकी निश्चित परिभाषा स्थिर करना कितना कठोर कार्य है। लेकिन उपर्युक्त जिन विद्वानों और कहानीकारोंकी परिभाषाएँ मैंने उद्धृत की हैं उनसे यह स्पष्ट है कि वर्तमान कहानीकी परिभाषा उसके उद्देश्य और विषयको लेकर ही निश्चित की जा सकती है। आरंभमें जहाँ कहानीकी परिभाषा शैलीगत थी, वहाँ आज विषयगत है। प्रेमचन्दने एक स्थानपर लिखा है कि 'वर्तमान कहानीका आधार मनोविज्ञान है।' यह मनोविज्ञान मानव-मनमें पड़ी उलझी गाँठोंको खोलनेमें अथक परिश्रम कर रहा है।

प्रत्येक युगकी अपनी समस्या होती है। डा० रामरतन भटनागरने ठीक ही कहा है कि 'आज यदि यह आग्रह है कि कहानीका मनोविज्ञानसे कोई-न-

कोई सम्बन्ध अवश्य हो तो कल यह आग्रह था कि उसका धर्म या नीतिसे कोई-न-कोई सम्बन्ध हो ही। वास्तवमें, कहानीके उद्देश्य, विषय या टेकनीकको लेकर उसकी परिभाषा नहीं बनायी जा सकती। कहानीका क्षेत्र इतना विस्तृत है–विषय और शैली दोनोंकी दृष्टिसे, कि हम किन्हीं दो चार वाक्योंको कहानीकी परिभाषाके रूपमें नहीं गढ़ सकते।' [1]

उद्देश्य, विषय और टेकनीककी दृष्टिसे यदि हम कहानीकी परिभाषापर विचार करते हैं तो समस्या और भी कठोर हो उठती है। इसलिए इस गति-रोधको दूर करनेके लिए सबसे पहले कहानीके स्वरूपको समझना होगा क्योंकि साहित्यके कुछ ऐसे अन्य अंग हैं जो इसकी प्रतियोगितामें सक्रिय रूपसे भाग लेते हैं।

आधुनिक कहानीका स्वरूप

कहानीका वास्तविक स्वरूप जाननेके लिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि साहित्यके अन्य अंगोंके साथ इसका संबंध क्या है।

कहानी और उपन्यास—प्रायः ऐसा कहा जाता है कि 'Short story is the coming form of fiction and ultimately it will displace the novel entirely[2]? इसी बातको श्रीयुत गुलाबरायने यों कहा है 'कहानी अपने पुराने रूपमें उपन्यासकी अग्रजा है और नये रूपमें उसकी अनूजा। वृत्त या कथा-साहित्यकी वंशजा होनेके कारण कहानी और उपन्यास दोनोंमें कई बातोंकी समानता है। दोनों ही कलात्मक रूपसे मानव-जीवनपर प्रकाश

---

१. प्रबन्ध पूर्णिमा, पृ. ७८-७९,

२ Introduction to literature-Hudson.

डालते हैं।'[1] प्रश्न यह उठता है कि क्या कहानी छोटा उपन्यास है या उपन्यास बड़ी कहानी है। श्रीगुलाबरायके शब्दोंमें 'ऐसा कहना वैसा ही असंगत होगा जैसा चौपाये होनेकी समानताके आधारपर मेंढकको छोटा बैल और बैलको बड़ा मेंढक कहना। दोनोंके शारीरिक संस्कार और संगठनमें अन्तर है। बैल यदि चार पैरोंपर समान बल देकर चलता है' तो मेंढक उछल-उछलकर रास्ता तय करता है।' वस्तुतः कहानी और उपन्यासमें मूल अन्तर वही है जो बैल और मेंढकमें है। अतएव, कहानीको उपन्यासका 'coming form' कहना युक्ति संगत न होगा।

उपन्यास और कहानीके रूप, विषय, उद्देश्य और विधानमें जो भी समानताएँ हों, लेकिन दो बातें ऐसी हैं जिनके आलोकमें यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि कहानी सदैव कहानी बनी रहेगी और उपन्यास सदा उपन्यास बना रहेगा। दोनोंके अस्तित्वपर किसी किस्मका खतरा है ही नहीं। पहली बात यह है कि कहानीमें जहाँ जीवनकी एक झलक दिखलानेकी चेष्टाकी जाती है वहाँ उपन्यासमें जीवनकी विशद्, और विषम विविधताओंका चित्रण होता है। उपन्यासकार वह शिकारी है जो अपने निशानेकी चिड़ियों के साथ-साथ उसके आस-पासमें बैठी हुई दूसरी चिड़ियोंको तथा उसके आस-पासके दृश्य वातावरण, जहाँतक उसकी दृष्टि जा सकती है, का निरीक्षण करता है। इसके विपरीत, कहानीकार धनुर्विद्या-विशारद वीर अर्जुनकी भाँति अपने निशानेको अचूक बनानेके लिए केवल आँखका और ज्यादा-से ज्यादा सिरको, जिसमें आँख अवस्थित है, लक्ष्यकर तीर छोड़ता है। कहानी और उपन्यासमें यही मौलिक अन्तर है। दूसरी बात यह है कि कहानीमें जहाँ व्यक्ति या चरित्रके किसी एक पहलू या व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति होती है वहाँ उपन्यासमें उसका विकास होता है। अतएव, यह ठीक ही कहा गया है कि 'in short story character is revealed, not developed' कहानीमें चरित्रका 'revelation' (अभिव्यक्ति) होता है और उपन्यासमें उसका 'development' 'और evolution'

---

१. काव्यके रूप पृ० २०६, ३२६

दोनोंमें तात्त्विक अन्तरका यही कारण है। ऐसी हालतमें कहानीको 'उपन्यासकी अनूजा' कहा ही नहीं जा सकता।

कहानी और उपन्यासमें जो मौलिक भेद है वह है शिल्प-विधान (Techinique) का। "वातावरणका विस्तार, जीवनकी अनेक रूपता, प्रासंगिक कथाओंके तारतम्यके कारण कथा-प्रवाहका बहुशाखा होकर अन्तकी ओर अग्रसर होना, पात्रोंका बाहुल्य आदि बातें जो उपन्यासमें श्लाध्य या कम-से-कम क्षम्य समझी जाती हैं, कहानीमें अग्राह्य हो जाती हैं।"...इसके अतिरिक्त, "कहानीकार अपने पाठकको अन्तिम संवेदनातक शीघ्रातिशीघ्र ले जाता है और एक साथ पर्दा उठाकर सजी-सजाई झाँकीकी मोहक एवं आकर्षक छटासे मनोमुग्ध कर देता है। वह बीच-बीचमें रहस्योद्‌घाटन नहीं करता, एक दो संकेत चाहे कर दे, किन्तु अन्तिम क्षणतक बातको पेटमें पचाये रखता है।" कहानीकार यदि संश्लेषक है, तो उपन्यासकार विश्लेषक। दोनोंमें इतना ही अन्तर है। प्रेमचन्दने ठीक ही कहा है कि 'कहानी ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँतिके फूल, बेल, बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधेका माधुर्य अपने समुन्नत रूपमें दृष्टिगोचर होता है।' इन बातोंसे यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि कहानीका स्वरूप उपन्यासकी अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। दोनोंके उद्देश्य और शिल्प–विधानमें भारी अन्तर है।

कहानी और गीतिकाव्य–एकध्येता और वैयक्तिक दृष्टि-कोणकी प्रधानताके कारण दोनोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहानीकार और गीतकार दोनों अन्तिम तथ्यके विन्दुकी झलक पहले ही प्राप्त कर लेते हैं। दोनोंके हृदयमें बिजलीकी आकस्मिक चमककी भाँति एक विशेष अनुभूतिमय भावका स्फुरण होता है। दोनों इसी भावको साकार रूप देनेका प्रयास करते हैं। अतएव, यदि यह कहा जाय कि कहानी कहानीकारकी क्षणिक भावानुभूतिका परिणाम है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। दोनोंमें इतनी समानता होनेपर भी कहानी और गी.त-काव्यमें जो मूल अन्तर बना ही रहता है वह यह कि कहानीकार अपने भावोंको स्वाभाविक और सजीव बनानेके लिए ठोस धरातल खोज ही लेता है; गीतकारके भाव निरवलम्ब होते हैं। वह भावनाके आकाशमें पंख खोल-

कर उड़ने लगता है। गीतिकाव्यका आधार है संगीत और कहानीकारका अधार है यथार्थ जीवन। कहानीमें भावुकताके लिए कम-से-कम स्थानकी गुंजाइश रहती है। गीतिकाव्यका रचयिता कवि होता है, कहानीका सृष्टिकर्त्ता एक सामाजिक प्राणी। कवि और कथाकारके व्यक्तित्वमें अन्तर होता है। इस सिलसिलेमें प्रिन्सपल वेणीमाधव मिश्रने अपने एक लेख 'कवि और कथाकार' में कवि और कथाकारके बीच जो तात्विक अन्तर है, उसका बड़ा ही मौलिक और सुन्दर निरूपण किया है। उस लेखसे उनकी पंक्तियोंको ज्यों-की त्यों यहाँ उद्धृत कर लेनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता हूँ। कविके कार्य-क्षेत्र-पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है कि "कवि अपने अहम्‌की भावनाओं को शेष सृष्टिके साथ मिलाकर देखता है।...कवि अपने व्यक्ति-सीमित अहम्‌के सहारे ही अपने चतुर्दिक् व्याप्त वातावरणकी छान-बीन करता है। उसकी व्यक्तिगत अनुभूति या तो उस वातावरणसे टकरा पड़ती है या कहीं मेल भी खा जाती है। जहाँ वह मेल खा जाती है वहाँ वह हर्षित-पुलकित हो अपनी भावनाको गानके रूपमें अभिव्यक्त कर देता है, जहाँ उसकी भावनाओं-के साथ वातावरण टकरा पड़ता है वहाँ वह विषण्ण हो जाता है, खीझ उठता है, म्लान हो जाता है, फुफकार उठता है या फिर अपने मनकी एक अलग दुनिया बसानेमें तल्लीन हो जाता है।......कथाकार इसके विपरीत, सृष्टि नहीं, सृष्टिके सामाजिक जीवनके साथ अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करता है। उसमें पैठकर वह वहाँकी असंगतियों, अभावों, अभियोगों और समस्याओंपर दृक्‌पात करता है। अपने व्यक्तित्वको वह स्वयं सीमित न रखकर क्रियाशील जगज्जीवनके बीच रखकर परिस्थिति-की जाँच करता है। तब अपनी भावनाके अनुरूप इसी भौतिक जगत्‌के सहारे अपनी दुनिया खड़ी करता है जो कि हमारे दृश्य जगत्‌से प्रायः अभिन्न हो। इसलिए कहानीकारके लिए यथार्थताका प्रश्न बड़ा महत्व-पूर्ण है। उसका चित्रित लोक जितना ही यथार्थ होगा, उसकी कला उतनी ही सफल मानी जायगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कथाकारको वस्तुनिष्ठ होना पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि जहाँ कविकी सफलता अधिका-धिक आत्मनिष्ठतापर निर्भर करती है वहाँ कथाकारकी सफलता वस्तुनिष्ठता-

में निहित है। इस प्रकार दोनोंका अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इससे यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिये कि दोनों कवि और कथाकार—एकान्त भावसे अपने-अपने क्षेत्रमें कीलित रहते हैं। नहीं, दोनोंमें, मात्राका अन्तर होता है। कवि भी वस्तुनिष्ठ हो सकता है और कथाकार भी आत्मनिष्ठ हो सकता है, पर प्रमुख रूपमें वह ऐसा नहीं होगा। जब हम कोई कहानी या उपन्यास पढ़ते हैं तब यह अनुभव नहीं करते कि यह बात हमारे मनकी है, वरन् ऐसा अनुभव करते हैं कि हाँ, ऐसा ही तो होता है।" [1] इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि कहानीकारकी दृष्टि मिट्टीकी ओर होती है और कविकी आकाशकी ओर। कहानीके स्वरूपकी यह बहुत बड़ी विशेषता है।

इतिहास और कहानी—दोनोंका सम्बन्ध भूतकालसे होनेके कारण इन्हें समानधर्मी बताया जाता है। जीवनका प्रत्येक बीता हुआ क्षण हमारे लिए इतिहास बनता जा रहा है। कहानी इन्हीं क्षणोंको अनुभूतिके माध्यमसे व्यक्त करती है। इतना सूक्ष्म अन्तर होनेपर भी दोनोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। श्रीयुत् पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीके शब्दोंमें "इतिहास और कथा दोनोंमें मनुष्य-जीवनका वर्णन रहता है, पर दोनोंके उद्देश्य भिन्न हैं। इतिहासका मुख्य उद्देश्य है अतीत कालका वर्णन करना। यह मनुष्यमात्रका स्वभाव है कि वह अपने गौरवकी स्मृति-रक्षाके लिए कुछ-न-कुछ अवश्य प्रयत्न करता है। वह चाहता है कि लोग उसके गौरवको न भूलें। इतिहासका आरम्भ इन्हीं कथाओंसे होता है। इन कथाओंका उद्देश्य चरित्रगत गुरुताकी रक्षा करना है। इनके लिए घटना गौण है। इन्हें किसी घटनाका यथार्थ वर्णन करना नहीं है, इन्हें मानवीय चरित्रकी गुरुता बतलानी है।......उन सबमें चरित्रका माहात्म्य है। प्रारम्भमें इतिहास और कहानीमें कोई भेद नहीं था। परन्तु पीछेसे भेद हो गया। कहानीमें कल्पनाकी प्रधानता होती है और इतिहासमें सत्यकी।"

इतिहास और कहानीमें दूसरा मौलिक अन्तर यह है कि "इतिहासमें व्यक्तिका स्थान गौण है, मुख्य स्थान है समाज और जातिका। कहानीमें

---

१. 'समाज', १२ अगस्त १९४८ ई०

मुख्यता व्यक्तिकी रहती है। कला और विज्ञानमें यही भेद है। विज्ञान सिद्धान्तोंकी सृष्टि करता है और कलामें मनुष्य अपनी कर्तव्य शक्तिसे-व्यक्तित्व-की महत्ता प्रकट करता है।" अतः इतिहास विज्ञान है और कहानी एक कला।

तीसरी बात यह है कि "इतिहासमें मनुष्योंके सार्वजनिक कृत्योंकी ही आलोचना की जाती है। परन्तु कहानीमें मनुष्यकी चिरन्तन घटनाएँ और उनकी उच्चतम अभिलाषाएँ छिपी रहती हैं।"

चौथी बात यह है कि "जबसे पृथ्वीपर मनुष्य-जाति अवतीर्ण हुई है तबसे कहानीका आरम्भ हुआ है। इतिहास देश और कालको ही लेकर व्यस्त रहता है। उसमें सत्यका जो रूप परिस्फुट होता है वह देश और कालसे परिमित रहता है। देश और कालको छोड़ देनेसे इतिहासका सारा गौरव नष्ट हो जाता है। परन्तु कथामें जो सत्य सन्निहित है वह देश और कालसे अपरिच्छिन्न है।"[१] इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि कहानी इतिहास नहीं है। जो कहानीकार इतिहासके आधारपर कहानीकी रचना करता है वह इतिहासमें व्यक्तिकी महत्ता देखना चाहता है।

कहानी और एकाङ्की—डॉ० नगेन्द्रने एकाङ्कीके बारेमें लिखा है कि "स्पष्टतया एकाङ्की एक अंकमें समाप्त होनेवाला नाटक है और यद्यपि इस अंकके विस्तारके लिए कोई विशेष नियम नहीं है, फिर भी कहानीकी तरह उसकी एक सीमा तो है ही।······एकांकीमें हमें जीवनका क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षणका चित्र मिलेगा।" एकांकीकी इस व्याख्यासे यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी और एकांकीमें किसी तरहका मौलिक अन्तर नहीं है। दोनों एक ही चीज हैं। दोनोंका अन्त आकस्मिक होता है। दोनों-के उद्देश्य और दृष्टिकोणमें कोई अन्तर नहीं है। लेकिन जहाँतक उसकी टेकनीक और रूप-रचनाका प्रश्न है वहाँ दोनोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। डॉ० सत्येन्द्रके शब्दोंमें "एकांकी कहानी नहीं है।"[२] एकांकीका प्राण कथोपकथन

१. नवकथा परिचय, पृ. ९–१२. २. हिन्दी एकांकी, पृ. १३५.

(Dialoque) है यह जितना संक्षिप्त मर्मस्पर्शी वाक् वैदग्ध-युक्त और चरित्रकी चारित्रिकताको प्रकट करनेवाला होगा, एकांकी उतना ही सफल सिद्ध होगा। कहानीके लिए कथोपकथन आवश्यक तत्त्व नहीं है। इसके लिए आवश्यक तत्व है कहानीकारकी विश्लेषणात्मक शक्ति। आधुनिक युगके विश्व गद्य-साहित्यमें एकांकी और कहानीका जितना आशातीत विकास हुआ है उतना साहित्यके अन्य अंगोंका नहीं। दोनोंमें बड़ा ही सूक्ष्म अन्तर है। फिर भी इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि एकांकी दृश्यकाव्यके अन्तर्गत आयेगा और कहानी श्रव्यकाव्यके अन्तर्गत रहेगी। दोनोंके अस्तित्व-पर किसी तरहका खतरा नहीं है। दोनोंका अपने अपने क्षेत्रमें एकछत्र राज्य है। दोनोंके बीच किसी तरहकी प्रतियोगिता नहीं है।

कहानी और रेखा-चित्र (Sketch) श्रीयुत गुलाबरायके शब्दोंमें "रेखा-चित्र कहानीके बहुत निकट होते हुए भी उससे भिन्न है। रेखा-चित्रमें एक ही वस्तु या पात्रका चित्राङ्कन रहता है और वह एक प्रकारसे स्थायी होता है। कहानीमें गत्यात्मकता रहती है। स्केचमें वर्णन (Description) का प्राधान्य रहता है। कहानीमें वर्णनके साथ कुछ प्रबन्धात्मक कथन (Narration) भी रहता है। कहानीमें एक विशेष गति रहती है। उस काल-क्रमका विकास रहता है अर्थात् वह चलता हुआ दिखाई देता है। रेखा-चित्रमें इस बातका अभाव-सा रहता है। कहानीमें जितना काल-क्रम घटता जाता है उतनी ही वह रेखा-चित्रके निकट आ जाती है।"[१]

कहानी, कथा, आख्यायिका और आख्यान—हिन्दीमें इन समानार्थी शब्दोंका प्रयोग धड़ल्लेके साथ होता है लेकिन इनके बीचके बारीक अन्तरको बहुत कम लोग समझते हैं। प्रत्येक शब्दका अपना अस्तित्व और विशेषता होती है। 'कहानी' शब्द आधुनिक आविष्कार है। 'कथा', 'आख्यायिका' और 'आख्यान'—इन शब्दोंका अस्तित्व संस्कृत साहित्यमें सुरक्षित है। संस्कृतके आचार्योंने इन शब्दोंके बीच अर्थका अन्तर बतलाया है। ये सभी साहित्यके अभिन्न अंग हैं। लेकिन इनके अस्तित्वकी अपनी अलग-अलग

१ काव्यके रूप, पृ० २०९-१०

विशेषता है। अतएव, आज इस बातकी आवश्यकता है कि हम इन शब्दोंके प्रयोगमें काफी सावधान हों। कहानी न तो आख्यान है और न आख्या यिका। आधुनिक अर्थमें कहानी 'कथा' भी नहीं है।

"संस्कृत गद्य-साहित्यके, प्रधान रूपसे, दो विभाग किये गये हैं—'कथा' और 'आख्यायिका'। दण्डीके अनुसार इनमें निम्नलिखित भेद होते हैं—(१) कथा-कवि कल्पित होती है; आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्तपर अवलम्बित। (२) कथामें वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई रहता है; आख्यायिकामें नायक स्वयं वक्ता होता है। आख्यायिकाको हम एक प्रकारसे आत्म-कथा कह सकते हैं। (३) आख्यायिकाका विभाग अध्यायोंमें किया जाता है, जिन्हें उच्छ्‌वास कहते हैं, तथा उसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छंदके पद्योंका समावेश रहता है, पर कथामें नहीं। (४) कथामें कन्याहरण, संग्राम, विप्रलंभ, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयोंका वर्णन रहता है, पर आख्यायिकामें नहीं। (५) कथामें लेखक किसी अभिप्रायसे कुछ ऐसे विशेष शब्दों (catchwords) का प्रयोग करता है जो कथा और आख्यायिकामें भेद स्थापित करते हैं।"[१]

इसी तरह "विश्व-साहित्यमें भारतके आख्यान—साहित्यका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।....इन आख्यानोंमें नाटकों या महाकाव्योंकी भाँति प्रख्यात पौराणिक अथवा ऐतिहासिक पात्रों या कथानकोंका उपयोग नहीं हुआ है। इन आख्यानोंमें शुद्ध काल्पनिक जगत्‌का चित्रण किया गया है। उसमें कहीं कुतूहल है, कहीं घटना-वैचित्र्य है, कहीं हास्य और विनोद है, कहीं गम्भीर उपदेश है और कहीं काव्यकी मधुर झलक भी है। पाश्चात्य विद्वानोंने हमारे आख्यान साहित्यकी मौलिकता एवं मनोरंजकताकी मुक्तकंठसे प्रशंसाकी है।

"संस्कृत आख्यान-साहित्य दो भागोंमें विभाजित किया गया है—
नीति-कथा (Didactic Fable) और लोक-कथा (Popular Tale)

नीति-कथा—नीति कथाओंका प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान है। इनमें पशु-पक्षी मनुष्योंके समान ही सारे कार्य करते हैं। मनुष्योंकी भाँति वे बोलते हैं, मनुष्योंके सरीखे वे व्यवहार करते हैं

१ संस्कृत-साहित्यकी रूपरेखा, पृ०,२०६

और मनुष्योंके समान ही वे आपसमें प्रेम, कलह, युद्ध या सन्धि करते हैं। नीति-कथाओंकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें एक प्रधान कथाके अन्तर्गत कई गौण कथाओंका भी समावेश होता है। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' नीतिकथाओंके अन्तर्गत आते हैं।

लोक-कथा—नीति-कथाओंकी विशेषताएँ लोककथाओंमें भी दीख पड़ती हैं, किन्तु दोनोंमें प्रधान अन्तर यह है कि नीतिकथाएँ उपदेश-प्रधान होती हैं और लोककथाएँ मनोरंजन-प्रधान। साथ ही, लोककथाओंके पात्र पशु-पक्षी न होकर प्रायः मनुष्य ही होते हैं। जिस प्रकार नीतिकथाओंमें पंचतंत्र-का स्थान सर्वोपरि है, उसी प्रकार लोककथाओंमें गुणाढ्यकी बृहत्कथा, का स्थान अग्रगण्य है"। [१]

१९ वीं शताब्दीके पहलेतक विश्व-साहित्यमें कहानीको लोग 'कथा' 'आख्यायिका और 'आख्यान' समझते थे। वस्तुतः अंग्रेजीमें 'Short story शब्दकी उत्पत्ति १६ वीं शताब्दीमें ही हुई। इसके पहले अंग्रेजी-साहित्यमें 'Tales', 'sketches' 'vigueltes', 'essays' जैसे शब्दोंका प्रयोग, कहानीके स्थानपर होता था। डिकेन्सने अपनी पुस्तकको 'Tales of two cities' कहा है एडिसनने 'Sketches from Addision', चार्ल्सलैम्बने 'Essays from Ellia'। सम्पादक टी० शिपलेने (T. Shipley) ने भी लिखा है कि " It is the 19th century that the narrative from currently known as 'short story' emerged ...... Most short story of the 19th century continued to be loosely constructed. The very term 'story' was seldom employed, short narratives being generally called 'tales', 'sketches', 'viquettes' or even 'essays."[२] यही बात हिन्दी साहित्यमें भी हुई। हिन्दीमें आधुनिक

---

१ संस्कृत साहित्यकी रूपरेखा पृ. २९५, ३०२। २ Dictionary of world literature. पृ. ५२२.

कहानीकी कला पश्चिमसे बंगालके रास्तेसे होकर आयी है। १९वीं शताब्दी-के अन्ततक हमारे साहित्यमें कथा, आख्यायिका और आख्यान ही लिखे जाते थे। संस्कृतके आख्यान-साहित्यने १९वीं शताब्दीके हिन्दी लेखकोंको काफी प्रभावित किया था। २० वीं शताब्दीके प्रारम्भसे हिन्दीमें जिस तरह-की कहानियाँ लिखी जाने लगी हैं वे प्राचीनकथा साहित्यसे बिलकुल भिन्न हैं। लेकिन खेद इस बातका है कि हिन्दीवाले कहानी तथा आख्यायिका आदिके बीच किसी तरहका भिन्न अर्थ न मानकर, शायद अज्ञानवश, सबको एक ही अर्थमें उन शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

वर्तमान कहानी प्राचीन कथा, आख्यायिका आदिसे बिलकुल भिन्न वस्तु है। उसकी कला, उसका विधान, उसकी भाषा, उसकी शैली सब कुछ नयी है। प्राचीन साहित्यसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्य-प्रवर पं० हजारी प्रसाद द्विवेदीने ठीक ही कहा है कि "यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृतकी कथा और आख्यायिकाओंकी सीधी सन्तान हैं। एक युग. गया है जब 'कादम्बरी' और 'दशकुमार-चरित' की रीतिपर सभी प्रान्तीय भाषाओंमें उपन्यास लिखे गये थे। कहीं-कहीं तो उपन्यासका पर्यायवाची शब्द ही कादम्बरी है। हिन्दीमें श्री शिवनन्दन सहायके उपन्यास और 'हृदयेश' की कहानियाँ उसी रीतिपर अर्थात् शब्दोंमें झंकार देकर गद्य-काव्य बनानेका उद्देश्य लेकर लिखी गयी थीं। पर शीघ्र ही यह सर्वत्र भ्रम टूट गया।"[1]

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि कहानी न तो उपन्यासका छोटा रूप है और न गीतिकाव्यकी तरह वह एक विशेष अनुभूतिमय भावका स्फुरण; वह न तो इतिहासकी भूतकी घटनाओंका संग्रह है और न एकांकीकी तरह आकर्षक और प्रभावशाली कथोपकथनोंसे युक्त दृश्यावली दिखलानेका प्रयत्न। कहानी रेखा-चित्र भी नहीं है वह आख्यायिका, आख्यान, कथा, कुछ भी नहीं है। उसका अपना स्वरूप है, अपनी गतिविधि है। वह आधुनिक युग-की उपज है। "इस नवीन साहित्यांगका कथा आख्यायिका आदिसे जो-मौलिक अन्तर है वह आदर्शगत है।" इस वैज्ञानिक युगने व्यक्तिको पूर्ण

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ. ६७

रूपेण स्वाधीन बना दिया है। वर्तमान कहानी-साहित्य इसी वैयक्तिक स्वाधीनताका चरम आदर्श है। आजका प्रत्येक कहानीकार अपनी कहानियोंमें अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं, धारणाओं, और चिन्ताओंको मूर्त रूप देनेकी चेष्टा करता है। वह आजकी मौजूदा हालतको भुलाकर भविष्यकी कल्पना नहीं कर सकता। वह वर्तमानपर जमा रहता है कविकी तरह जमानेके आगे रहनेका दावा नहीं कर सकता। प्रेमचन्दकी कहानियोंको पढ़नेका अर्थ है भारतके गाँवोंको सच्चे रूपमें देखना। प्रत्येक देशका कहानी–कार अपने युग और समयका प्रतिनिधि होता है।

कहानीका वास्तविक स्वरूप बतलाते समय अकसर लोग कहानीके तत्त्वोंकी चर्चा करते हैं। वे उपन्यासके तत्त्वोंकी तरह कहानीके भी छः तत्त्वोंके नाम गिनाते हैं—वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैली। कहानी-साहित्यका मर्म समझनेके लिए ये तत्त्व उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। विद्यार्थीकी सुविधाके लिए भी ये लाभदायक हैं। लेकिन प्रश्न यह होता है कि क्या इन्हीं तत्त्वोंपर कहानीकी सफलता-असफलता निर्भर करता है? लगभग सभी कहानियोंमें उक्त तत्त्व अवश्य पाये जाते हैं, फिर उनकी उपयोगिता क्या है? क्या कहानीकारके लिए इनका ज्ञान आवश्यक है? श्री जैनेन्द्र कुमारका तो कहना है कि "शरीर-विज्ञान (Anatomy)का शास्त्र जाने बिना भी लोग पिता बन जाते हैं—टेकनीक जाने बना भी उसी तरह कहानी लिखी जा सकती है। वास्तवमें जो टेकनीक जानता है, वह कहानी नहीं लिख सकता। कहानीकारके पास यदि टेकनीक है तो वह उसीकी है।" साधारण पाठकके लिए टेकनीक या उसकी कला कोई अर्थ नहीं रखती। वह तो यह जानना चाहता है कि उसने क्या पढ़ा, और उसका उसके मनपर कैसा प्रभाव पड़ा। वह शिल्प-विधानकी तनिक परवाह नहीं करता। कहानीमें विधान और कलाकी खोज करनेवाला व्यक्ति स्वयं कलाकार होता है।

कहानी एक संश्लेषणात्मक कला है। जिस तरह शरीरके विभिन्न अवयवोंको चीड़फाड़कर अलग कर देनेसे उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है उसी

प्रकार कहानीका सारा सौन्दर्य संश्लेषण और सामञ्जस्यमें है, विश्लेषणमें नहीं। कहानीके लिए एक स्वस्थ, पर झीना कथानक चाहिये, कहानीमें एक केन्द्रीय चरित्रकी भी सृष्टि होनी चाहिये, उसमें कथोपकथनकी भी तरलता होनी चाहिये, उसमें वातावरण उद्देश्य और शैली भी हों—ये सारी बातें कहानीकी श्रेष्ठताके लिए आवश्यक तो हैं लेकिन ये ही सब कुछ नहीं हैं। आलोचक हेनरी एडसनने ठीक ही कहा है कि 'Singleness of aim & singleness of effects are, therefore, the two great canons by which we have to try the value of a short story as a piece of art.'[1] वस्तुतः सफल और श्रेष्ठ कहानीकी यही पहचान है। सफल कहानीके लिए एक ध्येयता और प्रभावकी एकताकी बड़ी आवश्यकता है। उपरिलिखित कहानीके छः तत्व इन्हीं दो बातोंमें समाहित हो जाते हैं। कुशल कहानीकार यदि इन दो बातोंको—'Singleness of aim और singleness of effect or impression' अपने ध्यानमें रखकर कहानीकी रचना करता है तो कहानीके उक्त छः तत्व आप ही आ जायँगे। इसके लिए कहानीकारको विशेष परिश्रम नहीं करना होगा। मैं ऊपर बता आया हूँ कि कहानी मानव-जीवनकी एक झलक है, एक झाँकी है। अतः श्रीयुत गुलाबरायके शब्दोंके साथ मैं यह मानता हूँ कि "कहानी एक स्वतःपूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभावको अग्रसर करनेवाली व्यक्ति-केन्द्रित घटना या घटनाओंके आवश्यक उत्थान-पतन और मोड़के साथ पात्रोंके चरित्रपर प्रकाश डालनेवाला हो।"[२] यही कहानीकी एक परिभाषा और उसका स्वरूप हो सकता है।

---

1. An Introduction to the Study of literature-P. 340
२. काव्यके रूप पृ० २०६

सफल और श्रेष्ठ कहानी : एक कसौटी

आधुनिक युग परिभाषा और कसौटी बनानेका नहीं, प्रयत्नोंका है, बौद्धिक विश्लेषणका है। लैला और उर्वशीमें कौन सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है, इसका निश्चित उत्तर देना असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य है। हम भारतीयोंकी आँखोंमें किसी भी युवतीकी नुकीली नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी-लम्बी पतली-पतली उँगलियाँ, इकहरा शरीर, पतली कमर, हंसकी चाल, सुराहीदार गर्दन सौन्दर्यकी पराकाष्ठा हैं। इसके विपरीत, चीन देशके नवयुवकोंको छोटी और धँसी आँखें, कचौड़ीकी तरह फूले गाल, छोटे-छोटे पैर और कदमें नाटी युवती सर्वश्रेष्ठ सुन्दर जँचती है। ऐसी परिस्थितिमें यह कहकर सन्तोष करना पड़ता है कि 'ऊधो, मन, माने की बात'। इसी तरह सफल और श्रेष्ठ कहानी-की कसौटी नहीं बनायी जा सकती। बात यह है कि किसी वस्तुको चमड़ेकी आँखोंसे देखने और दिलकी आँखोंसे देखनेसे बहुत बड़ा भेद पड़ जाता है। यही कारण है कि विद्वानोंने श्रेष्ठ कहानीकी कसौटीके सम्बन्धमें अपने अलग-अलग विचार स्थिर किये हैं। पाठककी रुचि अपनी होती है; कहानी-लेखक-भी हाड़-मांसका बना हुआ एक जीता जागता पुतला है, उसके भी अपने अर-मान होते हैं, अपने प्रश्न होते हैं और अपनी इच्छाएँ होती हैं। इसके साथ ही एक तीसरा व्यक्ति है जो पाठक और लेखकके बीच पंचका काम करता है, वह समालोचक है। यह भी अपने दिलके कोनेमें व्यक्तिगत अरमानों, मान्य-ताओं और धारणाओंकी बस्ती बसाये रहता है। ऐसी हालतमें यही कहा जा सकता है कि किसी वस्तुकी श्रेष्ठताका निर्णय पाठक, लेखक और आलोचककी व्यक्तिगत अभिरुचिपर निर्भर करता है। हो सकता है कि जिस कहानीको हम पसन्द करते हों, उसे दूसरा व्यक्ति नापसन्द करे या स्वयं उसका लेखक निकृष्ट समझे। यदि हम हिन्दीके मान्य-अमान्य, सामान्य-असामान्य कहानी-लेखकोंसे यह पूछें कि वे कहानी क्यों लिखते हैं तो इस प्रश्नके उत्तरमें वे जो कहेंगे उससे हमारी समस्या और भी उलझ जाती है। यदि आप प्रेम-चन्दसे पूछें कि 'आप कहानी क्यों लिखते हैं?' तो उनका उत्तर 'लेखक' शीर्षक कहानीके 'प्रवीण' के शब्दोंमें होगा—"हमारा धर्म है काम करना।

हम काम करते हैं और तनमनसे करते हैं। अगर इसपर भी हमें फाका करना पड़े तो उसमें दोष नहीं। अगर दुनिया हमारी कदर नहीं करती, न करे। इसमें दुनियाका ही नुकसान है, मेरी कोई हानि नहीं। दीपकका काम है जलना···मैं दीपक हूँ और जलनेके लिए बना हूँ।···मैं आज यह तत्व पा गया हूँ कि साहित्य-सेवा पूरी तपस्या है।'' कहनेका तात्पर्य यह कि कहानी किसी आदर्शकी स्थापनाके लिए लिखी जाती है। श्री जैनेन्द्र कुमारने कुछ इसी तरहकी बातें कही हैं—''कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समाधान पानेकी कोशिश करती रहती है।'' इस दृष्टिसे कहानी मनोवैज्ञानिक कुतूहलके समाधानार्थ लिखी जाती है। श्री बेनीपुरी 'आप कहानी क्यों लिखते हैं ?' के उत्तरमें कहेंगे—'साम्यवादके प्रचारके लिए।' श्री अज्ञेयका उत्तर होगा—''संघर्ष कलाकी जननी है। यह मानसिक संघर्षमें जीता है। यह संघर्ष संकल्प और परिस्थितिमें चला करता है। संघर्ष प्रगतिको जन्म देता है। कहानी इसीकी प्रतिच्छाया है।' कहनेका मतलब यह कि कहानी जीवनके संघर्षमय स्वरूपकी झाँकी है। इन बातोंसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक लेखक-की अपनी धारणा और मान्यता होती है। तो क्या इससे यह समझ लेना होगा कि संसारके कहानी-लेखक अपनी अपनी डफली और अपना-अपना राग अलापते रहते हैं ? उनके वैषम्यके बीच किसी तरहकी ऐक्य-भावना है या नहीं ? यह एक ऐसा साहित्यिक प्रश्न है जिसके अनेक उत्तर दिये जाते हैं। आजके व्यक्ति-वादी युगमें तो इसका निश्चित उत्तर पाना और भी कठिन हो गया है। इसी लिए मैंने आरम्भमें कहा है कि वर्तमान युग परिभाषा और कसौटी बनानेका नहीं, प्रयत्नका है। मैंने भी अपनी ओरसे इस तरहके उलझे प्रश्नका उचित उत्तर देनेका प्रयत्न-भर किया है। हमारा निर्णय भी अन्तिम नहीं है।

आलोचकको हर हालतमें निष्पक्ष होकर किसी समस्याका समाधान निकालना पड़ता है। साधारणतः पाठककी माँग होती है कि कहानी दिलचस्प हो, जिसमें उसका मन लगे। जिस दिलचस्पीके साथ उसने तोता-मैना, भूत-नाथ, ब्लैककी कहानियाँ पढ़ी हैं उतनी रुचिके साथ श्री जैनेन्द्रकी कहानियाँ पढ़नेमें वह अपनेको असमर्थ पाता है। साधारण पाठककी माँग बिलकुल

जायज़ है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या 'मन लगना' ही कहानीकी सफलता और श्रेष्ठताकी एकमात्र कसौटी है? इसका उत्तर श्री जैनेन्द्र कुमारने दिया है—"मन लगना तो बड़ी पहचान है ही, पर मन लगा रहे। तोता-मैनामें मन लगता है पर लगा नहीं रहता। एक बार मनको पकड़कर जो बराबर जीवनमें जिन्दा रहता आये, वह अच्छी कहानी है। जब-जब आप अकुला जायें, तब-तब आप उसे पढ़ें और उसे जीवनमें आप शाश्वत मानने लगें। मन लगे और जितने दीर्घ कालतक लगा रहे, उतना ही अच्छा है।"[1] इसका अर्थ यह हुआ कि कहानीकी सफलता तब समझी जा सकती है जब वह पाठकोंके मनको काफी दिनोंतक प्रभावित करती रहे। वह पाठककी सहानुभूति और समवेदनाको उभाड़ दे। मैक्सिम गोर्कीने इसी बातको इस तरह कहा है कि सर्वश्रेष्ठ कहानी वह है जो लाठीकी मारकी तरह हृदयपर चोट करे। साधारणतः ऐसा देखा जाता है कि साधारण पाठक उन्हीं कहानियोंको बड़े चावसे पढ़ता है जिनमें मनोरंजनकी भरपूर सामग्री होती है। पाठकोंकी बहुत बड़ी संख्यामें नवयुवक आते हैं। ये दुःखान्त कहानियाँ बड़े चावसे पढ़ते हैं जिनमें प्रेमी-प्रेमिकाओंकी दुःखान्त जीवन-गाथा होती है। इस तरहकी कहानियाँ 'माया' और 'मनोहर कहानियाँ'में निकला करती हैं और इनकी खपत भी, देशके कोने कोनेमें सन्तोषजनक है। प्रश्न उठता है कि क्या श्रेष्ठ कहानीमें मनोरंजन और प्रेमका दुःखद अन्त ही उसकी सबसे बड़ी कसौटी है? क्या इस तरहकी कहानियाँ हमारे हृदयपर मार्मिक चोट करनेमें समर्थ हो सकती हैं? सच तो यह है कि प्रेम-कहानियोंके लेखक प्रायः नवयुवक कहानीकार ही होते हैं। "नवयुवकोंमें विनाशकी भावना प्रबल होती है। जिस तरह शिशुको अपने खिलौने तोड़नेमें आनन्द मिलता है, उसी तरह उनकी बुद्धि भी विनाश-कार्यमें अधिक आनन्दका अनुभव करती है। अतः नवयुवक कहानी-लेखक दुःखपूर्ण कथा कहनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं और अपने पात्रोंकी हत्या करनेमें आनन्द पाते हैं।" यही कारण है कि 'माया'

---

१. जैनेन्द्रके विचार, पृ० १०१।

२. कहानी कला, श्रीविनोदशंकर व्यास पृ. ११४।

और 'मनोहर कहानियाँ' नामकी मासिक पत्रिकाएँ प्रायः स्कूल और कालेजमें पढ़नेवाले नवयुवक-नवयुवतियोंके हाथोंमें देखी जाती है। इनमें प्रकाशित होनेवाली कहानियाँ उनकी सस्ती भावुकताको उभाड़नेमें पर्याप्त सहायक होती हैं। वर्तमान युगकी प्रधान समस्या 'सेम्स' 'ही' नहीं है, सेम्स 'भी' है। रही साधारण पाठकोंकी बात। इनकी बुद्धि भी नवयुवकोंकी तरह परिष्कृत नहीं होती। जहाँ विद्यार्थी-समाज कोर्सकी किताबोंमें दी गयी कहानियोंके लेखकोंको इम्तहानका भूत समझकर उनसे दूर भागता है, वहाँ साधारण पाठक इन लेखकोंमें मनोरञ्जन तथा हँसी-मजाककी सामग्रियोंका अभाव पाकर उन्हें दूरसे नमस्कार करता है। यह अपने अवकाशके समयको मनोरञ्जक कहानियाँ पढ़कर काट देना चाहता है। कहानी पढ़ना और सिनेमा देखना दोनों उसके लिए बराबर है। ऐसी हालतमें 'सफल कहानी'का प्रश्न कहानी-कलाके नियमोंसे परिचित कलाकारकी ओरसे ही उठ सकता है और 'श्रेष्ठ कहानी' का प्रश्न नवयुवकोंकी ओरसे, जो अपने मनमें उठते-गिरते अपरिपक्व भावोंको सन्तुष्टि देनेके लिए श्रेष्ठ या अच्छी कहानियोंकी खोजमें रहते हैं। इन बातोंसे जाहिर है कि मनोरञ्जन श्रेष्ठ कहानीकी कसौटी कदापि नहीं हो सकती।

प्रो० प्रभाकर माचवेने एक स्थनपर लिखा है कि "कथाका साध्य मनोरञ्जन 'ही' नहीं है, मनोरञ्जन 'भी' है। मनोरञ्जन साधन मात्र है, लक्ष्य कुछ और है। तो फिर 'कुछ और' क्या है? उपदेश? समाज-सुधार? राष्ट्रीयता? प्रचार? कोई वाद? या यह सब कुछ नहीं, केवल मानव-मनको अधिकाधिक अन्तर्मुखी और सूक्ष्मग्राही अर्थात् संस्कृत बनाना?"[१] इन पंक्तियोंमें प्रो० माचवेने यह स्पष्ट कर दिया है कि कहानीका साध्य मनोरञ्जन नहीं है। फिर क्या है? श्रेष्ठ कहानीमें किसी वाद-विशेषका प्रचार ठीक नहीं है। श्री विनोदशंकर व्यासके शब्दोंमें "बहुतसे लेखक अपनी कहानियोंमें प्रचलित आदर्शोंका ढिंढोरा पीटने लगते हैं, लेकिन ऐसी कहानियाँ असफल होती हैं।"[२] इस दृष्टिसे श्री बेनीपुरी और यशपालकी कहानियाँ असफल ही सिद्ध होंगी। किसी वादके आदर्शोंका प्रचार करना विज्ञापन करना होगा।

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० ७२। २. कहानीकला पृ० १२२।

जब हम किसी सिद्धान्तको 'वाद'के कठघरेमें बाँधकर रख देते हैं तब उसकी गतिशील जिन्दगी जाती रहती है। वह किसी वर्ग या समाजकी सम्पत्ति हो जाती है। इससे यह सिद्ध है कि सफल कहानीमें किसी निश्चित आदर्श या 'वाद'का होना उसके कहानीपनको नष्ट कर देना है। तब फिर कहानीका साध्य क्या है?

स्व० प्रेमचन्दने लिखा था कि "वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनों—मनोरंजन और मानसिक तृप्तिमेंसे—एक अवश्य उपलब्ध हो।" इस उद्धरणसे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सफल कहानीसे चाहे तो पाठकोंका मनोरंजन होता है या उसकी मनःतुष्टि। मन कुछ चाहता है, उसमें सदैव कुछ-न-कुछ अभाव बना रहता है। उसी अभाव (Vacuum) की पूर्ति कहानी करती है। प्रश्न उठता है—वह अभाव क्या है? प्रेमचन्दने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्यपर हो।" यह 'मनोवैज्ञानिक सत्य' क्या है? श्रीयुत रायकृष्णदासके शब्दोंमें "कहानी मनोरंजनके साथ-साथ अवश्य किसी-न-किसी सत्यका उद्घाटन करती है यह सत्य जितना आंशिक और एकदेशीय होगा, कहानी भी उसी अनुपातमें निम्न श्रेणीकी होगी।"[१] इस दृष्टिसे कहानीका साध्य, विश्वजनीन और शाश्वत सत्यकी अभिव्यक्ति है। इतना ही नहीं, डॉ. भटनागरके शब्दोंमें "कहानी एक कला है। कलाका सर्वोच्च रूप वह है जहाँ वह प्रतिपादित वस्तु या लक्ष्यकी ओर संकेत करती है।"[२] इससे यह स्पष्ट है कि कहानी वर्तमानकी नींवपर खड़ी होकर भविष्यका निर्देश करती है। ये सारी बातें कहानीके थीम (Theme) वस्तुसे सम्बन्ध रखती हैं। यदि इन बातोंको हम व्यापक अर्थमें लें तो विश्व कहानी-साहित्यकी बहुत-सी श्रेष्ठ कहानियाँ उपरोक्त सिद्धान्तकी परिधिसे बाहर चली जायेंगी। विश्वके महान कहानीकार, जैसे चेखब, गाल्सवर्दी, प्रेमचन्द, प्रसाद, गोर्की इत्यादि ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपने समसामयिक जीवनकी समस्याओंको अपनी कहानियोंका विषय बनाया है। समयके उलट-फेर हो जानेपर भी

---

१ इक्कीस कहानियाँ, भूमिका पृ० १२; २. प्रबन्ध पूर्णिमा, पृ० ८१

उनकी कहानियाँ आज भी ताज़ी हैं। इस विवेचनसे हम यह कह सकते हैं कि श्रेष्ठ कहानीके लिए शाश्वत जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले बिषयोंको भी हम कहानीकी कसौटी नहीं बना सकते। कहानीका प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवनसे है और 'कहानीकारको जीवनके भावात्मक तथा विचारात्मक दोनों छोरोंको छूते हुए चलना पड़ता है।' इसलिए सफल कहानीकारके लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह 'जीवन और जगत्के प्रति सदैव एक संवेदनात्मक दृष्टिकोण' रखे। 'संवेदनात्मक दृष्टि-कोण'को अपनानेके लिए जीवनके व्यापक सत्य तथा 'मनोवैज्ञानिक सत्य' को स्वीकार करना पड़ेगा। इस बातकी पुष्टि करते हुए प्रो० शिवनन्दन प्रसादजीने लिखा है कि "कहानीकी सफलता बहुत अंशोंमें स्वस्थ और उचित दृष्टि-कोणपर निर्भर है।"[१] उन्होंने इसका विस्तार करते हुए लिखा है कि "छोटी कहानियोंमें यद्यपि कोई निगूढ़ या व्यापक मर्मतत्त्व संदेशके रूपमें रहे, इसके लिए सदा अवकाश नहीं; फिर भी सम्पूर्ण कहानीका अभिप्राय या मन्तव्य हर हालतमें ऐसा होना चाहिये जिससे जीवनपर एक नया प्रकाश पड़े, मानव-मनके किसी विशिष्ट स्तरकी मौलिक व्याख्या हो, समाजके किसी विशेष उपेक्षित पहलूपर पाठकोंकी दृष्टि नये ढंगसे आकृष्ट हो अथवा जगत्के विशेष पक्ष या स्वरूपके प्रति पाठकोंके मनमें एक नूतन सौन्दर्य-भावना जाग्रत हो। तात्पर्य यह कि कहानी पढ़कर पाठक खाली हाथ न रह जाये, उसके अन्दर कुछ उपलब्धिकी भावना होनी चाहिए।······ संदेशकी प्रेषणीयतामें ही कहानीकारकी सफलता है।"[२] यह है जीवनके व्यापक सत्यका रूप। जैनेन्दकी कहानी 'पत्नी' में नारीके मनोवैज्ञानिक पहलूकी झाँकी दी गयी है—भारतीय नारीका उपेक्षित, आहत आत्म-सम्मान।

प्रेमचन्दने सफल कहानीके लिए 'मनोवैज्ञानिक सत्य' की शर्त रखी है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है क्या? प्रेमचन्दने लिखा है कि "उपन्यासोंकी भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानीका पद ऊँचा समझा जाता है, कहानीमें बहुत विस्तृत विश्लेषणकी गुंजाइश नहीं

---

१. कहानीके तत्त्व, पृ. २६; वही पृ. ३०.

२. आधुनिक कथा-साहित्य—गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ. २३

होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्योंको चित्रित करना नहीं, वरन् उनके चरित्रका एक अंग दिखाना है। यह परम आवश्यक है कि हमारी कहानी-से जो परिणाम या तत्त्व निकले, वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो......जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि पाठक उनको अपने स्थानपर समझ लेता है तभी उस कहानीमें आनन्द प्राप्त होता है। अगर लेखकने अपने पात्रोंके प्रति पाठकमें यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर दी तो वह अपने उद्देश्यसे असफल है।" इसीलिए एक आलोचकने ठीक ही लिखा है कि "प्रभाव कहानीका प्राण है और स्वाभाविकता उसके स्वरूपकी शाखा है।" "आधुनिक कहानियोंमें चरित्र-चित्रणके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक विश्लेषणका बहुत अधिक महत्त्व है। चरित्र मनोविज्ञानके तथ्योंके आधार-पर चित्रित हों और उनके मनोभावों एवं व्यवहारोंके मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित किये जायें, इसकी अपेक्षा आजकी कहानीमें रहती है। फ्रायड तथा अन्य पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकके आधारपर वर्णन, घटनाओं या वार्तालाप द्वारा प्रधान पात्रोंके चेतन, उपचेतन और अचेतन मनके गूढ़ रहस्योंका उद्-घाटन तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओंका अध्ययन और विश्लेषण आजके चरित्र-प्रधान कहानीकारका प्रधान लक्ष्य हुआ करता है। हिन्दीमें इस दिशा-में भगवतीचरण वर्मा, राधाकृष्ण, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि कुछ अंशोंमें प्रयत्नशील हैं।

पश्चात्य पद्धतिसे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यदि कहानीमें नहीं भी हो तो भी कहानीका चरित्र ऐसा होना चाहिये जिसमें जीवनकी स्वाभाविकता हो। अपनी मनोवृत्तियों और व्यवहारोंकी दृष्टिसे वे वास्तविक मनुष्य–जैसे लगें।"[1] 'मनोवैज्ञानिक सत्य' का यही रहस्य है।

टेकनीककी दृष्टिसे, सफल कहानीके लिए कुछ अन्य बातोंपर भी विचार करना आवश्यक है। डॉ. रामरतन भटनागरका कथन है कि "अच्छी कहानीके लिए प्रभावकी एकता (Uuity of impression), समय और स्थानकी एकता और चरित्र-चित्रणकी एकता अधिक-से-अधिक

१. कहानीके तत्त्व. पृ. २७.।

होना आवश्यक है। ऊपर प्रभावकी एकता और चरित्र-चित्रणपर विचार किया जा चुका है। पर इतना अवश्य है कि प्रभाव, समय और स्थानकी एकता (Three unities) का सम्बन्ध मूलतः कथानकसे है। डॉ.भटनागरके शब्दोंमें "प्रभावकी एकताके लिए (जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है) यह आवश्यक है कि कहानी किसी एक विशेष दृष्टिकोण, परिस्थिति या उद्देश्यको लेकर चले और उसी विशेष दृष्टिकोण, परिस्थिति या उद्देश्यको लेकर समाप्त हो जाय। अतः कहानीकी कथावस्तु एक ही हो और स्पष्ट हो।... यह आवश्यक नहीं कि कथाका विभाजन सदैव ही आरम्भ,आदि और अन्तमें हो सके, परन्तु यह आवश्यक है कि कथा संगठित हो। कहानीमें कई घटनाओंका समावेश हो तो उनके भीतर किसी एक अटूट सूत्रका होना आवश्यक है। कहानीमें उच्छृङ्खलताको थोड़ा भी प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए।"[1] यदि कहानीके कथानकका संगठन स्वस्थ है तो फिर समय और स्थानकी एकताकी रक्षा अपने-ही-आप हो जायगी। 'इक्कीस' कहानियाँमें जितनी कहानियाँ संग्रहीत हैं, उनमें श्री अज्ञेयकी 'रोज़' कहानी ही ऐसी है जिसमें कहानीके उपरिलिखित गुण सहज ही मिल जाते हैं। अतः यह कहानी ही उक्त कहानी-संग्रह-ग्रन्थमें सर्वश्रेष्ठ है।

प्राचीन और आधुनिक कहानी

[एक तुलनात्मक अध्ययन]

आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्यकी गतिविधिको अच्छी तरह समझनेके लिए यह आवश्यक है कि पहले हम इस देशके प्राचीन कहानी-साहित्यके स्वरूपसे परिचित हो लें। हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारे यहाँ, आधुनिक अर्थमें, कहानियाँ लिखी ही नहीं गयीं। प्राचीन साहित्यमें कहानियोंके स्थानपर 'कथा', 'आख्यान,' इत्यादि लिखे गये हैं जिनका अतुल भांडार 'हितोपदेश' 'पंचतंत्र, 'पुराण' तथा 'बृहत् कथा'में सुरक्षित

---

१. प्रबन्ध पूर्णिमा. पृ. ८१

है। ये कहानियाँ शुद्ध रूपसे शिक्षात्मक हैं। पर आजका पाठक शिक्षा लेने की भावना रखकर कहानियाँ पढ़ने नहीं बैठता। वह कमसे कम समयमें अपने थके हुए मस्तिष्कका मनोरञ्जन करना चाहता है। तब और अबमें आकाश-पातालका अन्तर है। प्राचीन भारतकी अपनी समस्याएँ थीं और आजके प्रश्न कुछ दूसरे ही हैं। कुछ लोग अपने दकियानूसी ख्यालके कारण आधुनिक हिन्दी कहानीका उद्‌गम जातक-कथाओं और बृहत्‌कथासे बताते हैं। श्रीयुत गुलाबरायका ठीक ही कहना है कि "आजकलकी हिन्दी-कहानियाँ, जिनको 'गल्प', 'आख्यायिका' 'लघुकथा' भी कहते हैं, हैं तो भारतकी पुरानी कहानियोंकी ही सन्तति, किन्तु विदेशी संस्कार लेकर आयी हैं। खद्दरकी सूटकी भाँति उनकी सामग्री प्रायः देशी रहती है; किन्तु काट-छाँट अधिकांशमें विलायती ढंगका होता है।"[1] यह निःसंकोच कहा जायगा कि हमारी वर्तमान कहानी पाश्चात्य साहित्यके सम्पर्ककी देन है।

प्राचीन भारतका कहानी साहित्य—कहानीका मौखिक रूप, सृष्टिके आरम्भसे ही प्रत्येक देशमें, पाया जाता है। सभी देशोंमें बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चोंके मनोरंजनके लिए कहानियाँ सुनाती थीं। लेकिन साहित्यिक रूपमें लिखित कहानियोंका जन्म सबसे पहले भारतमें ही हुआ। ऋग्वेदमें, जो संसारका सर्व-प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है, स्तुतियोंके रूपमें कहानीके मूल तत्त्व पाये जाते हैं। पुराणोंमें भी उर्वशी और पुरुरवा आदिकी कथाएँ मिलती हैं। पुराण मनोरंजक कथा-कहानियोंका अतुल भांडार है। इस समयतक इसका पर्याप्त विकास हो गया था। ये कथाएँ धर्म, उपदेश, आध्यात्मिक विवेचन, नीतिसे भरी होती थीं। कहानियोंका बहुत-बड़ा वैभव ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदोंमें पाया जाता है। इसके बाद जातक-कथाओंमें रोचक कहानियोंके दर्शन होते हैं। इन कथाओंका प्रभाव देश-विदेशके साहित्यपर इतना अधिक पड़ा कि समस्त संसारमें ये कहानियाँ धर्म-प्रचारका साधन बन गयीं। विदेशोंमें इनका स्वागत किया गया। विश्वकी सभ्य भाषाओंमें इनका अनुवाद किया गया। ईसपकी कहानियाँ (Aesops Fables), फारस

१. काव्यके रूप. पृ. २०२.

और अरब देशोंके ओडासियस और सिन्दबाद सेलर (Sindbad sailor) की कथाएँ इन्हीं जातक-कथाओंपर आधारित हैं। विश्व-कहानी-साहित्यके इतिहासमें इन कथाओंका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें दो ऐसे प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनका प्रभाव विश्व-कहानी-साहित्यपर पड़ा है। ये हैं–पंचतंत्र और हितोपदेश। इनमें पशु-पक्षियों-को चरित्र मानकर उनके द्वारा सरस सूक्तियों, सुन्दर उपदेशों तथा समाज-की व्यावहारिक नीतियोंका वर्णन किया गया है। साधारण जनताके बीच इन ग्रंथोंका काफी प्रचार है। संस्कृतमें ये आख्यान-साहित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। जर्मन विद्वान डॉ० विन्टरनित्जके मतानुसार जर्मन-साहित्यपर पंचतंत्रका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। संस्कृत कथा-कहानियोंका संसारमें इतना अधिक प्रचार हुआ कि वे विश्व-साहित्यका एक अंग बन गयीं। यात्रियों, व्यापा-रियों तथा परिव्राजकों द्वारा एशिया और यूरोपके विभिन्न देशोंमें ही नहीं, अपितु अफ्रीकाकी असभ्य सोमाली और सौहाली जातियोंमें भी भारतीय कहानियोंका प्रचार हो गया था।"[1]

इसी कालके लगभग लोककथाओंका प्राचीनतम संग्रह-ग्रन्थ गुणाढ्य-कृत 'बृहत्कथा' मिलता है जो पैशाची भाषामें लिखा गया था। डॉ० ब्यूलरके मतानुसार बृहत्कथा प्रथम या द्वितीय शताब्दीकी कृति है। अब उसके तीन संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तर पाये जाते हैं। जिस प्रकार नीतिकथाओंमें पंचतंत्रका स्थान सबसे ऊँचा है उसी प्रकार लोक-कथाओंमें बृहत्कथाका स्थान अग्रगण्य है। रामायण और महाभारतके समान बृहत्कथा भी भारतीय साहित्यकी एक अपूर्व निधि है। इसके आधारपर संस्कृतके अनेक ग्रन्थोंकी रचना हुई है। भासकी 'वासवदत्ता', शूद्रकका 'मृच्छकटिक' जैसे ग्रन्थ इसीके सहारे लिखे गये हैं।

ईसाकी सातवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें संस्कृत-साहित्यके प्रसिद्ध गद्य लेखक बाणभट्टने 'कादम्बरी' नामक कथा-साहित्यका एक अमर ग्रन्थ लिखा। इसमें एक प्रेमकहानी है जिसकी एक बड़ी सुसम्बद्ध शृंखला प्राचीन हिन्दी साहित्यसे आजतक पाती जाती रही है। कुछ लोग आधुनिक हिन्दी-उपन्यासका उद्गम-

१. संस्कृत साहित्यकी रूपरेखा, पृ० ३०६।

सम्बन्ध 'कादम्बरी' से जोड़ते हैं। लेकिन यह भ्रम है। हम कह आये हैं कि 'कादम्बरी', आधुनिक अर्थमें उपन्यास नहीं है, एक प्रेम-गाथा-साहित्य है जिसमें विषयकी रोचकताके साथ ही भाषा और शैलीका चमत्कार भी पाया जाता है। इसी तरह दण्डीका 'दशकुमार चरित' और सोमदेवका 'कथा-सरित्सागर' संस्कृत-आख्यायिका-साहित्यके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उनकी रचना दशवीं शताब्दीके लगभग हुई थी। यह है प्राचीन कथा-साहित्यका संक्षिप्त परिचय।

प्राचीन कथा-साहित्यका संक्षिप्त परिचय देनेके बाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि प्राचीन साहित्यमें लौकिक कथाएँ (Folk Tales), रोमांचकारी कथाएँ (Romantic Tales) तथा अलौकिक कथाएँ (Supernatural Talcs) ही बहुत अधिक लिखी गयीं जिनका आधुनिक कहानी-साहित्यसे कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आधुनिक कहानी शुद्ध रूपसे मानव-जीवनका चित्रण प्रस्तुत करती है। इसमें रोमांचकारी कथा या अलौकिक कथाके लिए तनिक भी गुञ्जाइश नहीं है।

अब संक्षेपमें हम यह विचार कर लें कि प्राचीन कथा-साहित्य और आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यमें किन-किन बातोंमें अन्तर है।

(१) प्राचीन कहानियोंके दो रूप हैं—मौखिक और साहित्यिक। मौखिक कहानियाँ प्रत्येक देशमें घासकी तरह आपसे आप पैदा हुई हैं। साहित्यिक लिखित कहानियाँ लिखनेका प्रथम श्रेय भारतको है जिनकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। इनमें कहानीके अन्दर कहानीका गोरख-धन्धा रहता था। इनमें पुरुष और पशु एक साथ बैठकर काम करते थे। दोनों एक दूसरेकी भाषा आसानीसे समझ लेते थे। घटनाओंकी अधिकता इतनी थी कि कथाके मूल सूत्रको समझे बिना शेष कहानी समझमें नहीं आ सकती थी।

आधुनिक कहानीका विषय है केवल मनुष्य। पशुओंके लिए कहानीमें अब कोई जगह न रही। प्राचीन कहानियोंमें जिस वर्गके मनुष्योंका वर्णन होता था वह या तो राज परिवारका वर्ग था, या मंत्री, सेठ-साहूकारोंका। लेकिन

इसके विपरीत आधुनिक कहानियोंमें साधारण श्रेणीके लोगोंको ही अधिकाधिक स्थान दिया जाता है।

(२) प्राचीन कथा-साहित्यका उद्देश्य लोक-कल्याण करना था। इस दृष्टिसे उनकी कथाएँ भी मानव-केन्द्रित थीं। लेकिन आधुनिक कहानी 'लोक-हिताय' न लिखी जाकर 'मनोरंजनार्थ' लिखी जाती है। इसीलिए प्राचीन कथामें जहाँ कौतूहलकी भावना अधिक जागृत रहती है वहाँ आधुनिक कहानीमें इस कौतूहल-वृत्तिकी मात्रा दिनानुदिन कम होती गयी है। आज हम प्रत्येक कहानीकारसे मौलिकता और नवीनताकी आशा रखते हैं।

(३) प्राचीन कथा-साहित्यमें भाग्य और भगवान्पर आँख बन्द कर निर्भर करनेकी शिक्षा दी गयी है। इसीलिए उनकी सारी बातें पूर्व निश्चित होती हैं। लेकिन आजकी कहानियोंमें भाग्यकी अपेक्षा पुरुषार्थपर अधिक जोर दिया जाता है। आजका मनुष्य यह मानने लगा है कि मनुष्य भाग्य और भगवान्के हाथोंका खिलौना नहीं है। आजका व्यक्ति शक्तिका पुंज है। वैज्ञानिक अन्वेषणोंने आजके मनुष्यको नास्तिक, अधार्मिक और अनैतिक बना दिया है। आजकी कहानियोंका आधार है संघर्षमय जीवन। पुराने समयमें मनुष्य-जीवन इतना विषण्ण नहीं था जितना आज है।

(४) प्राचीन कहानियोंका उद्देश्य रसका परिपाक करना था। वर्तमान कहानियोंका लक्ष्य विविध व्यक्तित्वसे युक्त चरित्रोंकी सृष्टि करना है। इसीलिए जहाँ पहलेकी कहानियोंमें कथाका विवरण दिया जाता था, वहाँ आज विवरणके स्थानपर कथोपकथनपर अधिक जोर दिया जाता है।

(५) प्राचीन कथा-साहित्यमें घटनाओंका जमघट लगा रहता था। कहानी-दर-कहानी कहना उसका उद्देश्य था। घटनाओंके भूल-भुलैयामें पाठकका मन बेतरह उलझ जाता था। लेकिन आज घटनाओंको प्रश्रय न देकर भाव, विचार और अनुभूतिको प्रोत्साहन दिया जाता है। प्रेमचन्दने स्वयं कहा है कि 'कहानीका आधार अब घटना नहीं, अनुभूति है।' आज उन्हीं कहानियोंको श्रेष्ठ कहा जाता है जिनमें घटनाका स्थान अनुभूतिने ले लिया है।

(६) प्राचीन कहानियोंमें मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वके चित्रणका एक प्रकारसे अभाव है। आधुनिक कहानी, प्रेमचन्दके शब्दोंमें, किसी न-किसी 'मनोवैज्ञानिक सत्य' का उद्घाटन करती है। प्राचीन कथा समष्टिवादी थी, आजकी कहानी व्यष्टिवादी है।

(७) प्राचीन कहानीकी भाषा-शैली आधुनिक कहानीकी अपेक्षा अधिक आलंकारिक थी। आधुनिक कहानी सरलतापर अधिक जोर देती है। प्राचीन कहानी सरसतापर अधिक बल देती रही है क्योंकि उसका उद्देश्य इसका संचार करना था।

(८) प्राचीन कथाओंका अध्ययन करनेके बाद ऐसा लगता है जैसे पाठकने सब कुछ पा लिया। इसके विपरीत, आधुनिक कहानियोंका अध्ययन करनेके बाद ऐसा लगता है जैसे उसने कुछ खो दिया। प्राचीन कहानियोंमें पाठकोंकी सहानुभूति और समवेदनाको जागृत करनेकी क्षमता नहीं थी। आजकी कहानियाँ हमारी हृदयगत सहानुभूति और समवेदनाको उभाड़नेमें पर्याप्त शक्ति रखती हैं। अतः प्राचीन कहानी यदि अपनेमें पूर्ण है तो आधुनिक कहानी अपनेमें अपूर्ण।

(९) प्राचीन कहानियोंमें दुःखान्त कथाका पूर्णरूपेण अभाव है क्योंकि तबकी जीवन-समस्याएँ आजकी तरह इतनी उलझी न थीं लेकिन अब वर्तमान कहानियोंमें दुःखान्त कहानियोंकी भरमार पायी जाने लगी है। इसका एक मात्र कारण यही है कि हमारा वर्तमान जीवन अनेक तरहकी विषम परिस्थितियोंसे आच्छादित है। भाग्य और भगवान्का वहिष्कार करने और अपने पुरुषार्थमें अत्यधिक विश्वास या आस्था रखनेवाले वर्तमान मनुष्यका जीवन संघर्षमय हो गया है। वह अपने बुने जालमें खुद फँस गया है। वह इससे निकलनेके लिए आज छटपटा रहा है। वर्तमान कहानी इसी छटपटाहटकी प्रतिच्छाया है।

———

हिन्दी कहानीका विकास

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि हर देशके साहित्यमें उपन्यासोंकी रचना हो जानेके बाद ही कहानी-साहित्यका सृजन हुआ है। वैज्ञानिक आविष्कारोंकी प्रगतिके साथ ही साहित्यके विभिन्न क्षेत्रोंका विकास होता गया है। पहले महाकाव्योंकी सृष्टि हुई, फिर गीतोंकी रचना हुई; पहले नाटकोंका सूत्रपात हुआ, फिर एकांकी का। इस तरह हम देखते हैं कि विज्ञानने मनुष्यके दृष्टिकोणको बहुत कुछ स्थूलसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर बना दिया है। विश्वके आधुनिक साहित्यमें कहानी स्केच, एकांकी इत्यादि इसी दृष्टिकोणके परिणाम हैं।

हिन्दी-कहानीकी उत्पत्ति—हिन्दी साहित्यमें उपन्यासोंकी रचनाका आरम्भ हो जानेके बाद ही कहानी-साहित्यका उद्भव हुआ। हिन्दी कहानीका वास्तविक जन्म होनेके पहले हमारे साहित्यमें लाला श्रीनिवास दास, बाबू राधा कृष्णदास, पं० बालकृष्ण भट्ट, बा० देवकी नन्दन खत्री, पं० किशोरी लाल गोस्वामी, पं० गोपाल राम गहमरी-जैसे कुशल उपन्यासकारोंके दर्शन हो चुके थे। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि हिन्दी-कहानीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लोग अनावश्यक खींच-तान करने लगते हैं। श्री सुदर्शन और श्री विनोदशंकर व्यास-जैसे कुछ आलोचनोंने हिन्दी कहानीका प्रारम्भ जातक-कथाओं और 'बृहत्कथा'से ढूँढ़ निकालनेका प्रयास किया है। डॉ० रामरतन भटनागरने हिन्दी-कहानीका सम्बन्ध श्री गोकुलनाथजीकी 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'से जोड़ा है और उनके मतानुसार यह ग्रन्थ 'कदाचित् हिन्दीका पहला गद्य कहानियोंका संग्रह है।'[1] इसीलिए आधुनिक हिन्दीकी पृष्ठभूमिमें जटमलकी 'गोराबादलकी कथा', श्रीलल्लूलालके 'प्रेमसागर' और 'सुखसागर' श्रीसदलमिश्रके 'नासिकेतोपाख्यान' और इंशाअल्लाह खाँकी 'केतकीकी कहानी' के नाम लिये जाते हैं। इंशाकी 'रानी केतकीकी कहानी' को कुछ लोग 'हिन्दीकी पहली मौलिक कहानी-रचना' कहते हैं। लेकिन इन कथाओं तथा

---

१. हिन्दी-साहित्य : एक अध्ययन पृ. ३११

आख्यानोंका ध्यानसे अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट है कि आधुनिक दृष्टिमे ये कहानियाँ नहीं हैं। 'हितोपदेश' 'पंचतंत्र' तथा सूफियोंकी प्रेम-गाथाओंके आधारपर ही इनकी रचना हुई है। इनका प्रधान उद्देश्य उपदेश देना है। इनमें आधुनिक कहानी-कलाका दर्शन करना पत्थरसे जलकी आशा करना होगा। इनमें छोटे-मोटे धार्मिक व्याख्यान दिये गये हैं। अतएव, यह कहा जायगा कि हिन्दी कहानीका वास्तविक आरम्भ न तो १८वीं शताब्दीमें हुआ और न १९वीं शताब्दीमें ही। हिन्दी कहानीका वास्तविक श्रीगणेश सन् १९०० से ही मानना चाहिए। डॉ० श्रीकृष्णलालके शब्दोंमें "हिन्दी कहानियोंका वास्तविक प्रारम्भ प्रयागके प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सरस्वती'से होता है जिसे १९०० ई०में इण्डियन प्रेसने चलाया।"[१] "यद्यपि हिन्दी-साहित्य संस्कृत-साहित्यका ज्येष्ठ उत्तराधिकारी है, तथापि इसका आधुनिक-साहित्य कहानी कलाके नाते अंग्रेजी और बँगलाका ही ऋणी है। कहानी लेखक कथानकके लिए संस्कृत साहित्य-के भांडारका आश्रय तो ले लेते हैं और उनकी कलावादिता भी अभी इतनी दूर नहीं पहुँची है कि वे सामाजिक उद्देश्य और आदर्शको तिलांजलि दे दें, परन्तु इतना अवश्य है कि हिन्दीकी आधुनिक कहानियोंमें वास्तविकताका पुट है और रचना-शैली तो पश्चिमी ढंगपर है ही। हिन्दीके आधुनिक कहानी-साहित्यकी सृष्टि उस समयसे प्रारम्भ होती है जबसे सामयिक पत्र-पत्रिकाओं-को छोटी-छोटी मनोरंजक कहानियोंकी आवश्यकता हुई। इस क्षेत्रमें सबसे पहले 'सरस्वती' और 'इन्दु' नामक पत्रिकाओंने पथ-प्रदर्शन किया।"[२]

हिन्दीमें, उपन्यासकी तरह, कहानीकी कला भी पाश्चात्य साहित्यसे, अंग्रेजी और बँगलाके माध्यमसे, आयी। किसी भी साहित्यके आरम्भमें अनु-करण और अनुवादका बोलबाला होता है। मौलिक रचनाओंकी सृष्टि पीछे चलकर होती है। प्रारम्भमें 'सरस्वती' और 'इन्दु' में बँगला और अंग्रेजीसे अनूदित कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। श्री गोपालराम गहमरीने अंग्रेजी जासूसी कहानियोंकी तरह जासूसी कहानियाँ लिखीं। शेक्सपियरके नाटक

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास पृ. ३२२

२. हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ—श्री कालिदास कपूर पृ० ९-१०

सीम्बलीन (Cymbeline) और ऐथेन्सका टाइमन (Timon of Athens) १९१० ई० की 'सरस्वती' में, कहानी-रूपमें, प्रकाशित हुए। श्री पार्वतीनन्दन और श्रीमती बंग-महिलाने कितनी ही बंगला कहानियोंका हिन्दी-रूपान्तर किया। इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि आधुनिक कहानियोंका प्रारम्भ इन अनूदित रचनाओं द्वारा ही हुआ।

हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी–हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी किसने लिखी, यह कहना कठिन है। इस सम्बन्धमें हिन्दीके आलोचकोंके बीच मतभेद है। डॉ०रामरतन भटनागरके शब्दोंमें "इशाअल्लाह खाँकी 'केतकीकी कहानी' हिन्दीकी पहली मौलिक कहानी-रचना है।" डॉ. श्रीकृष्णलालने जून १९०० ई० में किशोरी लाल गोस्वामी द्वारा लिखित 'इन्दुमती' को "हिन्दीकी सर्वप्रथम मौलिक कहानी" कहा है जिसका प्रकाशन 'सरस्वती' में हुआ था। पं० रामचन्द्र शुक्लने कालक्रमसे प्रकाशित तीन कहानियोंको मौलिक कहानियोंके अन्तर्गत रखा है जिनमें किशोरी लाल गोस्वामीकी 'इन्दुमती' (१९०० ई०) को प्रथम स्थान, अपनी कहानी 'ग्यारह वर्षका सपना' (१९०३ ई०) को दूसरा स्थान और श्रीमती बंग महिला द्वारा लिखित 'दुलाईवाली' (१६०७ ई०) को तीसरा स्थान दिया है। शुक्लजीके शब्दोंमें "यदि 'इन्दुमती' किसी बँगला कहानीकी छाया नहीं है तो हिन्दीकी पहली मौलिक कहानी ठहरती है।"[1] श्रीयुत राय कृष्णदास और श्री कृष्णलालके मतमें, पाश्चात्य कहानी-कलाकी दृष्टिसे, 'दुलाईवाली' हिन्दीकी सर्वप्रथम मौलिक कहानी है। श्रीयुत रायकृष्णदासने यहाँतक कहा है कि 'दुलाईवाली' का लिखा जाना हम एक आकस्मिक घटना कह सकते हैं।"[2] इसके विपरीत डॉ रामरतन भटनागरका कहना है कि "मौलिक कहानियोंके विकासमें 'इन्दु' का हाथ प्रधान रहा है। वर्तमान युगकी प्रथम मौलिक कहानी श्री जयशंकर प्रसादकी 'ग्राम' कहानी है। यह १९११ ई० में प्रकाशित हुई थी। अतएव, प्रसाद जीको हम आधुनिक हिन्दी-कहानीका प्रवर्तक कहानीकार कह सकते हैं।"[3]

१. हिन्दी साहित्यका इतिहास पृ० ५५६; २. इक्कीस कहानियां पृ० २०; ३. आधुनिक साहित्य पृ० ३१२

यदि हम इन विवादोंकी दलादलीमें न पड़ें तो यह कहना चाहिये कि प्रसादजीकी कहानी 'ग्राम' ही हिन्दीकी प्रथम मौलिक रचना है। प्रसादजी एक प्रकृत्या लेखक थे। उनकी कलमसे मौलिक कहानीका जन्म लेना कोई 'आकस्मिक घटना' नहीं कही जायगी। वस्तुतः यहींसे हिन्दी कहानियों-का व्यवस्थित क्रम विकासकी ओर अग्रसर होता है। इसके पहले हिन्दी-कहानीकी स्थिति डाँवाडोल थी। हिन्दीके लेखक विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं-से कहानियोंका अनुवाद करनेमें संलग्न थे।

अस्तु, डॉ. श्री कृष्णलालके शब्दोंमें, "आधुनिक कहानियोंका प्रारम्भ दो उद्गमोंसे होता है–एक तो लेखकोंके प्रतिदिनके साधारण जीवनके मनोरञ्जक प्रसङ्गोंको स्थान-चलन (local colour, 'दुलाईवाली') और यथार्थ चित्रणकी भावनाके क्रमिक विकाससे और दूसरा प्राचीन आख्यानात्मक गीतियों, प्रेमाख्यानक काव्यों और खण्डकाव्यों तथा नाटकोंके अनुकरणपर गद्यमें कहानीके रूपमें रचनाओंसे। प्रथम उद्गमसे यथार्थवादी कहानियोंका प्रारम्भ हुआ और द्वितीय उद्गमसे आदर्शवादी कहानियोंका। प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, चन्द्रधरशर्मा गुलेरी यथार्थवादी सम्प्रदाय-के कहानी-लेखक हैं और जयशंकर प्रसाद, चंडी प्रसाद हृदयेश, राधिकारमण प्रसाद सिंह, रायकृष्णदास इत्यादि आदर्शवादी सम्प्रदायके।"[1] पहले वर्गका प्रतिनिधित्व पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' ने किया और दूसरे वर्गका प्रतिनिधित्व श्रीयुत जयशंकर प्रसादके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'इन्दु' ने। इस तरह हिन्दीका कहानी-साहित्य प्रशस्त पथपर अग्रसर होने लगा और कुल २५-३० वर्षोंमें यह विश्व कहानी-साहित्यसे होड़ लेने लगा।

हिन्दी-कहानीका विकास—प्रेसोंकी बाढ़, मुद्रणकी सहूलियत, मासिक, अर्द्ध मासिक और साप्ताहिक पत्रोंकी बाढ़, शिक्षाका प्रचार आदि तथा देशमें अनेकानेक सामाजिक और राजनीतिक घटनाओंके कारण

---

१. आ. हिन्दी-साहित्यका विकास पृ. ३२६

हिन्दी-कहानीको पनपनेका स्वर्ण अवसर मिला। जितने कम समयमें हिन्दी कहानीने जितना आशातीत विकास किया उतना हिन्दी-साहित्यके किसी भी दूसरे अङ्गने नहीं किया। जिन दिनों भारतकी अन्य प्रान्तीय भाषाओंके कहानी-साहित्यने पर्याप्त विकास कर लिया था, हिन्दीका कहानी-साहित्य अपनी बाल्यावस्थामें था। बँगलामें रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र जैसे कुशल कहानीकारोंका उदय हो चुका था, हिन्दीमें प्रेमचन्द और प्रसादको छोड़कर, इनकी टक्करका एक भी कहानीकार खोज निकालना कठिन था। हिन्दी-साहित्यपर, आरम्भसे ही, विभिन्न प्रभाव पड़ते रहे हैं। लेकिन चूँकि हिन्दी-प्रान्त, भारतके उदरमें स्थित होनेके कारण, 'कट्टर रूढ़ियोंका दुर्भेद्य दुर्ग' है, इसलिए जहाँतक हो सका है हिन्दीके साहित्यकारोंने अपने परम्परागत समाजमें अपनी कुलीनता बनाये रखनेकी भरसक चेष्टा की है। इसीलिए प्रथम महायुद्ध (१६१४-१८) के पहलेतक हमारे कहानी-साहित्यमें उतने उलट-फेर नहीं देखे गये जितने उसके बाद हुए। हिन्दी-प्रान्तोंमें आर्य समाजके सामाजिक आन्दोलनने काफी जोर पकड़ा। इस आन्दोलनसे, बीसवीं शताब्दीके आरम्भिक बीस वर्षोंतक, हमारे कहानीकार बहुत ज्यादा प्रभावित होते रहे। यह द्विवेदी युग था। इस युगके कहानीकार भारतेन्दु युगकी सामाजिक चेतनाको स्वीकार कर सामाजिक कहानियाँ लिखनेमें ही व्यस्त रहे। प्रेमचन्द पहले आर्य-समाजके सुधारवादी सामाजिक आन्दोलनसे प्रेरित और प्रभावित हुए थे। बादमें चलकर उन्होंने दूसरे-दूसरे आन्दोलनोंको भी अपने साहित्यमें स्थान दिया। सामाजिक आन्दोलनोंमें ब्रह्म-समाजने बँगलामें और आर्य-समाजने हिन्दीमें स्थान बनाया। जिस तरह हिन्दी-प्रान्तोंमें सनातन धर्म और आर्य-समाजके साथ द्वन्द चलता रहा उसी प्रकार बंगालमें ब्रह्म-समाजके साथ संघर्ष होता रहा। बँगला साहित्यमें ब्रह्म-समाजने रवीन्द्रनाथको पैदा किया और सनातन समाजके अग्रगणी कलाकार शरच्चन्द्र हुए। हिन्दीके साहित्यकारोंमें प्रेमचन्द और प्रसाद इसी प्रकारके कलाकार हैं। हिन्दीके कहानीकार, यद्यपि देशके विभिन्न आन्दोलनोंके साथ साथ चलते रहे हैं तथापि,

गांधीजीके असहयोग आन्दोलनको छोड़कर, वे भिन्न-भिन्न प्रभावोंका स्वागत और ग्रहण करते रहे हैं। हिन्दीके कहानीकारोंमें विभिन्न प्रभावोंको पचाकर एक कर देनेकी अद्भुत क्षमता है। यही कारण है कि १९३५ ई. के पहले-तक हमारे कहानीकार किसी 'वाद' विशेषके जाल-पाशमें नहीं बँधे। श्रीशान्ति-प्रिय द्विवेदीने ठीक ही कहा है कि "हिन्दीके साहित्यिक अधिकतर अपने परम्परागत समाजमें अपनी कुलीनता बनाये रखकर ही अपनेसे भिन्न प्रभावोंको ग्रहण करते हैं–'राम झरोखे बैठके सबका मुजरा लेय।'' यह सच है कि हमारे साहित्यमें आर्य-समाज या सनातन-समाजकी सम्मिलित तथा संगठित शक्ति लेकर कोई कलाकार पैदा नहीं हुआ। अन्य प्रान्तोंमें ऐसी बात नहीं हुई। हमारे कहानीकारोंने प्रान्तसे आती हुई नयी विचार-धाराओंका स्वागत किया लेकिन साथ ही उनको ग्रहण करनेमें उन्होंने अपनी उदारताका परिचय दिया है। विभिन्न प्रभाववाली भाव-धाराओंका समीकरण (Assimilation) करनेमें उन्होंने अपने संतुलित मन और शान्त चित्तका परिचय दिया है। पाश्चात्य देशोंसे हमारे देशमें जितने 'वाद' आये, उन समस्त वादोंको हमारे साहित्यकारोंने ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं किया। यह सच है कि हमारे साहित्यकार अपने परम्परागत विश्वासों और सामाजिक धारणाओंसे बहुत ज्यादा चिपके रहते हैं; यही कारण है भारतीय संसदमें उपस्थित हिन्दू-कोड-बिलका जितना तीव्र विरोध हिन्दी-प्रान्तोंने किया उतना देशके दूसरे प्रान्तोंने नहीं किया। इसीलिए हम देखते हैं कि हमारे साहित्यकार किसी 'वाद' विशेषको स्वीकार करनेमें काफी सावधान और सचेत होकर अपने कदम उठाते हैं। बंगाल पाश्चात्य क्रान्तिकारी विचारोंका केन्द्र है, इसीलिए साम्यवादी प्रतिक्रियावादी घटनाएँ अधिकतर वहीं घटती रहती हैं। प्रथम महायुद्धतक हिन्दी-कहानीकार, आर्य-समाजके आन्दोलनसे प्रभावित होकर तथा देशकी राजनीतिक चेतनाको ग्रहणकर, कहानी-साहित्यकी रचना करनेमें प्रवृत्त रहे। जिस तरह बङ्गालके साहित्यमें ब्रह्मसमाज और सनातन समाजके बीच द्वन्द्व होता रहा, जिसके प्रतिनिधि साहित्यकार रवीन्द्रनाथ

और शरच्चन्द्र हैं, इस तरहका द्वन्द्व हमारे साहित्यमें हुआ ही नहीं। हम यह नहीं कह सकते कि प्रसादजी सनातनी थे और प्रेमचन्द आर्यसमाजी। यह सच है कि हिन्दी-कहानी-साहित्यपर बँगला कहानीकारोंका बहुत बड़ा ऋण है। भारतेन्दु-कालमें ही पं० किशोरीलाल गोस्वामीने बङ्किमचन्द्रके उपन्यासोंसे प्रेरणा ग्रहण की थी। बँगलाके साहचर्य्यसे हमारे कहानी साहित्यको जीवनका दैनिक चित्रपट मिला। हमारे कहानीकार उर्दूके रूखे और सस्ते रोमांस-संसारसे निकलकर जीवनकी वास्तविकताओंकी ओर आये। हमारा दृष्टिकोण पूर्णतः बदल गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ लोगोंने अतीत कालीन सांस्कृतिक जीवनको ग्राह्य समझा, जैसे श्री जयशंकर प्रसाद और श्री मैथिलीशरण गुप्त और कुछ लोगोंने वर्तमानकालीन गार्हस्थिक जीवनको ग्रहण किया। इसका फल यह हुआ कि हिन्दी-कहानी-साहित्यमें मौलिक कहानीकारोंका प्रादुर्भाव हुआ। "पहले हम अलिफ लैलाके देशमें थे, बँगलाके सम्पर्कसे हम अपनी माँ-बहनों, भाई-बन्धुओंके समाजमें आये।" इस सम्पर्कका विकासात्मक परिणाम यह हुआ कि हमारे साहित्यमें भी, बँगलाके रवि बाबू और शरच्चन्द्रकी तरह, दो यशस्वी साहित्यकार पैदा हुए—प्रेमचन्द और प्रसाद। लेकिन यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारे कहानीकारोंने किसी भी देशी-विदेशी कहानीकारको अपना साहित्यिक देवता नहीं समझा—प्रेरणा ग्रहण करना और बात है, और अपने स्वतन्त्र पथपर चलना दूसरी बात है। हमारे कहानी-लेखक स्वतन्त्र-पथ-गामी हैं। कहानीकार प्रसादपर श्री रवीन्द्रनाथका अक्षरशः प्रभाव पड़ा है और कहानीकार प्रेमचन्दपर श्री शरच्चन्द्रकी स्पष्ट छाप है, ऐसा हम नहीं कह सकते और न ऐसा कहना ही चाहिये। हिन्दी-आलोचकोंको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि हमारे साहित्यकारोंकी सदैव अपनी इच्छा-अनिच्छा रही है। हमारे साहित्येतिहासकारोंने हिन्दी भाषा-भाषियोंके बीच यह व्यर्थका भ्रम फैला रखा है कि हमारा साहित्य बँगलाका प्रभाव और प्रभुत्व स्वीकार करता रहा है। आज हिन्दी-साहित्यका इतिहास नये-ढंगसे लिखनेकी आवश्यकता है।

हमारे कहानीकारोंपर पाश्चात्य यूरोपीय साहित्यका भी ऋण है। द्विवेदी-युगमें अंग्रेजी उपन्यासों और कहानियोंका अनुवाद कर हमारे साहित्य-कारोंने बहुत कुछ सीखा है। अंग्रेजी कथा-साहित्यके प्रथम सम्पर्कमें आनेपर हम उस समाजके चटकीले रोमांस और भड़कीले जासूसी उपन्यासोंकी ओर आकृष्ट हुए। पश्चिमके सम्पर्कमें आनेपर हमारे जीवन-दृष्टिकोणमें महान् परिवर्तन हुए। जीवन और जगतकी वास्तविकताकी ओर हमारा ध्यान गया। यह कथन कुछ अंशोंमें सत्य है कि "वर्तमान भारतीय साहित्यका अग्रगामी प्रतिनिधि है बंगाल। न केवल हिन्दीसे, बल्कि अन्य प्रान्तीय भाषाओंसे बँगला उतना ही आगे रहा, जितना बंगालसे यूरोप।" इसमें सत्यकी बहुलता अवश्य है लेकिन बुद्धिमती बड़ी बहनसे कुछ बातोंमें प्रेरणा ग्रहण करनेसे छोटी बहन बड़ी बहन नहीं हो सकती। हाँ. छोटी बहन बड़ी बहनसे बौद्धिक चेतनामें भले ही आगे बढ़ जाये, यह दूसरी बात है। यह सच है कि आधुनिक हिन्दी साहित्यके उषाकालमें बंगलाने, बड़ी बहनकी हैसियतसे, हिन्दीके आधुनिक शिशुको बहुत कुछ दिया है, इसके लिए हम उसके ऋणी हैं लेकिन बालिका जब युवती हो जाती है तब फिर उसके पालन-पोषणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्तमान हिन्दी पूर्णरूपेण युवती हो चुकी है। प्रसाद और प्रेमचन्द हमारे कहानी-साहित्यकी आकस्मिक घटनाएँ हैं। जिन दिनों हमारा कहानी-साहित्य खड़ा होना सीख रहा था, उन दिनों इन दो महान् कलाकारोंका प्रादुर्भाव हमारे लिए एक प्रकारकी चामत्कारिक घटना है। हिन्दी कहानीने अपने जीवनके बहुत थोड़े समयमें युगप्रवर्तक और युगान्तरकारी कहानीकारोंको जन्म दिया है। यह आश्चर्यकी बात है। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्यमें दस-दस वर्षोंके बीच युगप्रवर्तनका हुंकार मचता रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि हमारा साहित्य न केवल बँगला जैसे भारतीय साहित्यसे वरन् विश्व-साहित्यकी उच्च भूमिपर एक साथ खड़ा होकर कवायद करनेके लिए उद्यत है। यह हमारे साहित्यके लिए मंगलका सूचक है। प्रथम महायुद्धके पहले हमारे कहानी-साहित्यमें प्रसाद,

सुदर्शन, कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री और राय-कृष्णदास जैसे उच्च कोटिके कहानीकारोंने प्रतिनिधित्व किया है।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीने एक बात बड़े मार्केकी कही है कि "जब सनातन समाज और आर्यसमाजका द्वन्द अपने क्लाइमेक्सपर पहुँचनेको था उसी समय सन् १९१४-१८ का यूरोपीय युद्ध छिड़ गया। उस महायुद्धने हमारा ध्यान दूसरी ओर बँटा दिया। हम राजनीतिमें अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे। सामाजिक आन्दोलनोंके अतिरिक्त हममें राजनीतिक आन्दोलनोंका भी उत्साह उमड़ने लगा।" "१९०५ ई० तक कांग्रेसमें नर्म दलवालोंकी ही संख्या अधिक थी। १९०५ में बङ्ग-भङ्गकी प्रसिद्ध राजनीतिक घटना घटी। इसी समय जब जापानने रूसको परास्त किया तो उसके प्रभाव-स्वरूप भारत-में भी उत्क्रान्ति और जागृतिकी भावना प्रबल हुई और तभीसे सुधारकी भावनाने उग्ररूप धारण किया। पुनः यूरोपीय महायुद्धके पश्चात् १९१८-१९२२ तक असहयोग आन्दोलन हुआ और १९३०-३२ तक सत्याग्रह अन्दोलन चला। इन आन्दोलनोंके फलस्वरूप राजनीतिक सुधार-आन्दोलन-की शक्ति बढ़ गयी।"[1]

बङ्ग-भङ्गके माध्यमसे होनेवाले स्वदेशी आन्दोलनने बँगलाके कहानी साहित्यको भी काफी प्रभावित किया। हिन्दी-कहानी-साहित्यपर इस आन्दो-लनका प्रभाव न पड़ सका क्योंकि स्वदेशी-आन्दोलन बंगालकी उपज था। तबसे ही बंगालमें क्रान्तिकारी पार्टियोंका जन्म होता रहा। रवि बाबूका 'घरे बाहिरे' और शरद बाबूका 'पथेरदावी' इसी आन्दोलनके सूचक हैं। इस आन्दोलनने प्रेमचन्दको भी झकझोरा। प्रेमचन्द समयकी गतिके साथ प्रगति-शील रहे। देशमें हुए विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनोंकी स्पष्ट झाँकी उनके साहित्यमें मिलती है।

"प्रेमचन्दके समयतक असहयोग आन्दोलन ही विशद रूपमें आया था। इसने हमारे जीवन और साहित्यकी कायापलट कर दी। यह एक

---

१ हिन्दी साहित्य—डॉ भटनागर पृ० १९०

जातीय या एक प्रान्तीय आन्दोलन न होकर समग्र राष्ट्रके जीवन-मरणका आन्दोलन था। इस अखिल भारतीय आन्दोलनमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, पारसी, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, सबको अभिन्न होनेका अवसर मिला। इसी आन्दोलनमें राष्ट्रभाषाकी प्रतिष्ठा बढ़ी और अन्य भारतीय भाषाओंके लेखक भी हिन्दीमें आये।....'असहयोग-आन्दोलनने सबसे बड़ा काम यह किया कि उसने हमारी प्रवृत्तियोंकी दिशा बदल दी। गाँधी-वादके द्वारा हमारे जीवन और साहित्यमें एक सुरुचि आयी।.....'गाँधी-युगसे पूर्व हम साहित्यके भीतरसे केवल कलाकी प्रेरणा लेते थे, अब साहित्यके भीतरसे जीवनकी प्रेरणा लेने लगे। पहले हम केवल ग्रन्थ खोलते थे, अब ग्रन्थि खोलनेकी दीक्षा लेने लगे। असहयोग आन्दोलनने जैसे समाजके सभी वर्गोंपर प्रभाव डाला, वैसे ही साहित्यके सभी अङ्गोंपर। कहानी-साहित्यमें यदि प्रेमचन्द इस आन्दोलनके प्रतिनिधि हुए तो काव्य-साहित्यमें मैथिली-शरण गुप्त।

"इस आन्दोलनके द्वारा न केवल हम देशसे बल्कि संसारसे भी परिचित हुए। फलतः हम विश्व-साहित्यकी ओर भी प्रेरित हुए। जैसा कि पहले कहा है कि अंग्रेजीके प्रथम सम्पर्कसे हमारी अपरिपक्व रुचि हलके उप-न्यासोंकी ओर रुजू हुई थी, किन्तु असहयोग-आन्दोलनमें परिपक्व होकर वह विश्व-साहित्यकी गम्भीर प्रेरणाओंकी ओर अग्रसर हुई। हमारी कविता और कहानी-साहित्यपर अंग्रेजीका प्रभाव तो पड़ चुका था, अंग्रेजीके माध्यमसे हम फ्रेंच, जर्मन, रूसी, एशियन और इटालियन, कथा-साहित्यके सम्पर्क में आये।"[१]

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के बाद विश्व-जीवनकी भाव-धारामें आमूल परिवर्तन हुआ। इससे भारत भी तटस्थ न रह सका। ज्यों-ज्यों हम पश्चिमकी प्रवृत्तियोंसे परिचित होते गये त्यों-त्यों भारतीय कहानी-कारोंके दृष्टिकोणोंमें भी परिवर्तन हुए। इस युद्धके बाद भारतके समस्त प्रान्तोंमें

---

१ युग और साहित्य।

ऐक्य-भावना, विचारोंकी एकता, अनुभूतिकी एकता, कल्पनाकी एकता पायी जाने लगी। हम सब असहयोग-आन्दोलनके मुहानेपर जमा हो गये। प्रान्तीयता छिन्न-भिन्न हो गयी। पहली बार हमारे प्रान्तीय साहित्यकारोंने साहित्यिक प्रवृत्तियोंकी एकताकी अनुभूतिका अनुभव किया। राष्ट्रीयताकी लहर भारतीय साहित्यमें फैल गयी। इसी समय हम पाश्चात्य साहित्यके विविध 'वादों' से परिचित हुए। फ्रायडका भोगवाद, गाँधीजीका गाँधीवाद और मार्क्सका-साम्यवाद या समाजवाद पढ़े-लिखे भारतीय नवयुवकोंके मनको आकृष्ट करने लगे। भारतीय साहित्य इन त्रिगुणात्मक भावधाराओंकी त्रिवेणीमें प्रवृष्ट हुआ। हिन्दी-साहित्यमें यथार्थवाद और आदर्शवादके नामपर रचनाएँ होने लगी। वर्तमान भारतीय साहित्यमें आदर्शवादका उदाहरण है गाँधीवाद और यथार्थवादका उदाहरण है मार्क्सवाद। गाँधीवाद कर्म-मूलक है, फ्रायडवाद काम-मूलक है और मार्क्सवाद अर्थमूलक। तदनुरूप हिन्दी-साहित्यपर भी 'छायावाद', 'प्रकृतिवाद', 'कलावाद', 'रहस्यवाद' इत्यादि जैसे 'वादों', का आक्रमण होने लगा। साहित्यकी रचना इन्हीं 'वादों' पर आधारित होने लगी। महादेवी वर्माने 'रहस्यवाद' का आँचल पकड़ा, पन्तने छायावादकी शरण ली। इसी तरह पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने यथार्थवादको साहित्यिक रचनाकी कसौटी स्वीकारकर अपनी पुस्तकोंकी रचना की। श्री मैथिलीशरण गुप्तने गाँधीवादका आश्रय ग्रहणकर आदर्शवादकी भावधारा बहायी। इस तरह हिन्दी-साहित्य सामन्तवादी युगकी दलदलसे निकलकर बाहर आया और वह व्यक्तिवादी हो गया।

१९२० के पश्चात् हिन्दी-कहानी-साहित्यमें ऐसे कहानीकारोंकी बहुत बड़ी संख्या सामने आयी जिन्होंने फ्रायडके स्वप्नसिद्धान्तवादकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की और अपनी कहानियोमें इस 'वाद' के मूल सिद्धान्तोंको खपानेकी चेष्टा की, जिसमें वे काफी सफल हुए। पहलेकी कहानियाँ जहाँ सामाजिक और आदर्शवादिनी थीं अब वे मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिवादी होने लगीं। जहाँ पहले कहानियोंमें घटनाओंको स्थान दिया जाता था वहाँ अब मनुष्य

जीवनकी क्षणिक अनुभूतियोंको प्रश्रय दिया जाने लगा। सामाजिक पतित जीवनकी आलोचना व्यक्तिके माध्यमसे होने लगी। प्रेमचन्द, कौशिक, सुदर्शन जैसे कहानीकारोंको कोरा आदर्शवादी कहा जाने लगा। अब कहानी मानव-मनमें पैठकर इसकी गति-विधिका विश्लेषण करने लगी। पहलेके कहानीकार जहाँ वस्तुनिष्ठ थे, अब आत्मनिष्ठ होने लगे। बाह्य जगत्की घटनाओंका वर्णन न करके अब वे अन्तर्जगतके द्वन्द्वोंका चित्रण करने लगे। इस प्रकारके कहानीकारोंमें श्री जैनेन्द्रकुमार अग्रगण्य हैं। इनके अतिरिक्त सर्वश्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, बेचन शर्मा उग्र, विनोदशङ्कर व्यास, वाचस्पति पाठक तथा इलाचन्द्र जोशी भी इस कालके श्रेष्ठ कहानीकार हैं। उनमें श्री गङ्गा प्रसाद पाण्डेयके शब्दोंमें "उग्र, जैनेन्द्र कुमार तथा इलाचन्द्र जोशीने अवश्य ही कहानी-साहित्यमें क्रान्ति लानेका प्रयत्न किया है। इनकी कहानियोंमें जीवनकी नवीन गति तथा दिशाकी सूचना मिलती है, जो पिछले युगके सभी कहानीकारोंसे भिन्न अपनी एक विशेष सत्ता रखती है। उग्र जी हिन्दी-साहित्यमें एक उल्कापातकी भाँति आकर विलीन हो गये, किन्तु यथार्थका जैसा सचित्र तथा सजीव स्वरूप उनकी कृतियोंमें मिलता है, वह किसी भी पाश्चात्य यथार्थवादी कथाकारसे किसी प्रकार कम नहीं है।...... उग्रकी प्रतिभा और लेखनीकी शक्तिका हिन्दी-साहित्य 'अब भी कायल है। श्री जैनेन्द्रकी कहानियोंमें हृदय-द्वन्द्वकी जो सूक्ष्मता और मनोवैज्ञानिक प्रगलभता मिलती है, वह आज भी उनकी अपनी चीज है। अन्तस्तलके उद्वलित तरङ्गाकुल प्रदेशका ऐसा चित्रण कम ही मिलता है।......कथा-साहित्यमें श्री इलाचन्द्र जोशीकी एक विशेष भाव-धारा है। उनकी कहानियोंमें मनोभावोंका सूक्ष्मतम तरङ्गाभिघात एवं जीवनके मूलतत्त्वोंका विश्लेषण तथा विवेचन, हिन्दी-कथा-साहित्यमें अपनी जगह अकेला है। यदि सच पूछा जाय तो जीवनके बाह्य तथा अन्तरके भाव-प्रतिभावोंका तुमुल संघर्ष और उनका सामजस्य जोशीजीकी साहित्यको सबसे बड़ी देन है।"[1]

---

१. आधुनिक कथा-साहित्य पृ० २९-३०

दस वर्ष बाद, सन् १९३० के आस-पास, हमारे भारतीय राजनीतिक जीवनने फिर करवट बदली। उपरिकथित आदर्शवाद और यथार्थवाद हमारे जीवनके आरम्भसे ही दूध और पानीकी तरह मिले-जुले रहे हैं। भारतके प्रान्तीय साहित्योंमें हिन्दी साहित्य ही ऐसा साहित्य है जिसमें आदर्शवाद और यथार्थवादका सन्तुलित गुम्फन हुआ है। लेकिन महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें भारतीय जीवन इतनी तीव्र गतिके साथ विकसित होता गया कि हमारे साहित्यकार पूर्व संस्कार और विचारधाराको एकबारगी झटका देकर तोड़ फोड़ देनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। फिर भी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीके शब्दोंमें "अभी रोमान्टिसिज्म (छायावाद) के सभी विभेद आ भी नहीं पाये थे, हमने सिर्फ उसकी वर्णमाला ही शुरू की थी कि हमारे साहित्यमें रोमान्टिसिज्म दिन-प्रति-दिन कम होने लगा। इसलिए नहीं कि वह क्लासिकल हो गया था बल्कि इसलिए कि वह सम्पन्न वर्गकी दुर्बलताओंका अवगुण्ठन बन गया था।......आज छायावादके बाद कविता और कहानियोंमें समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic realism) अपना स्थान बनाता जा रहा है। क्रान्तिकारी पार्टीके मुक्त राजबन्दियों (जैसे, श्री अज्ञेय) द्वारा हमारे साहित्यको सामाजवादका परिचय मिला है, यद्यपि उनमें भी कई दल हो गये हैं—कोई दल क्रान्तिके साथ संस्कृतिके सम्पर्कमें भी है तो कोई दल केवल क्रान्तिसे ही विभिन्न स्टेजोंका हिमायती—कोई स्टालिनवादी है, कोई ट्राटस्कीवादी, कोई लेलिनवादी। आज-कल गाँधीवादियोंके भीतर द्वन्द्व हो गया है तो दूसरी ओर समाजवादियोंके भीतर भी अनेक द्वन्द्व हैं। यह असलमें राष्ट्रके भीतरकी भावी जीवन-यात्राके लिए मानसिक कवायद हो रही है जिसमें प्रत्येक एक दूसरेकी कमजोरियोंको दिखला दिखलाकर चुस्त दुरुस्त होनेकी चुनौती दे रहा है। आज मानो हम भी भावी विश्वक्रान्तिके संगठनके लिए चंचल हो उठे हैं। तो, हमारे साहित्यको जब मुक्त राजबन्दियोंने समाजवादी यथार्थवाद दिया तब छायावाद और गाँधीवादकी परिधिके भी कतिपय कलाकार इस दिशामें आये; जैसे पन्त, भवगतीचरण

वर्मा आदि। आज साहित्यमें प्रगतिवादका तुमुल स्वर गूँज उठा है……। अभी हम सुधारोंकी सतह ही पार कर रहे हैं। हाँ, क्रान्तिके पथपर अग्रसर होनेके लिए गाँधीवाद और समाजवादका द्वन्द्व भी हो रहा है।" हमारे साहित्यमें समाजवादी यथार्थवादका प्रभाव हिन्दी-कहानी-साहित्यपर भी पड़ा। गाँधीवादने हमारे कहानी साहित्यको प्रेमचन्द दिया और समाजवादने अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, निराला, पन्त जैसे कहानीकारोंको पैदा किया। यदि प्रेमचन्द अभी जीवित होते तो वे हमारे कहानी-साहित्यके गोर्की भी हो जाते लेकिन वे टालस्टाय होकर चले गये। इन कहानीकारोंमें श्रीअज्ञेयका स्वर सबसे ऊँचा हैं। "पुराण-पन्थी और सामाजिक रूढ़ियोंके मूलोच्छेदनका स्वर इनकी कहानियोंका केन्द्र-विन्दु मालूम पड़ता है।" अज्ञेयजीके कहानी-साहित्यमें नये विचारोंकी विस्फोटक क्रान्ति है जिसका स्पष्ट विकास यशपाल और पहाड़ीकी कहानियोंमें हुआ है। ये दो कहानीकार प्रगतिवादी साहित्यके प्राञ्जल कलाकार हैं। इनकी कहानियोंमें पिछले युगकी कहानियोंकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताका अभाव है। इनमें हम जो कुछ पाते हैं, वह है, श्रमजीवियोंके प्रति बौद्धिक ममता।

सन् १९३५के बाद हमारे देशकी राजनीतिमें कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। काँग्रेसने वैधानिक सुधारोंको स्वीकार कर लिया, १९३९ ई० में दूसरा विश्वव्यापी महायुद्ध छिड़ा, १९४० में गांधीजोकी घोषणा—अंग्रेजों, भारत छोड़ो, १९४२ में अगस्त-क्रान्ति १९४७ में भारतको स्वतन्त्रता प्राप्ति, बंगाल-में अकाल, देशके विभाजनसे पंजाब, बिहार और बंगालमें जन-संहार। इन समस्त ऐतिहासिक घटनाओंका सम्मिलित प्रभाव हमारे कहानीकारों-पर पड़ा।

ऊपरकी पंक्तियोंमें हमने आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यका ऐतिहासिक विकास दिखलानेका प्रयत्न किया है। हमने बतलाया है कि हमारा कहानी-साहित्य किन-किन-विचारधाराओंसे होकर उन्मुख और अग्रसर होता गया है। युग-प्रवर्तक कहानीकारोंमें प्रसाद, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, यशपालके

नाम किसी भी साहित्यकी शोभा बढ़ा सकते हैं। वर्तमान हिन्दी-कहानी-साहित्य-को इन महानुभावोंने प्रगति दी है। इनके ही प्रयत्न और परिश्रमसे कहानी-साहित्यका इतना शीघ्र विकास सम्भव हो सका है।

"प्रेमचन्दके बाद यशपाल सही मानेमें जनसाधारणके लिए हिन्दी-कथा-साहित्यका प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनाएँ एक ओर साहित्यिकोंके लिए दूसरी ओर जनताके लिए भी आकर्षक हैं। भाषा और शैलीकी दृष्टिसे ऐसा जान पड़ता है कि मानों प्रेमचन्द ही नये युगमें नया शरीर धारणकर पुनः सजीव हो गये हैं।...यशपालकी कहानियाँ प्रेमचन्दजीकी कहानियोंसे बहुत छोटी हैं। छोटी कहानीकी दृष्टिसे इतनी छोटी सारगर्भित कहानियाँ हिन्दीमें दुर्लभ हैं।"[1]

यशपाल हमारे कहानी-साहित्यके इतिहासमें इन दिनों अन्तिम प्रहरीका काम कर रहे हैं। भविष्य अन्य क्रान्तिकारी कहानीकारोंकी प्रतीक्षामें है।

सन् १९२८-२९ के पश्चात् विश्व-साहित्यमें कहानियोंकी शक्ति और सत्ता सर्वाधिक स्वीकार कर ली गयी। लोगोंने यह जान लिया कि विश्वका सबसे बड़ा साहित्यकार वह है जो अपनी कहानियोंपर विश्वका नोबुल पुरस्कार प्राप्त कर लेता है। हिन्दीमें अभीतक किसी भी कहानीकारको मंगलाप्रसाद पुरस्कारसे सम्मानित नहीं किया गया है। कहानी-साहित्यके क्षेत्रमें निराला सियारामशरण गुप्त, पन्त, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा जैसे उच्चकोटिके कवियोंका आगमन शुभ लक्षण है। कवि होनेके नाते इन कवि-कहानीकारोंकी कहानियोंमें कवि-कल्पनाकी कोमलता आ ही गयी है। ये प्रधानतः कवि हैं, फिर कहानीकार।

हिन्दी कहानीके उत्तरोत्तर विकासमें कुछ कहानी-लेखिकाओंने भी सहयोग दिया है जिनमें महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, तेजरानी पाठक, कमला देवी चौधुरी, होमवती देवी, सत्यवती मलिक, उषादेवी मित्रा आदि लेखिकाएँ उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-कहानीका भविष्य उज्ज्वल है। हमारे

१. सामयिकी पृ० २८२-८३

साहित्यका यह अंग अब विश्व-कहानी-साहित्यसे टक्कर लेनेमें समर्थ हो गया है। मौलिक कहानीकारोंके आगमन प्रतिवर्ष हो रहे हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदीने ठीक ही कहा है कि "कथा-साहित्यकी परिणतिमें भी युगका क्रम-विकास वैसा ही रहा जैसा काव्य-साहित्यमें—द्विवेदी-युगके आदर्शोन्मुख स्थूल (वस्तु सत्य) से छायावादके अन्तर्मुख सूक्ष्म (भाव-सत्य) की ओर, अन्तर्मुख सूक्ष्मसे यथार्थवादके अन्तर्गत स्थूल (मनोविकार) की ओर, अन्तर्गत स्थूलसे प्रगतिवादके बहिर्गत स्थूल (इतिहास-विज्ञान) की ओर।"[१] बीसवीं शताब्दीके भारतीय राजनीतिक जीवनमें तीन युग-चिह्न पाये जाते हैं—जागरण, सुधार और क्रान्ति। हिन्दी कहानीमें ये तीन चिह्न स्पष्ट हैं—प्रेमचन्दका कहानी-साहित्य भारतीय 'जागरण' का परिचायक है, जैनेन्द्र-अज्ञेयका साहित्य सांस्कृतिक-गार्हस्थिक सुधारका द्योतक है और यशपाल-पहाड़ीका साहित्य क्रान्तिका सूचक। वस्तुतः आज भी हम जागरण-कालमें हैं क्योंकि आध्यात्मिक जीवनमें हमारा देश संसारमें सबसे पहले जगा था किन्तु भौतिक जीवनमें सबसे पीछे आज जागनेके लिए प्रयत्नशील है। आधुनिकतम कहानी-साहित्य इसी प्रयत्नका परिणाम है। लेकिन यह अजीब बात है कि 'व्यावहारिक जीवनमें हम ऐतिहासिक वास्तविकताओंको झेलते चले जा रहे हैं किन्तु मानसिक जीवनमें हम आज भी मध्यकालके रोमान्टिसिज्ममें हैं'। 'माया' और 'मनोहर कहानियाँ' में प्रकाशित होनेवाली कहानियाँ इस कथनकी पुष्टि करती हैं।

---

१. सामयिकी, पृ. ३५८-५९

हिन्दी कहानीकारोंका वर्गीकरण

कलाके दो पक्ष होते हैं—वस्तु (Matter) और शिल्प-विधान (Technique)। हिन्दी कहानीकारों और उनकी कहानियोंका वर्गीकरण केवल शिल्प-विधानके आधारपर करना अच्छा न होगा। यह एकांगी वर्गीकरण है। आजके साहित्यमें रूप-रचना (Form) की अपेक्षा भाव-विधान या वस्तुको ही प्रधानता दी जाती है। प्रत्येक कहानी-लेखककी अपनी स्वतंत्र भाव-प्रकाशन-शैली होती है। सबकी अपनी-अपनी विशेषता होती है। यह निश्चयके साथ नहीं कहा जा सकता कि किसी एक कहानीमें घटनाकी प्रधानता है, या चरित्रकी; वातावरणकी प्रधानता है या कथानककी। कहानी-कलाके अन्तर्गत ये सारी बातें आप ही आ जाती हैं। एक समय था जब हम कहानीमें कलाकी खोज करते थे, आज वह समय है जब हम उसमें विचार या भावकी खोज करते हैं। अतएव, कहानी-साहित्यका अध्ययन, उसका वर्गीकरण ऐतिहासिक दृष्टिसे ही करना चाहिए। कलाकी सूक्ष्मता और उसकी बारीकी ढूँढ़नेका जमाना जाता रहा। इस प्रकारकी प्रवृत्ति भारतेन्दुके साथ ही समाप्त हो गयी। द्विवेदी-युगके कुछ आलोचकोंने भी साहित्यमें कलाकी छान-बीन अवश्य की थी, लेकिन अब हम कला-विधानको प्रश्रय न देकर विचारको देते हैं। टेकनीक किसी भी कहानीकारकी वैयक्तिक सम्पत्ति होती है। वह जिस तरह चाहे उसका प्रयोग कर सकता है। कहानीकारको अपने विचारों और भावोंको ही व्यवस्थित रूपमें रखनेमें कठिनाई होती है। विचारोंका उचित संस्थान आजकी कलाकी माँग है। इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि हिन्दीके कहानीकारों और उनकी कहानियोंका वर्गीकरण केवल कहानीके शिल्प-विधानको (Technique) ध्यानमें रखकर, करना साहित्यके एकाङ्गी दृष्टिकोणको अपनाना होगा। जबतक हम कलाके दोनों पहलुओं—वस्तु और विधान—को अपनी आलोचनाका विषय नहीं बनाते तबतक हम कहानी-साहित्यके मर्मको नहीं समझ सकेंगे। डॉ० श्री कृष्णलालने 'अपनी पुस्तक' 'आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास' में कहानीके

सिर्फ कला-पक्षके आधारपर ही आधुनिक कहानियोंका वर्गीकरण कर उनकी आलोचना की है। यदि हम कलाके दोनों रूपोंको ध्यानमें रखकर आधुनिक हिन्दी कहानियों और उनके कहानीकारोंका वर्गीकरण करें तो वह इस तरह होगा—

१. प्रसाद-स्कूल—प्रसाद, चण्डीप्रसाद हृदयेश', राय कृष्णदास, विनोद शंकर व्यास, पन्त, महादेवी आदि।

२. प्रेमचन्द स्कूल—प्रेमचन्द, कौशिक सुदर्शन भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, राधाकृष्ण आदि।

३. उग्र स्कूल—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि।

४. जैनेन्द्र स्कूल—जैनेन्द्र, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी आदि।

५. यशपाल-स्कूल—यशपाल, पहाड़ी, अमृतलाल नागर, अमृतराय, अंचल, कृष्णदास आदि।

हिन्दी-कहानीकारोंका ऊपर दिया हुआ वर्गीकरण एक अधिकारीकी अन्तिम परीक्षाका फल नहीं है। उसे एक विद्यार्थीके अध्ययनका निजी निष्कर्ष समझना चाहिये। हमने कलाके उपरिकथित दोनों छोरों—वस्तु और भाषा-शैली-के आधारपर उपर्युक्त वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। कहानीकारोंके इन विभिन्न स्कूलोंका क्रम भी ऐतिहासिक दृष्टिसे स्थिर किया गया है। हिन्दी कहानी-साहित्यका जिस क्रममें विकास होता गया उसीकी यह एक रूपरेखा है। कहानियोंके इन विभिन्न स्कूलोंकी अपनी विशेषताएँ हैं। संक्षेपमें, हम यहाँ उनकी विशेषताओंकी रूप-रेखा उपस्थित करेंगे।

प्रसाद-स्कूल—इस स्कूलके कहानीकारोंमें हिन्दू-संस्कृतिकी ऐतिहासिक और सामाजिक चेतनाके दर्शन होते हैं। इस स्कूलकी सबसे बड़ी विशेषता है भावात्मकता। भावना, कल्पना और अनुभूतिसे कहानियोंके पृष्ठ रँगे गये हैं। "१६१५ से २० तक प्रसादजीका गम्भीर मनन वा तैयारीका काल

कहना चाहिये, जिसके फल स्वरूप उनकी अद्वितीय साहित्यिक शक्ति उद्‌बुद्ध हुई। बँगलाका जो बहिरंग प्रभाव उनपर था उसे इस बीच उन्होंने झटकार दिया। इसके बाद उन्होंने कहानी, कविता, नाटक, काव्य सभीमें हिन्दीको नये पथपर चलाया। प्रसादजीकी कहानियाँ भाव-प्रधान होती हैं, भले ही उनकी पृष्ठ-पीठिका प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक वा राजनीतिक हो।"[1] प्रसादजी इस स्कूलके कहानीकारोंके आदि-गुरु थे। इनकी कहानियोंका प्रत्यक्ष प्रभाव, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास जैसे कहानीकारोंपर पड़ा। रायकृष्णदासकी कहानी 'रमणीका रहस्य' प्रसादजीकी प्रागैतिहासिक चेतना लिये हुए है। इस स्कूलकी दूसरी विशेषता यह है कि कहानियाँ रसका सञ्चार करती हैं। रस-परिपाक इनका प्रधान उद्देश्य है। सस्ती भावुकता और हल्का मनोरंजन इन कहानियोंमें नहीं मिलेगा। ये किसी-न-किसी मानव-जीवनके मनोवैज्ञानिक सत्यको स्पष्ट करती हैं। 'रमणीका रहस्य' में रायकृष्णदास लिखते हैं कि 'नारीका प्रकृत रूप उसकी मुसकानमें नहीं, आँसुओंमें प्रत्यक्ष होता है।' मनोवैज्ञानिक सत्यका उद्‌घाटन करना इस स्कूलकी तीसरी विशेषता है। इस स्कूलकी चौथी विशेषता है भावात्मक भाषा-शैली। "हिन्दी कहानी-कलाको प्रसादजीने एक नवीन भावात्मक शैली दी है। घटना और चरित्र-चित्रणके बजाय सुकोमल मर्मस्पन्दनमें उनकी कहानियोंकी सजीवता है। इस शैलीका एक सुदृढ़ विकास रायकृष्णदासकी कहानियोंमें हुआ है—उनमें प्रेमचन्दके वस्तुचित्रपट और प्रसादके मर्मव्यञ्जक चित्रणका सुन्दर सम्मिश्रण है। मूलमें यह शैली रवीन्द्र-शैली है।"[2] इस स्कूलका प्रारम्भ प्रसादजीकी १९११ ई० में प्रकाशित कहानी 'ग्राम' से होता है। इस स्कूलकी कहानियोंमें कथानक कम, भावुकत और कवित्व अधिक रहता है। इस स्कूलके सबसे बड़े अनुयायी कहानीकार रायकृष्णदासजी हैं।

प्रेमचन्द-स्कूल—हिन्दी-साहित्यके दूसरे युग-प्रवर्त्तक कहानीकार प्रेमचन्द, सन् १९१६ में, अपनी पहली हिन्दी कहानी 'पंच परमेश्वर' के

१. इक्कीस कहानियाँ, पृ. ३४. ३५; २. सामयिकी, पृ. २३५।

साथ, हिन्दी-साहित्यमें, आये। इस स्कूलकी कहानियोंका प्रारम्भ प्रेमचन्दसे पहले ही गुलेरीजीकी कहानी 'उसने कहा था' (१९१५) और राधिका रमण प्रसाद सिंहकी कहानी 'कानोंका कँगना' (१९१३) और विश्वभरनाथ 'कौशिक' की कहानी 'रक्षा बन्धन' (१९१३) द्वारा हो चुका था लेकिन चूँकि प्रेमचन्दने इस स्कूलको अधिकाधिक विकसित किया; अतएव इसका नामकरण उन्हींके नामसे हुआ है। इस स्कूलकी कहानियोंकी विशेषता यह है कि इनमें घटनाओंकी प्रधानता रहती है। अतएव हम इन्हें घटना-प्रधान कहानियोंके अन्तर्गत रख सकते हैं "इसमें चरित्र-चित्रणपर अथवा, वातावरण और परिपार्श्व (back ground) पर अधिक जोर न देकर उन उलझनोंपर दिया जाता है जो विविध चरित्रके विविध परिस्थितियोंमें पड़नेके कारण पैदा हो जाती हैं और संक्षेपमें चरित्रों और परिस्थितियोंके सम्बन्धपर जोर दिया जाता है।"[1] प्रेमचन्दकी कहानी 'नशा' कौशिकजीकी कहानी 'रक्षा बन्धन' और सुदर्शनकी कहानी 'हारकी जीत' इसके उदाहरण हैं। इनमें 'कौशिक' जी इस प्रकारके कहानीकारोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं।

इस स्कूलकी कहानियाँ, समाज और जीवनका सर्वाङ्गीण चित्रण करनेके कारण सबसे अधिक लोक-प्रिय हुई हैं। जनताके बीचमें प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक, राजा राधिकारमणकी कहानियोंका जितना प्रचार और प्रसार हुआ है उतना अन्य कहानीकारोंका नहीं। यही कारण है कि इन लेखकोंकी कहानी-शैलीका प्रभाव हिन्दीके अन्य कहानीकारोंपर भी बहुत अधिक पड़ा है। हिन्दीकी अनेकानेक कहानियाँ इनके अनुकरणपर लिखी गयी है। बिहारके कुशल कहानीकार श्रीराधाकृष्ण इसी स्कूलके कहानीकारोंमें एक हैं। इस स्कूलकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, 'इन कहानीकारोंने भारतीय समाजके विभिन्न वर्गों, प्रधानतः ग्रामीणोंका जीता-जागता चित्र उपस्थित किया है। ग्रामीण और निम्न वर्गके जीवनका इतना सूक्ष्म और हृदयग्राही चित्रण हिन्दीकी अन्य कहानियोंमें नहीं पाया जाता। प्रेमचन्द इसके एकमात्र प्रतिनिधि कलाकार हैं।

१. आ. हि० सा० का विकास. डॉ० श्री कृष्णलाल, पृ० ३२९

इस स्कूलके कहानीकारोंने यथार्थ और आदर्शका अद्भुत समन्वय किया है। इनकी लोकप्रियताका यह भी एक सबल कारण है। इन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यताकी वास्तविक आत्माको पहचाना था। पाश्चात्य कहानी-साहित्यसे प्रभावित होनेपर भी इनकी कहानियाँ भारतीयताकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनमें भारतकी आत्मा साकार हो उठी है।

इस स्कूलके कहानीकारोंने कथोपकथनपर अधिक बल दिया है। इनकी कहानियोंमें जितना सारगर्भित, सार्थक, सजीव और स्वाभाविक कथनोकथन मिलता है उतना हिन्दीके दूसरे कहानीकारोंमें नहीं मिलता।

इस स्कूलकी लोकप्रियताका सबसे बड़ा कारण भाषा-शैली है। इसकी भाषा-शैली प्रसाद स्कूलकी भाषा-शैलीसे बिलकुल भिन्न है। इसके लगभग सभी कहानीकार उर्दूसे होकर आये हैं। उर्दूकी मुहावरेदार शैली, भाषाकी सरलता और सरसता, उसका प्रवाह इनकी भाषाकी विशेषताएँ हैं। महात्मा गाँधीका जो हिन्दुस्तानी-भाषाका आदर्श था, उसका जीता-जागता नमूना इन कहानियोंमे सुरक्षित है। उग्र-स्कूलके कहानीकारोंने भाषाके इस आदर्शको हृदयसे अपनाया है।

उग्र-स्कूल—इस स्कूलके प्रतिनिधि कलाकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं। हिन्दी कथा-साहित्यमें उग्रजी उल्कापातकी तरह १९२२, में आये। आपके आनेसे हिन्दीके कहानी-साहित्यमें नवीन शक्ति और क्रान्तिका प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दीके पाठक प्रेमचन्द-स्कूलकी कहानियाँ पढ़नेमें अपनी अभिरुचि दिखला रहे थे। इसी बीच उग्रजी बवंडरकी तरह आये। इन्होंने न केवल नवीन चलती, चुलबुलाती भाषाकी सृष्टि की वरन् वे अपने साथ नये दृष्टिकोण लेकर भी आये। वे समाजके प्रति विद्रोहकी भावना लेकर उठे थे। जिस समय नये दृष्टिकोणको लेकर उग्रजी हमारे साहित्यमें आये उस समय देश क्रान्तिके लिए तैयार नहीं था। हिन्दीके पाठक और आलोचक भी उनके नये विचारोंको सँभाल पानेमें असमर्थ थे। उग्रजीका साहित्यमें आगमन एक आकस्मिक घटना है। वह समयसे पहले ही आ गये थे। ये उन क्रान्तिकारी लेखकोंमें हैं जिन्होंने अपनी लौह-लेखनीसे

रूढ़िके पर्देको चीरकर फेंक देना चाहा था। लेकिन उग्रका युग संहारका न होकर सुधारका था। उग्रके साहित्यने तत्कालीन आलोचकोंको उग्र बनाया और सबने खंडनात्मक आलोचना कर उनकी उपेक्षा और भर्त्सना की। उनके साहित्यको 'घासलेटी साहित्य' कहकर उसका वहिष्कार किया गया। यहाँतक कि उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'दिल्लीके दलाल' को 'अछूत' तक करार दे दिया गया। प्रेमचन्दके बाद समाज और विशेषकर देशकी राजनीतिक प्रगतियोंका जितना यथार्थ और सुन्दर वर्णन उग्रजीने किया है उतना अन्य किसीने नहीं किया। भाषा, शैली, कथानक और कल्पना सबमें मौलिकताके दर्शन होते हैं। उग्रकी कहानियोंका संग्रह 'चिनगारियाँ' हिन्दी कहानीकी क्रान्तिकारी रचना है। उनके बाद इस क्षेत्रमें अज्ञेयजी ही हैं।

उग्र अपने समयकी एक शक्ति थे। भविष्यके उज्ज्वल आदर्शोंका स्वप्न देखनेवालोंमें वे नहीं हैं। ये मानते हैं कि कलाका आधार अनुकरण ही है। समाज जैसा है वैसा ही कह देनेमें ये अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझते हैं। अपने युगकी सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंका सजीव चित्रण इनके साहित्यमें किया गया है। 'दोजखकी आग', 'चिनगारियाँ,' और 'बलात्कार' उनकी कहानियोंके संग्रह-ग्रन्थ हैं। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या-पर इनकी कहानियाँ देखने योग्य हैं। अपने युगमें उग्रकी सदैव उपेक्षा होती रही। आजका प्रगतिवादी साहित्यिक अब इनका सम्मान करने लगा है। फिर भी उग्रके साहित्यकी परम्परा न चल सकी। यही कारण है कि इस स्कूलके कहानीकार इने-गिने ही हैं। चतुरसेन शास्त्री और ऋषभ-चरण जैनने इसका अवश्य प्रचार किया लेकिन प्रचण्ड यथार्थवादकी नग्नता उग्रको छोड़कर दूसरे कहानीकारोंमें नहीं देखी गयी। उग्रजी स्वयं एक स्कूल हैं, अपने क्षेत्रमें अद्वितीय और अननुकरणीय।

इतना होनेपर भी इस स्कूलकी सबसे बड़ी विशेषता है भाषाकी शक्ति और सजीवता। विषय-प्रतिपादन करनेकी अद्भुत शक्ति, भाव-प्रवाह और मौलिक व्यंजना-शैलीकी मनोरंजकता-इसकी अपनी देन हैं। कथनकी रमणीयता और रोचक दृश्योंकी सृष्टि करनेमें हिन्दी कहानीका कोई भी दूसरा स्कूल समता नहीं कर सकता।

जैनेन्द्र-स्कूल—हिन्दी-कहानी-साहित्यमें श्री जैनेन्द्र कुमारका १९२८ ई० में आगमन हिन्दी-कहानीकी एक नयी दिशाका सूचक है। १९२७-२८ से नये कहानीकार नवीन भावनाओंको लेकर हमारे बीच आने लगे। श्री 'उग्रजी' इस पथको पहलेसे ही प्रशस्त कर रहे थे। कहानी-साहित्यके विकास-में श्री जैनेन्द्र चौथे युगप्रवर्त्तक कहानीकार हैं जिन्होंने हिन्दी कहानी-जगत्के सामने अपना नया दृष्टिकोण रखा। यदि उग्रने समाजके बाह्य-रूपका यथार्थ चित्रण किया तो जैनेन्द्रने व्यक्तिके अन्तर्प्रदेशका सूक्ष्म चित्रण कर उसीके माध्यमसे समाजका चित्र खींचा। मानव-मनकी गाँठोंका मनोवैज्ञानिक विश्ले-षण करना जैनेन्द्र-स्कूलके कहानीकारोंका प्रधान उद्देश्य है। इनकी दूसरी विशेषता है विद्रोहकी भावना। इस स्कूलके सभी कहानीकारोंने विद्रोहात्मक भावनाओंको प्रश्रय दिया। लेकिन विद्रोहके स्वरूपमें भेद है। जैनेन्द्रने विद्रोह-की भावनामें कुछ हदतक सहानुभूति और समवेदनाको अपनाया है। अज्ञेय और भगवतीचरण वर्माने विद्रोहकी चिनगारी सुलगानेके लिए प्रतिहिंसाको स्वीकार किया है। इनपर रूसी कहानीकारोंका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। जैनेन्द्रजीकी विद्रोत्मक भावधारामें आध्यात्मिकताका रङ्ग है। जैनेन्द्रने अपने आदर्शकी बलिवेदीपर अपने अहं-भावका बलिदान किया है, अज्ञेय तथा भगवतीचरण वर्माने अहंको परिपुष्ट किया है। अज्ञेयमें यदि 'उद्धत आत्म-महत्व-प्रदान प्रवृत्ति' है तो जैनेन्द्रमें 'आत्म-प्रपीड़क प्रवृत्तियोंका सामाजिक विश्लेषण।'

इस स्कूलके सभी कहानीकारोंने हिन्दीकी घटना-प्रधान कहानीको चरित्र-प्रधान बनानेका अथक प्रयत्न किया। पात्रके अन्तर्द्वन्द्वोंमें पैठनेकी शैली हिन्दीमें अपने ढंगकी निराली है। श्री जैनेन्द्रने ही सबसे पहले इस नयी शैलीको जन्म दिया। 'मनोवैज्ञानिक गुत्थी' को आधार मानकर कहानी लिखनेका आरम्भ यद्यपि प्रेमचन्दने किया था तथापि उन्होंने मनोविज्ञानको बहुत स्थूल अर्थमें लिया था।

अतः इस स्थूलके कहानीकार मनोविश्लेषक हैं। इसके पहले भी मनो-वैज्ञानिक गुत्थियोंका विश्लेषण होता था लेकिन वह बहुत उथला और छिछला

था । इस स्कूलके कहानीकार पात्रोंका मनोवैज्ञानिक निरूपण कुशल सम्वादों द्वारा करते हैं । इसके पहले इसके लिए संयमित प्रसङ्गोंका चुनाव अन्य पात्रोंका प्रधान पात्रोंसे सम्बन्ध तथा स्थल-स्थलपर दी हुई अकारण उपमाओंका संग्रह किया जाता था । श्री इलाचन्द जोशीका कहना है कि 'हिन्दीका मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य आश्चर्यजनक रूपसे उन्नति कर रहा है और भारतकी अन्य सभी भाषाओंके कथा-साहित्यको इस क्षेत्रमें बहुत पीछे छोड़कर निकल गया है । आज वह न पाश्चात्य जगतके किसी मनोवैज्ञानिक स्कूलका आश्रय-प्रार्थी रह गया है, न रवीन्द्र अथवा शरदकी औपन्यासिक रचनाओंके आधारका ।' अज्ञेय पाश्चात्य मनोविज्ञानकार फ्रायड (Freud) से अधिक प्रभावित हैं । इसके विपरीत इलाचन्द जोशी तथा जैनेन्द्र कुमार युंग (Yung) की मनोवैज्ञानिकताके बहुत निकट हैं क्योंकि युंग भारतीय अध्यात्मवादियोंके बहुत निकट है । वह एक रहस्यात्मक चिर उपस्थित सर्वान्तरात्मामें विश्वास करता है । इस स्कूलके मनोवैज्ञानिक कहानीकार भाषा, शैली, टेकनीक सब चीजोंमें क्रान्ति उपस्थित करते हैं ।

जैनेन्द्र-स्कूलकी कहानियोंमें एक बात समान रूपसे पायी जाती है । वह यह कि इन कहानियोंमें भारतीय नारीके प्रपीड़ित अन्तःकरणका बहुत ही सहानुभूति-पूर्ण चित्र मिलता है । वे किसी-न-किसी अभावसे पीड़ित हैं । अज्ञेयकी कहानी 'रोज', जैनेन्द्रकी कहानी 'पत्नी' तथा भगवतीचरण वर्माकी कहानी 'पराजय अथवा मृत्यु' में क्रमशः मालती, सुनन्दा और भुवनेश्वरी इसी प्रकारकी नारियाँ हैं । इन सबकी कहानियोंके केन्द्रमें रूढ़ि और परम्परा-पीड़िता भारतीय नारी अवस्थित हैं । इनकी करुण कहानी कहना, हृदयके दारुण हाहाकारका वर्णन करना इनमें समान रूपसे पाया जाता है । इन नारियोंके स्वरूपमें भेद अवश्य है । भगवतीचरण वर्माके शब्दोंमें 'स्त्री पुरुषकी गुलामी करनेके लिए ही बनायी गयी है ।'[१] वर्माजी नारीके प्रति उदासीन हैं । जैनेन्द्रको नारीकी दयनीय अवस्थाके प्रति हार्दिक सहानुभूति है । अज्ञेय भारतीय नारीको क्रान्तिकारी-रूपमें देखना चाहते हैं ।

---

१ दो बाँके, पृ. ९७.

इस स्कूलके कहानीकारोंमें जो मार्केकी बात देखी जाती है वह है चिन्तनशीलता और भावुकता। जैनेन्द्र भावुक हैं, अज्ञेय चिन्तनशील और भगवतीचरण वर्मा व्यंग्यकार। चिन्तनशीलताके कारण इनकी कहानियोंपर अत्यधिक दार्शनिक बोझ लदा हुआ है जिसकी वजहसे ये कहानियाँ सर्व-साधारणमें लोकप्रिय न हो सकीं। हाँ, भगवतीचरण वर्मा साधारण पाठकोंके बीच अवश्य लोकप्रिय हुए हैं क्योंकि अपनी कहानियोंमें जिस भाषाका प्रयोग उन्होंने किया है वह प्रेमचन्दकी प्रचलित भाषा है, जिसमें उर्दूकी जिन्दादिली, चंचलता और चुलबुलाहट सतहपर आ गयी है।

इस स्कूलके कहानीकार कहानीकी निश्चित टेकनीककी परवाह न कर कहानीमें आये हुए भाव तथा विचारोंकी परवाह करते हैं। वे क्या कहना चाहते हैं, उनका उद्देश्य क्या है—इन बातोंको सुस्पष्ट करनेमें ही वे अधिक व्यस्त रहते हैं। इसलिए इनकी कोई निश्चित कहानी-कला नहीं बतायी जा सकती। इस क्षेत्रमें वे पूर्ण स्वतन्त्र हैं। श्री जैनेन्द्रका कहना है कि जो लेखक कहानी-कला जानता है वह अच्छी कहानी लिख ही नहीं सकता। इन्होंने स्वयं कहा है कि 'मैं तो कहानीमें फॉर्म (F rm) को स्थान नहीं देता—उससे मैं परेशान हूँ। कहानीमें फॉर्म मुख्य चीज नहीं है—क्या कहना है, वह मुख्य है।' प्रेमचन्द-स्कूलकी एक सुव्यस्थित तथा निश्चित शैली थी लेकिन इस स्कूलमें विचारोंकी ही प्रधानता होती है। इसलिए इन कहानियोंमें मनोरञ्जन और मनोविनोदका नितान्त अभाव है। इस स्कूलके लेखक सस्ते मनोरंजन और शुद्ध परिहासके लिए कहानियाँ लिखना पसन्द नही करते। मानव-जीवनके उलझे प्रश्नोंका उचित समाधान निकालना, उसकी ओर संकेत करना, नये विचारोंको उत्प्रेरित करना—इनके मूल उद्देश्य हैं। वर्तमानकी भूमिपर खड़े होकर भविष्यका संकेत करना इनका लक्ष्य है।

यशपाल-स्कूल—यशपाल हिन्दी-कहानी-साहित्यके युग-प्रवर्त्तक प्रगतिवादी कहानीकार हैं। इस स्कूलके कहानीकार दो वर्गोंमें-बाँटे जा सकते हैं—१. साम्यवादी कहानीकार-यशपाल, अञ्चल, कृष्णदास, २. प्रकृतिवादी कहानीकार-पहाड़ी, नरोत्तमप्रसाद नागर। पहले वर्गके

कहानीकार वे हैं जिन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासोंमें देशकी राजनीतिक घटनाओंको लक्ष्य किया है। साहित्य और राजनीतिका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करनेमें इन लेखकोंने पर्याप्त प्रयत्न किये हैं और इनमें उन्हें सफलता भी मिली है। हिन्दी-साहित्यके लेखक प्रारम्भसे ही राजनीतिक साहित्यकी रचना करनेमें उदासीनता दिखलाते रहे हैं। 'कोउ नृप होय हमें का हानी', 'अजगर करै न चाकरी···सबके दाता राम' जैसी सूक्तियोंको हमारे लेखकोंने सदैव स्मरण किया है जिसकी वजहसे हमारे साहित्यमें राजनीतिक साहित्यका सदा अभाव बना रहा। राजनीतिसे खिंचे खिंचे रहना हमारे लेखकोंकी एक खास विशेषता है। १९३५ से हमारे साहित्यकारोंने इस कमीको पूरा करनेके लिए अपने हाथ बढ़ाये। इसके पहले भी भारतेन्दुजी तथा प्रेमचन्दने अपने नाटकों और उपन्यासोंमें तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनोंकी भावधाराओंका विषद चित्रण किया था। देशके स्वाधीनता-संग्रामका जैसा उत्साहपूर्ण और सक्रिय रूप हमें 'कर्म-भूमि' और 'समर-यात्रा' में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता।

आजकी स्थिति कुछ दूसरी ही है। "विश्व-जीवनकी विपन्नता और राष्ट्रीय-जीवनकी दरिद्रताके फल-स्वरूप आज भारत संसारके शोषित वर्गके साथ अपनी रक्षाका उपाय, समाजवादकी सामूहिक और समतामयी भावधारामें टटोल रहा है। आज भारतको अमरकान्त और सलीमको ही एकताके अटूट सूत्रमें बाँधनेकी आवश्यकता नहीं है, वरन् वह संसारके उन सभी असंख्य शोषित और उपेक्षित मानब-कङ्कालोंको एकमें समेटना चाहता है जिसका अगुआ सोवियत रूस है। आज सोवियत रूसकी जन-संगठन-शक्तिने संसारको आश्चर्य-चकित कर दिया है। सभी उसकी आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाकी ओर अकर्षित हैं और संसारके एक छोरसे दूसरे छोरतक समाजवादकी लहर लहरा रही है। साहित्यमें इस विचारधाराका आग्रह बढ़ता जा रहा है। यशपालका कथा-साहित्य इसी ओर प्रयत्नशील है।"[१] प्रो० प्रभाकर माचबेके शब्दोंमें 'यशपालने जितना अच्छा लिखा है, उतना ही

---

१. आधुनिक कथा साहित्य, पृ. १८२.

उसपर बहुत कम समीक्षा रूपमें कहा गया है।...यशपालकी शैली बहुत आकर्षक है। प्रेमचन्दके बाद उतने ही यथार्थवादी, आकर्षक, सजीव वर्णन इनमें मिलते हैं। यशपालके सभी नायक (तर्कका तूफान कहनी-संग्रहमें) दुर्बल होते हैं। नारी सबल बन जाती है।...यशपालकी कथामें सबसे खराब अंश वह है—जहाँ वह एक सतर्क प्रचारककी भाँति पात्रोंके मुँहसे वही बुल-बाते हैं जो कि उन्हें ईप्सित हैं।'[1] श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीके शब्दोंमें "प्रेम-चन्दके बाद यशपाल सही मानेमें जन-साधारणके लिए भी हिन्दी-कथा-साहित्य-का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनाएँ एक ओर साहित्यिकोंके लिए हैं, दूसरी ओर जनताके लिए भी आकर्षक हैं। भाषा और शैलीकी दृष्टिसे ऐसा जान पड़ता है कि मानो प्रेमचन्दजी ही नये युगमें नया शरीर धारणकर पुनः सजीव हो गये हैं......। यशपालकी कहानियाँ प्रेमचन्दकी कहानियोंसे बहुत छोटी हैं। छोटी कहानीकी दृष्टिसे इतनी छोटी सारगर्भित कहानियाँ हिन्दीमें दुर्लभ हैं। उनकी कहानियोंका गठन बहुत साफ सुडौल और संक्षिप्त है, एक पौधेकी तरह। 'पिंजड़ेकी उड़ान', 'ज्ञानदान' और 'वो दुनिया' में उनकी कथावस्तुका क्रमिक विकास है—'उड़ान' की कहानियाँ प्रायः भावमूलक हैं, 'ज्ञान दान' की कहानियाँ यथार्थ मूलक, 'वो दुनिया' की कहानियाँ समस्त मूलक......। कथानक, चित्रण, चरित्राङ्कन और शैलीकी दृष्टिसे यशपाल, एक शब्दमें, प्रेमचन्दकी तिरोहित प्रतिभाकी तरुण शक्ति हैं।'[2] श्री अञ्चल और श्रीकृष्णदासने अपनी रचनाओंमें मजदूर-जीवनका बर्णन किया हैं। यशपाल-स्कूलके इस वर्गकी कहानियोंमें मार्क्सवादके वैज्ञानिक रूपको ग्रहण किया गया है। पूँजीवादी परिस्थितियोंके कारण हमारे देशमें आज जो वर्ग-युद्ध हो रहा है, उसीका वर्णन इनमें मिलता है। ये हिन्दीके आवेगपूर्ण क्रान्तिकारी लेखक हैं।

दूसरे वर्गके वे कहानीकार हैं जिन्होंने अंग्रेजी उपन्यासकार डी. एच. लारेन्सकी तरह फ्रायडके मनोविज्ञानका बिलकुल खुला रूप प्रस्तुत किया है, जिन्होंने यह बताया है कि नारी-पुरुषके यौन-सम्बन्धमें उनकी इच्छाएँ

१. साहित्य सन्देश—नवम्बर १९४५ २—सामयिकी, पृ, २८३-८४

निर्बन्ध और उन्मुक हैं। उन्हें किसी वाह्य नैतिक सिद्धान्त या विधानका शासन और नियन्त्रण मान्य नहीं है। डी. एच, लारेन्सने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सन्स और लवर्स' (Sons & Lovers) में माताके प्रति पुत्रका यौन आकर्षण दिखलाया है। श्री नरोत्तमप्रसाद नागर और श्री 'पहाड़ी' ने भी अपनी रचनाओंमें पुरुषकी काम-प्रेम-वासना और आकर्षण आदि यौन प्रवृत्तियोंकी विभिन्न परिस्थितियोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। हिन्दी कहानी-साहित्यमें इस तरहकी प्रकृतिवादी कहानियोंका प्रथम विस्फोट श्री 'उग्र' द्वारा १५-२० वर्ष पहले हुआ था जिसके बारेमें हम 'उग्र-स्कूल' शीर्षक लेखमें लिख आये हैं। उग्रने चाकलेटपर लिखा, ऋषभचरण जैन और चतुरसेन शास्त्रीने वेश्या-जीवनपर लिखा। जैनेन्द्रने मृणाल बुआके वेश्यात्वके प्रति हमारी सहानुभूति खींची। पाप और पुण्यका पुराना सन्तुलन अब बदलने लगा है। उग्र-स्कूलके जिन लेखकोंने प्रकृतिवादी यौन-साहित्यकी रचना की थी वह समय सुधारका था। उनका साहित्य सुधार-भावनाके जोशमें लिखा गया था। लेकिन पहाड़ी तथा नरोत्तमप्रसाद नागर जैसे लेखकोंने सेक्सके स्वरूपको ही बदल देना चाहा है। पहाड़ीने बहुपत्नीत्व और बहुपतीत्वको समाजके लिए अभिशाप नहीं माना है। इन्होंने पाप और पुण्यकी पुरानी नैतिक तुलापर आजके नारी-पुरुषके यौन सम्बन्धको तौलनेकी चेष्टा नहीं की है। इसका आधार भी साम्यवादी सिद्धान्त है जो भारतीयोंके लिए सर्वथा नवीन और अद्भुत है। इलाचन्द्र जोशीने भी इस नयी दिशाकी ओर अपने सहमे कदम बढ़ाये हैं। इस वर्गकी रचनाओंका सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके लेखकोंने मनोविज्ञानको साधन न मानकर साध्य मान लिया है। 'इस दलके लेखकोंने जहाँ समाजके वर्जित प्रदेशका यथार्थवादी रोमांस उभार कर एक ओर समाजका हित किया है, वहीं अश्लील होनेकी बदनामी सहकर भी एक अनहित किया है।'

यशपालका साहित्य उपर्युक्त दो वर्गोंकी विशेषताओंका संगम-स्थल है। इसीलिए इस स्कूलका नाम-करण इन्हींके नामपर किया है।

हिन्दी-कहानी-साहित्य आज किधर ?—पं० रामचन्द्र शुक्लने

सम्बत् १९९२ में इन्दौरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी साहित्य-परिषद्में भाषण देते हुए कहा था—'पर मेरा एक निवेदन है। इधर बहुतसे उपन्यासों (कहानियोंमें भी) देशकी सामान्य जीवन-पद्धतिको छोड़ बिलकुल यूरोपीय सभ्यताके साँचेमें ढले हुए छोटे-से मनुष्य-समुदायके जीवनका चित्रण बहुत अधिक पाया जाता है। मिस्टर, मिसेज, मिस, ड्राइंगरूम, टेनिस, मोटरपर हवाखोरी, सिनेमा इत्यादि ही उपन्यासोंमें अधिक दिखायी पड़ने लगे हैं। मैं मानता हूँ कि आधुनिक जीवनका यह भी एक पक्ष है, पर सामान्य नहीं। देशकी असली, सामाजिक और गार्हस्थ्य-जीवनके जैसे चित्र पुराने उपन्यासों-में रहते थे वैसे अब कम होते जा रहे हैं। यह मैं अच्छा नहीं समझता। उपन्यासके पुराने ढाँचेके सम्बन्धमें मैं एक बात कहना चाहता हूँ। वह यह कि वह कुछ बुरा न था। उसमें हमारे भारतीय कथात्मक गद्य-प्रबन्धोंके स्वरूपका भी आभास रहता था।' शुक्लजी सदैव पुरातन पुनरुज्जीवक (Revivalist) रहे हैं। उन्होंने हिन्दीके जिस कथा-साहित्यकी ओर सङ्केत किया है वह है प्रसाद-प्रेमचन्द्रका कहानी-साहित्य। ऊपर उपन्यासके सम्बन्धमें शुक्ल-जीने जितनी बातें कहीं हैं वे हिन्दी-कहानी-साहित्यपर भी लागू होती हैं। यह ठीक है कि हमारे कथा-साहित्यको आन्तरिक आवश्यकताओंसे पनपकर ऊपर उठना चाहिये, न कि केवल बाह्य, विदेशसे आये हुए भारतीय जीवन-से विच्छिन्न अनमिल वस्तुके रूपको हम अपना लें। हमारे अति आधुनिक कहानीकार भारतीय वातावरणसे प्रेरणा न ग्रहण कर यूरोपीय सभ्यता और संस्कृतिके वायु-मण्डलसे प्रेरणा ग्रहण करने लगे हैं। उनके लिए रूसका समाजवाद एक आदर्श हो गया है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह कहना पड़ेगा कि (प्रो० प्रभाकर माचवेके शब्दोंमें) 'प्रेमचन्दके बाद भारतीय जनता-के मानसमें प्रवेश कर उसके स्तरपर-स्तर खोलनेवाला महान प्रातिनिधिक औपन्यासिक (कहानीकार) हिन्दीमें अभी नहीं है।'

भारतीय जीवनसे सम्बद्ध आज ऐसे कितने प्रश्न हैं जिनपर हमारे कहानीकारोंका ध्यान जाना चाहिये। किसी राजनीतिक 'वाद' के सिद्धान्तोंका साहित्यिक निरूपण करना हमारे लिए अहितकर होगा। हमारे देशमें जमी-

दारों, किसानों, पूँजीपतियों और मजदूरोंकी समस्याएँ तो हैं ही, साथ ही साम्प्रदायिक समस्या, अछूतोंके मानसिक विकासका प्रश्न, स्त्रियोंके समानाधिकारका प्रश्न, शिक्षा और सैनिकका प्रश्न, राजनीतिक कार्य-कर्ताओंकी रोजीका प्रश्न, मुनाफाखोरी जैसी अनेक समस्याएँ हैं जो हमारे दैनिक जीवनको परेशान करती हैं । इस ओर भी हमारे कहानीकारोंका ध्यान जाना चाहिये । साथ ही, उन्हें पाठकोंके मनकी भूखको भी समझना होगा ।

———

हिन्दीमें कहानी-संग्रह

साहित्यके किसी अङ्गका समुचित विकास हो जानेपर ही संग्रह-ग्रन्थकी आवश्यकता पड़ती है । प्रत्येक उन्नत साहित्यमें ऐसे ग्रन्थोंकी आवश्यकताका अनुभव होता रहा है । इस तरहके ग्रन्थोंमें साहित्यके श्रेष्ठ और प्रतिनिधि लेखकोंकी चुनी हुई श्रेष्ठ रचनाओंको स्थान दिया जाता है ताकि कोई भी साधारण पाठक उसकी एक ही रचना पढ़कर उसके साहित्यके स्थूल मर्मको आसानीसे समझ सके । ऐसे ग्रन्थ विद्यार्थियोंके लिए बड़े कामके सिद्ध होते हैं ।

हिन्दी-कहानियोंका ज्यों-ज्यों विकास होता गया त्यों-त्यों श्रेष्ठ कहानियोंके संग्रह-ग्रन्थोंकी आवश्यकता पड़ती गयी । प्रेमचन्द्रके समयतक हिन्दी कहानीका पर्याप्त विकास हो गया था । तबसे हिन्दीमें कहानी-संग्रह-ग्रन्थ निकलने लगे हैं । विभिन्न सम्पादकोंने भिन्न दृष्टियोंसे कहानियोंका संग्रह किया है । कुछ लोगोंने भिन्न विषयोंके आधारपर कहानियोंका संग्रह किया है । जैसे--

१. देश-भक्तिकी कहानियाँ--श्री व्यथित हृदय
२. सुहाग-रातकी कहानियाँ-- ,,
३. ऐतिहासिक कहानियाँ--सम्पादक इलाचन्द्र जोशी
४. कॉलिजकी कहानियाँ-- ,, अज्ञान

५. नागरिक कहानियाँ—डॉ० सत्येन्द्र
६. वीरोंकी कहानियाँ—शाषिग्राम शर्मा
७. ग्राम-जीवनकी कहानियाँ—प्रेमचन्द
८. वैदिक कहानियाँ—बलदेव उपाध्याय

इन कहानी-संग्रहोंमें कुछ तो कहानीकारोंकी अपनी कहानियोंका संग्रह है और कुछ ऐसे हैं जिनमें विभिन्न लेखकोंकी प्रतिनिधि कहानियोंका संग्रह किया गया है। हिन्दीमें इस प्रकारके कहानी-संग्रहका कोई ठोस महत्त्व नहीं है। इस तरहके कहानी-संग्रह-ग्रन्थोंसे एक बात स्पष्ट है कि हमारे साहित्य-में विविध विषयक कहानियोंका दिनानुदिन विकास होता जा रहा है। हमारे कहानीकार विभिन्न वर्गके पाठकोंके लिए कहानियाँ लिखनेमें अपनी अभिरुचि दिखलाने लगे हैं। वे वर्गगत पाठकोंके मनकी भूखको अच्छी तरह समझने लगे हैं। इस दृष्टिसे इन संग्रह-ग्रन्थोंकी एक उपयोगिता समझी जा सकती है।

हिन्दीमें विविध विषयक कहानी-संग्रहकी आवश्यकता तो है ही, इससे भी जरूरी बात यह है कि हमारे साहित्यमें उन कहानियोंके संग्रहकी बड़ी आवश्यकता है जिनसे यह जाना जा सके कि हमारे कहानी-साहित्यने आजतक कितना बिकास किया है। हिन्दी-साहित्यके विभिन्न युगोंकी प्रवृ-त्तियोंके आधारपर कहानीका संग्रह होना बहुत आवश्यक है। अंग्रेजीमें युगकी ऐतिहासिक प्रवृत्तियोंके आधारपर अनेक कहानी-संग्रह पाये जाते हैं। हिन्दीका आधुनिक कथा-साहित्य पिछले ५०-६० वर्षोंका साहित्य है। इस थोड़े समयमें हमारे कहानी-साहित्यने जो आशातीत उन्नति की है वह हमारे लिए गर्वका विषय है। आज उसके मूल्याङ्कनकी आवश्यकता है। हमारा साहित्य इतिहासकी जिन घटनाओंसे होकर गुजरता रहा है और हमारे कहानी-कारोंके मन-मस्तिकपर उसके विभिन्न आन्दोलनोंका जो प्रभाव पड़ा है, उसका ऐतिहासिक अध्ययन होना चाहिये। द्विवेदी-युगकी कहानियोंकी प्रवृत्तियाँ छाया-वाद-युगकी प्रवृत्तियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। इसी तरह आजकी कहानियाँ पिछले युगकी कहानियोंसे बिलकुल अलग हैं। इतना होनेपर भी हमारे कहानी-साहित्यके विकास-चिह्न पूर्ण स्पष्ट हैं। विकासकी जिन स्पष्ट रेखाओंपर

हमारा साहित्य अग्रसर होता गया है उसीके आधारपर कहानियोंका संग्रह होना चाहिये। लेकिन हिन्दीमें इस दृष्टिका अभाव ही है।

हमारे जानते हिन्दी-साहित्यमें लगभग एक दर्जन कहानी-संग्रह-ग्रन्थ हैं। उनमें कुछ इस प्रकार हैं--

१. गल्प-समुच्चय— सम्पादक श्री प्रेमचन्द
२. मधुकरी-२ भाग— ,, श्री विनोदशङ्कर व्यास
३. हिन्दीकी आदर्श कहानियाँ— ,, श्री प्रेमचन्द
४. हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ-- ,, श्री कालिदास कपूर
५. हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ-- ,, श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'
६. इक्कीस कहानियाँ-- ,, श्री राय कृष्णदास
७. नयी कहानियाँ-- ,, ,,
८. नयी कहानियाँ-- ,, श्री अशान्त त्रिपाठी,
९. हमारे युगकी कहानियाँ-- ,, श्री सूरजमल जैन
१०. नयी कहानियाँ

यदि इन कहानी-संग्रह-ग्रंथोंका अलग-अलग अध्ययन किया जाय तो हम इस निकर्षपर पहुँचेंगे कि लगभग सभी संग्रहकर्त्ताओंने अपनी-अपनी दृष्टिसे कहानियोंको सर्वोत्तम मानकर अपने-अपने संग्रह-ग्रन्थोंमें स्थान दिया है। एक उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ' के सम्पादक श्रीकालिदास कपूरने प्रेमचन्दकी 'क्षमा' शीर्षक कहानीको अपने संग्रहके लिए चुना है, इसके विपरीत, 'इक्कीस कहानियाँ' के सम्पादक श्रीयुत राय कृष्णदासने प्रेमचन्दकी 'नशा' शीर्षक कहानी चुनी है जो 'क्षमा' की अपेक्षा उत्कृष्ट कहानी नहीं कही जा सकती। इसी तरह अन्य संग्रहोंमें भी इसी दृष्टिकोणको अपनाया गया है। 'हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' के सम्पादक श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' ने हिन्दीकी जिन कहानियोंको सर्वश्रेष्ठ कहा है उनका 'इक्कीस कहानियाँ', या 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ' या 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियों' में कोई स्वतन्त्र अस्तित्व तथा मूल्य नहीं है। 'गल्प-समुच्चय' तथा 'हिन्दीकी आदर्श कहानियाँ' के सम्पादक श्रीयुत प्रेमचन्दने जिन कहा-

नियोंको अपने संग्रह-ग्रन्थोंमें स्थान दिया है वे उनके समयमें ही लिखी गयी थीं। अतएव उनमें आये कहानीकार प्रेमचन्दके समसामयिक हैं। अतः उन्हें भी हम 'आदर्शकहानी-संग्रह' नहीं कह सकते। सच तो यह है कि 'इक्कीस कहानियों' का प्रकाशन होनेके पहले जितने कहानी-संग्रह निकले हैं। उनमें सम्पादककी व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा ही पायी जाती है उन्होंने अपनी रुचिके अनुसार कहानियोंका चुनाव किया है।

'इक्कीस कहानियाँ'का स्वरूप—लगभग सभी संग्रह-ग्रन्थोंमें 'इक्कीस कहानियाँ' का एक विशिष्ट स्थान माना जा सकता है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस कहानी-संग्रहमें ऐतिहासिक दृष्टिका अभाव नहीं है। हिन्दी-कहानी-साहित्यका बिकास किस क्रममें हुआ है, इस बातकी ओर सम्पादक-की दृष्टि गयी है। अतः हम कह सकते हैं कि 'इक्कीस कहानियाँ' हिन्दी-कहानी-साहित्यके विकासकी एक संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत करती है। इसके पूर्व इस दृष्टिकोणके आधारका अभाव पाया जाता था। इस दृष्टिसे 'इक्कीस कहानियाँ' हिन्दी कहानी-संग्रह ग्रन्थोंमें वह संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें हम एक वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि पाते हैं, जिसमें आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यके विकासकी एक संक्षिप्त कहानी कही गयी है। इस संग्रहकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पुस्तकके आरम्भमें एक विस्तृत 'आमुख' दे दिया गया है जिसमें कहानी-कला तथा हिन्दी-कहानीके विभिन्न उत्थान-कालोंका विकासात्मक परिचय दे दिया गया है। इसमें यह बतालाया गया है कि हिन्दीमें किस कहानीकारके बाद कौन कहानीकार आया। इस तरह प्रत्येक कहानीकारके स्थान, स्वरूप और महत्वको समझनेमें सुबिधा हो गयी है। इसके अतिरिक्त, इस संग्रहकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक कहानी-की आलोचना भी दे दी गयी है जिससे कहानीके सम्बन्धमें हमारी जानकारी हो जाती है। यह एक नयी बात है जो अन्य कहानी-संग्रहोंमें नहीं पायी जाती। इसके साथ ही प्रत्येक कहानीकारका एक संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। परिचय देनेकी परिपाटीका निर्वाह दूसरे कहानी संग्रहोंमें भी हुआ है। 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ'में भी कहानी-साहित्यका आलोचनात्मक परिचय

दिया गया है लेकिन उसमें उस वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोणका अभाव है जिसका निर्वाह 'इक्कीस कहानियाँ' में हुआ है।

हिन्दीका प्रथम मौलिक कहानीकार कौन है; ऐतिहासिक दृष्टिसे हम किसको प्रथम स्थान देंगे, इसके सम्बन्धमें हमारे संग्रह-कर्त्ताओंमें गहरा मतभेद है। 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ' में प्रथम स्थान श्री प्रेमचन्दको दिया गया है, 'इक्कीस कहानियाँ' में श्री जयशङ्करप्रसादको। इसी तरह अन्य संग्रह-ग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'इक्कीस कहानियाँ' एक अच्छा कहानी-संग्रह ग्रन्थ है लेकिन फिर भी हम इसे 'आदर्श कहानी-संग्रह' नहीं कह सकते। इसके भी कई दोष हैं। पहली बात यह है कि इसके सम्पादक महोदयसे हम जिस ऐतिहासिक दृष्टिकी अपेक्षा करते हैं उसका इसमें भी अभाव है। 'उग्र' और 'निरालाके' बाद श्री इलाचन्द्र जोशीको किसी भी हालतमें स्थान नहीं दिया जा सकता क्योंकि श्री जोशीजीका स्थान तृतीय उत्थानके कहानीकारोंमें है, द्वितीय उत्थानमें नहीं। इसी तरह श्री भगवतीचरण वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा तथा श्री राधाकृष्णके बाद, सबके अन्तमें भी श्री अज्ञेयको स्थान देना सर्वथा अनुचित है। हाँ, प्रसादजीको सर्वप्रथम स्थान देकर सम्पादक महोदयने उनके साथ न्याय अवश्य किया है लेकिन श्री अज्ञेयको उपयुक्त कहानीकारोंके बाद रखना उनके प्रति सम्पादकजीका न्यायोचित दृष्टिकोण नहीं है। इससे लेखककी ऐतिहासिक महत्ताको ठेस लगती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि इस संग्रहमें भी कहानीकारोंके ऐतिहासिक महत्त्वके क्रमकी उचित व्यवस्थान नहीं हो सकी है। 'हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ'में भी श्रीजैनेन्द्रके बाद सबके अन्तमें श्री सुदर्शनको स्थान दिया गया है। इक्कीस कहानियोंमें श्री भगवतीचरण वर्मा श्री अज्ञेयकी असाधारण शक्तिको मानते हुए भी—'जैनेद्र, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा इस उत्थान (तृतीय उत्थान) के आदि पुरुष हैं'[1]—उनके स्थान-क्रमके साथ उचित न्याय नहीं किया गया है।

'इक्कीस कहानियाँ' के प्रकाशकने पुस्तकके प्रथम पृष्टपर अपना वक्तृत्व

---

१ इक्कीस कहानियाँ, (आमुख) पृ० ४१

देते हुए कहा है कि "इसकी कहानियोंके चुनावमें संग्रहके योग्य और सहृदय सम्पादकोंने विशेष श्रम किया है–कई सौ कहानियोंमेंसे छाँटकर ये प्रतिनिधि कहानियाँ इस संग्रहमें गुम्फितकी गयी हैं।" प्रकाशकका यह वक्तव्य लचर और व्यर्थ जँचता है। इसमें 'सम्पादकोंके विशेष श्रम'की चर्चाकी गयी है। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि एक छोटा सा काम करनेके लिए 'श्रम' की आवश्यकता पड़ती ही है लेकिन इक्कीस कहानियोंके चुनावमें सम्पादकोंको 'विशेष श्रम' करना पड़ा होगा, मेरे दिमागमें यह बात नहीं अँटती। 'इक्कीस कहानियाँ'के संग्रहमें जिस लापरवाहीसे काम लिया गया है वह सम्पादकोंके नाम और गुणसे होड़ लेनेमें सर्वथा असमर्थ है। प्रकाशक महोदयने यह दावा किया है कि 'इक्कीस कहानियाँ'में संग्रहीत कहानियाँ 'कई सौ कहानियोंमेंसे छाँटकर' उन्हीं कहानियोंको स्थान दिया गया है जो हिन्दीकी 'प्रतिनिधि कहानियाँ' हैं। मैं नहीं समझता कि हिन्दीका कोई भी जागरुक पाठक प्रेमचन्दजीकी कहानी 'नशा' कौशिकजीकी कहानी 'रक्षा बन्धन' भगवतीचरणकी 'दो बाँके' आदि जैसी कहानियोंको इन कहानीकारोंकी प्रतिनिधि कहानियाँ समझता हो। ये कहानियाँ न तो हिन्दीकी 'प्रतिनिधि कहानियाँ' हैं और न उपर्युक्त लेखकोंकी ही। प्रकाशकका उपर्युक्त वक्तव्य यदि अधिकारी लेखक द्वारा दिया गया होता तो हम और कुछ कह सकते थे लेकिन मैं तो इस वक्तव्यको विज्ञापन मात्र समझता हूँ। अतः इक्कीस कहानियाँ भी अपनेमें पूर्ण संग्रह-ग्रन्थ नहीं है। यह कहना कठिन है कि इसमें कौन कहानी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि सभी साधारण कहानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त, 'इक्कीस कहानियाँ' में आजके कहानीकारोंको कोई स्थान नहीं दिया गया है। श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का नाम अवश्य आया है लेकिन अन्य प्रगतिवादी कहानीकारों—जैसे, बेनीपुरी, पहाड़ी-यशपालआदिकी कहानियाँ संग्रह नहीं की गयी हैं। इस कमीकी पूर्ति श्री रायकृष्णदासकी दूसरी कहानी-संग्रह-पुस्तक 'नयी कहानियाँ', श्री अशान्त त्रिपाठीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाला संग्रह 'नयी कहानियाँ' और श्री सूरजमल गर्गके सम्पादकत्वमें निकलनेवाली संग्रह-पुस्तक 'हमारे युगकी कहानियाँ'में की गयी है।

हिन्दी-कहानी-संग्रह करते समय इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि उनमें विभिन्न युगोंका दिग्दर्शन कराया जाय। साथ ही यह भी बतलाना चाहिये कि हमारे साहित्यपर 'कालका आघात' किस हदतक है। श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीने निराश होकर कहा है कि "हिन्दी कहानियोंकी अधिकता होनेपर भी यह कहना सरल नहीं है कि हिन्दीकी कौन बीस कहानियाँ कालका आघात सह सकेंगी?"[१] बख्शीजीका यह कथन कहानी-संग्रह-कर्त्ताओंको चुनौती देता है। इसका समुचित उत्तर उन्हें ही देना है। इसीलिए आज इस बातकी आवश्यकता है कि वे कहानीका संग्रह इतिहासके आलोकमें करें। लेखककी उन्हीं कहानियोंको चुनना चाहिये जिसने हमारे पाठकों और कलाकारोंको बहुत अधिक प्रभावित किया है, जिसने भविष्य-जीवनकी ओर संकेत किया है, जिसने सामयिक जीवनको विकसित करनेमें अपना सहयोग दिया है और जिसने कहानी-कलाकी सारी माँगोंकी पूर्ति की है। हिन्दीमें इस तरहकी कहानियोंका अभाव नहीं है। अभाव है वैज्ञानिक दृष्टिकी। अतः अब हमें पुराने दृष्टिकोणोंको बदलना होगा। नये चश्मेसे कहानियोंकी छान-बीन-कर उसकी परख करनी होगी। हिन्दीमें दो तरहके कहानी-संग्रह-ग्रंथोंकी बड़ी आवश्यकता है। एक तो वह जो हमारे कहानी-साहित्यके विकास-चिह्नोंको स्पष्ट कर दे और दूसरा ऐसे संग्रहोंकी आवश्यकता है जो हिन्दी-कहानीके प्रत्येक युगकी विशेषताओंकी स्थिति बतला सके। ऐसा करनेसे हम अपनी प्रगति और विकासकी वास्तविक गतिको अच्छी तरह समझ सकेंगे।

---

१. नवकथा परिचय, पृ० ३१

जयशंकर प्रसाद

[सन् १८९१-१९३७ ई०]

सामान्य परिचय :—'हिन्दीके रवीन्द्र' और सरस्वतीके लाड़ले पुत्र श्री जयशंकर प्रसादका जन्म काशीके एक प्रतिष्ठित, धनी और उदार परिवारमें हुआ था। सरस्वती और लक्ष्मीसे समन्वित जिस परिवारमें इनका जन्म हुआ था, वह कम ही व्यक्तियोंको नसीब होता है। कहते हैं, लक्ष्मी और सरस्वतीमें बराबर संघर्ष चलता रहा है। ये दोनों किसी भी एक परिवारमें टिक नहीं सकतीं लेकिन जब टिक जाती हैं तो उस परिवारके भाग्यको चमका देती हैं। रविबाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। वैभवकी गोदमें पलनेवाले अधिकांश लेखक प्रायः 'निम्न वासनाओं'के शिकार हो जाते हैं। अंग्रेजी कवि बायरन इसके उदाहरण हैं। श्री रामनाथ 'सुमन' का ठीक ही कहना है कि 'प्रसादजी जिस वातावरणमें उत्पन्न हुए थे, उसमें उत्पन्न होकर दूसरा आदमी जीवनकी निम्न वासनाओंका शिकार हो जाता। उनके जीवनके मूलमें वैभव, विलास एवं ऐश्वर्य बिछा था। उससे अपनेको बचाते हुए अपनी शालीनता और सामञ्जस्यात्मक श्रेष्ठताको न गँवाते हुए उन्होंने अपनेको जो बनाया, उसका कारण उनकी श्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थी। इस बातका पता उनके निकट रहनेवाले भी बहुत ही कम लोगोंको है कि उनको अपने जीवनमें पग-पगपर कितना जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ा था।'[1]

सोनेकी कटोरीमें दूध-भात खिलानेवाले सम्पन्न परिवारमें प्रसादजीका जन्म सन् १८९१ ई० में हुआ था। काशीमें सुँघनी साहुका घराना आज भी बहुत प्रसिद्ध है। यह घराना जर्दा, सुरती और तम्बाकूका व्यापार करता आ रहा था। इसने धन और यशका सम्मिलित अर्जन किया है। प्रसादके पितामह श्री शिवरत्न अपनी दानशीलताके लिए काशीमें आज भी प्रसिद्ध हैं। उनके पुत्र श्री देवीप्रसादने अपने पिताकी परम्परा जारी रखी। इनके दो पुत्र

---

१. कवि प्रसादकी काव्य-साधना, पृ० २६७

हुए—बड़ेका नाम श्री शम्भुरत्न और छोटेका नाम श्री जयशंकर प्रसाद था। प्रसादजीके जन्म-कालमें उनके वंशके चरणोंमें समृद्धि और प्रसिद्धि लोट रही थी। शिशु प्रसादका बचपन खुशहालीमें बीता। लड़कपनसे ही उन्हें कसरतका बहुत शौक था। उनका शरीर अत्यन्त ही सुन्दर, तेजोमय और भव्य था। उनकी बाहरी रूप-रचनामें इतना आकर्षण था कि लोग उनके ऊँचे व्यक्तित्वसे आकृष्ट हुए बिना नहीं रहते थे। घुड़सवारी और कसरत करना उनके दैनिक कार्य थे।

प्रसादकी आरम्भिक शिक्षा घरपर ही शुरू हुई। बादमें उनका नाम काशीके क्वीन्स कॉलेजमें लिखवा दिया गया। लेकिन सातवीं कक्षातक ही उनकी पढ़ाई चल सकी। १२ वर्षकी अवस्थामें उनके परिवारपर अनेक मुसीबतोंका पहाड़ टूट पड़ा, जिनके कारण इनकी पढ़ाई रोक दी गयी। पिताका स्वर्गवास होते ही व्यापारकी स्थिति डाँवाडोल हो गयी। परिवारका सारा भार उनके बड़े भाई शम्भुरत्नपर आ पड़ा। प्रसादका नाम स्कूलसे कटवा तो दिया गया लेकिन बड़े भाईने उनकी पढ़ाईकी व्यवस्था घरहीपर कर दी। प्रसादजीने भिन्न-भिन्न विद्वान् अध्यापकोंसे अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, फारसी और संस्कृतका असीम ज्ञान अर्जित किया। संस्कृतके प्रति इनका झुकाव अधिक था। संस्कृतके एक विद्वान् अध्यापक श्री दीनबन्धु ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें उन्होंने संस्कृत साहित्य, वेद, पुराण उपनिषद्, स्मृति आदि गम्भीर विषयोंका गहरा अध्ययन किया जिसका व्यापक प्रभाव उनके साहित्यपर पड़ा है।

प्रसादजीका जीवन सदा बहिर्द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्वका युद्ध-स्थल बना रहा। १७ वर्षके किशोर प्रसादपर अचानक मुसीबतका पहाड़ टूट पड़ा। उनके अभिभावक और संरक्षक भाई शम्भुरत्नका देहान्त हो गया। सारे परिवार-की देखभालका भार और व्यवसायका बोझ केवल सत्रह सालके बालक प्रसादके निर्बल कन्धोंपर आ पड़ा। यहींसे उनके संघर्षमय जीवनका श्री-गणेश हुआ। अपूर्व दानशीलताके कारण परिवारपर कर्जका बोझ लद चुका था। सन् १९२९-३० तक प्रसादने परिवारका सारा कर्ज अदा कर

दिया। पारिवारिक झंझटोंसे मुक्ति पा लेनेके बाद वह अधिक दिनोंतक जीवित नहीं रहे। केवल ६ वर्षोंके बाद सन् १९३७ में वह इस धरतीसे उठ गये।

प्रसादका व्यक्तित्व—प्रसादके महान् व्यक्तित्वका बड़ा ही आकर्षक विश्लेषण श्री रामनाथ 'सुमन' ने इन पंक्तियोंमें किया है—"व्यक्तिकी दृष्टि-से 'प्रसाद' एक उच्च कोटिके पुरुष थे। वह कवि होनेके कारण उदार, व्यापारी होनेके कारण व्यवहारशील, पुराण-शास्त्रसे संस्कृत काव्य आदिके विशेष अध्ययनके कारण प्राचीनताकी ओर झुके हुए, भारतीय आचारों एवं भारतीय सभ्यताके प्रति ममता रखनेवाले तथा एक सीमातक पाश्चात्य सभ्यताके गुणोंके प्रशंसक थे। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चतुर्थांशमें जन्म लेने और बीसवीं शताब्दीमें विकसित होनेके कारण उनके जीवनमें उन्नीसवीं और बीसवीं दोनों शताब्दियोंके उपकरण दिखायी देते हैं। वह उनके बीचकी चीज हैं। उन्नीसवीं शताब्दीने उन्हें रोमांसके प्रति झुकाव, मस्ती, विलासितापूर्ण सरसता और झंझटोंसे यथासम्भव अलग रहकर सामान्य सुखके साथ जीवन बितानेके भाव प्रदान किये और बीसवीं शताब्दीने यौवन-का प्रवाह परिवर्त्तनोन्मुखी प्रवृत्ति, भारतीयताकी ओर झुकाव, विदग्धता तथा अस्थिर वेदनाका दान दिया। वे दो युगोंके संयुक्त उपकरणोंकी उपज हैं।"

"प्रसादजी १९ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें पैदा हुए थे। यह वह जमाना था, जब दुनिया आधुनिकताकी तरफ बढ़ने लगी थी……। १९ वीं और २० वीं शताब्दियोंकी मिश्रित सृष्टि होनेके कारण उन्हें पुराने ढंग-के वयोवृद्ध-जन भी चाहते थे और नये आगे बढ़े हुए नवयुवक भी। दोनों ही खींचते थे। इस तरह प्राचीन और नवीनके बीच वह एक प्रकारके 'समझौता' थे। परन्तु पुरातन और नूतनके बीच जहाँतक कविताका सम्बन्ध है, वह 'नूतन' की ओर ही अधिक झुके हुए थे। वह मार्ग बतलानेवाले थे, पर नेता नहीं थे। वह १० वीं शताब्दीके मन्द-प्रवाहमें जल-क्रीड़ाका सुख लेनेवालोंमेंसे थे। बीसवीं शताब्दीका प्रखर वेग वर्षाकी हहराती, उम-ड़ती नदीका भयङ्कर तोड़ उनके जीवनकी गतिके अनुकूल नहीं था। आजकी

गति और आतुरता, अस्थिरता और पग-पगपर झंझावातका जमाना उन्होंने तब देखा जब उनकी नींव दृढ़ हो चुकी थी। वह झंझट मोल लेना पसन्द नहीं करते थे। चट्टानके समान स्थिर रहकर वह प्रबल तूफानी समुद्रकी लहरोंका उद्दाम आवेग देखते थे, पर धाराको चीरकर अपना जहाज उत्साहपूर्वक आगे निकाल ले जाने और लोगोंको पीछे पीछे चले आनेके लिए पद-निर्देश करनेका साहस नहीं करते थे......। साहित्य-सम्मेलनको जन्म देनेके प्रस्ताव-कर्त्ताओंमें प्रसाद भी थे, पर कभी सम्मेलनके किसी अधिवेशनमें नहीं गये। प्रयाग या अन्य स्थानोंमें होनेवाले कई कवि-सम्मेलनोंके वे प्रधान चुने गये। लोगोंने कई तरहसे दबाव डाला पर व्यर्थ।"[१]

हिन्दी-साहित्यमें प्रसाद—प्रसाद एकान्त-साधक थे। जिस युगमें रहकर उन्होंने अपनी साहित्य-साधना की, वह युगके अनुकूल नहीं थी, क्योंकि वे अपने समयसे बहुत आगे निकल आये थे। राय कृष्णदासने उनके नाटकोंके सम्बन्धमें जो यह कहा है कि—'उनके नाटक आजके नहीं, कलके हैं', यह बात प्रसादके समस्त साहित्यपर लागू होती है। सभा-सोसाइटियोंसे प्रसाद इसलिए भागते रहे, क्योंकि वे यह अच्छी तरह जानते थे कि उनकी बातें लोगोंको पसन्द नहीं आयेंगी। 'प्रसाद' का युग अभी आया नहीं है, लेकिन उसके आगमनका चिह्न अभीसे ही दिखलायी पड़ने लगा है। प्रसाद-साहित्यको न समझ सकनेके कारण ही कुछ लोगोंने इन्हें परम्परावादी, पलायनवादी और प्रतिक्रियावादी लेखकतक कह दिया है।

प्रसाद सबसे पहले एक कवि थे, फिर और कुछ। उनके कवित्वकी मधुरिमा उनकी प्रत्येक साहित्यिक कृतियोंमें बिखरी है। उनकी कहानियों और नाटकोंका बहुत बड़ा भाग कविताके 'मधुसे वेष्ठित है।' कवित्वकी प्रधानता होनेके कारण उनकी काव्य-सुषमा सर्वत्र विकीर्ण हो गयी है, इसलिए उनकी किसी भी साहित्यिक कृतिकी आलोचना करते समय उनके कविको भुलाया नहीं जा सकता। 'रवीन्द्र' और 'प्रसाद' में यही तो सबसे बड़ा अन्तर है कि रवीन्द्रकी कहानी पढ़ते समय यह अनुभव होने लगता है कि

१. कवि प्रसादकी काव्य-साधना, पृ. १८,

इसका लेखक कोई कवि नहीं है। लेकिन प्रसादकी कहानीका अध्ययन करते समय उनका कवि-रूप साकार हो जाता है।[1]

हिन्दी-साहित्यमें प्रसाद रूसी कलाकार तुर्गनेव और बँगला साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। जिस तरह विश्वके इन दो साहित्यिकोंने अपनी साहित्यिक कृतियोंसे साहित्यके विभिन्न अङ्गोंकी पूर्ति की उसी तरह प्रसादने भी सरस्वतीकी आराधनामें अनेक साहित्यिक,पुष्प अर्पित किये। हिन्दी-साहित्य में वह कवि भी हैं, कहानीकार भी; नाटककार भी हैं, एकांकी-लेखक भी; निबन्धकार भी हैं आलोचक भी। उनके समस्त साहित्यका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यहाँ मैं उनके कहानीकारको ही प्रस्तुत करूँगा। हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें प्रसाद जैसा साहित्यकारका जन्म तुलसीके बाद ही हुआ समझना चाहिये।

हिन्दी-कहानी-साहित्यमें 'प्रसाद'—हिन्दी-कहानीके साहित्याकाशमें प्रसादजी सूर्यकी वह पहली किरण थे जिसके आलोकसे हिन्दी-कहानी-साहित्य चमक उठा। जिस समय उन्होंने कहानी लिखना आरम्भ किया, वह हिन्दी-कहानीका उदय-काल था। ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रसादजी ही हिन्दीके सबसे पहले मौलिक कहानीकार हैं जिनके हाथों आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यका श्रीगणेश हुआ। यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि हिन्दी-कहानीके उषा-कालमें इतनी सशक्त और प्रौढ़ कहानियोंका जन्म सम्भव हो सका। अतः यह कहना पड़ता है कि प्रसादकी कहानियाँ किसी प्रसन्न देवताकी मुक्त वरदान हैं। यह प्रसादकी अपरिमेय प्रतिभाका ही चमत्कार था कि कहानी-साहित्यकी बाल्यावस्थामें इतनी प्रौढ़ कहानियोंकी सृष्टि हो सकी। प्रसादजीके पहले हिन्दी-कहानीका न तो कोई स्थिर स्वरूप था और न मौलिक कहानीकार ही थे। मौलिक कहानियोंका सर्वथा अभाव बना हुआ था। अधिकांशतः कहानियाँ अनूदित होती थीं। उन दिनों बँगला और विशेषकर रविबाबूकी कहानियोंकी बड़ी धूम थी। बँगला, अंग्रेजी, फ्रेंच और रूसी कहानियोंका अनुवाद हिन्दीके पत्रोंमें धड़ल्लेसे निकल रहा था। हिन्दीके कथा-साहित्यमें

---

१. राज्य श्रीः एक समीक्षा—प्रो० वासुदेवनन्दन, पृ, २—६

प्रेमचन्द और प्रसादने ही पहले-पहल कहानियोंके महत्वको समझा और इसीलिए दोनोंने कहानीको समृद्ध और उन्नत बनानेकी आप्राणचेष्टाएँ की जिनमें उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। यह प्रेमचन्द और प्रसादके ही सम्मिलित प्रयत्नोंका सुपरिणाम है कि आज हम हिन्दी-कहानी-साहित्यको इतना उन्नत, विकसित और समृद्ध पाते हैं। यदि यह कहा जाय कि आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यकी इमारत प्रसाद-प्रेमचन्दकी नींवपर ही खड़ी है और उन्हींकी परम्परामें हिन्दी-कहानीका विकास हो रहा है तो कोई अत्युक्ति न होगी। लेकिन हिन्दीके कहानी क्षेत्रमें प्रसादका आगमन प्रेमचन्दसे पहले ही हो चुका था। हिन्दीमें आनेके पहले प्रेमचन्द उर्दू-कहानी-साहित्यको अपनी कहानियोंसे पुष्पित और पल्लवित कर रहे थे। हिन्दी-कहानीमें उनका आगमन सन् १९१४ में हुआ। इसके पहले प्रसादजी हिन्दी-कहानी-साहित्य-को अपनी अनेक मौलिक कहानियोंका मुक्त-दान दे चुके थे। कहा जा चुका है कि हिन्दी-कहानीके जन्म, विकास और प्रगतिमें हिन्दीकी दो तीन प्रमुख पत्रिकाओं 'सरस्वती', 'इन्दु' और फिर 'हँस'का सक्रिय हाथ रहा है। हिन्दी-कहानीको विकास-पथ देनेके लिए ही प्रसादजीने 'इन्दु' शीर्षक पत्रिका-का प्रकाशन करवाया था। इसीमें प्रसादकी प्रथम कहानी-'ग्राम' सन् १९११ में प्रकाशित हुई थी। वास्तवमें 'ग्राम' कहानी आधुनिक हिन्दी-कहानीकी वह नींव है जिसपर वर्तमान हिन्दी-कहानीका भवन खड़ा हुआ है।

हिन्दी-कहानीके क्षेत्रमें प्रसादजी एक मौलिक कहानीकार हैं। अपनी सुविधा और विद्यार्थियोंकी सहूलियतके लिए यह कहा जा सकता है, जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा भी है, कि प्रसादकी कहानियोंसे हिन्दी-कहानी-साहित्यमें कहानीकारोंके उस स्कूलका जन्म हुआ जिसे कुछ लोग 'प्रसाद-स्कूल' की संज्ञा देते हैं। वास्तवमें प्रसाद-स्कूलकी कहानियोंकी अपनी विशेषताएँ हैं, अपने विश्वास हैं, अपनी धारणाएँ हैं। यह स्कूल हिन्दी कहानीके अन्य स्कूलोंसे बिलकुल भिन्न है जिसकी चर्चा और व्याख्या मैं पिछले पृष्ठोंमें कर चुका हूँ। हिन्दी-कहानियोंको स्कूलोंमें विभाजित करना आलोचककी निश्चित नीतिका ही परिचायक है। हिन्दीमें कहानियोंके स्कूलोंकी भरमार चाहे न हो

लेकिन दो स्कूल--'प्रसाद-स्कूल' और प्रेमचन्द-'स्कूल' तो स्फटिककी तरह स्पष्ट हैं। यह समझना कि प्रसाद और प्रेमचन्दके कथा-साहित्यमें या उनकी 'कृतियोंमें कोई विशिष्ट रूपभेद अथवा रचना-पद्धतिकी विभिन्नता नहीं पायी जाती'[१] एक दुराग्रह है। प्रसाद और प्रेमचन्दमें उतना ही भेद है जितना नारी और पुरुष, चाँद और सूर्य तथा रूसी कहानीकार टाल्सटाय और तुर्गनेवमें अन्तर माना जाता है। प्रसादकी कलामें नारीकी दया, क्षमा और करुणा है और प्रेमचन्दकी कलामें पुरुषकी कठोरता सूर्यका ताप और टाल-स्टायका उपदेशात्मक प्रचार। प्रसादकी कहानियाँ नारीकी कोमलता चाँदकी शीतलता और तुर्गनेवकी साहित्यिकताकी अन्यतम प्रतीक हैं। अतएव प्रसाद और प्रेमचन्दको एक ही व्यक्ति' कहना बिलकुल युक्ति-संगत नहीं जँचता।

हाँ, तो, हिन्दी-कहानी-साहित्यके प्रथम अग्रदूत प्रसादजी ही थे, जिन्होंने अपनी सृजनात्मक शक्ति और प्रतिभाके बलपर हिन्दी-कहानीकी प्राचीन परम्पराको ध्वंस कर एक नितान्त नूतन सृष्टि की। उनके पहले कहानियाँ तो पौराणिक होती थीं या धार्मिक। उनमें 'साहसिक क्रियाओंका वर्णन' अधिक होता था। हिन्दीमें प्रसादजी ही पहले कहानीकार थे जिन्होंने कहानीके आन्तरिक और बाह्य रूपोंका पूर्ण संस्कार किया। उन्होंने शरीरसे अधिक आत्मा, रूपसे अधिक शक्तिको मान्यता दी। हिन्दीमें चरित्र-प्रधान कहानियोंका जो अभाव, बहुत दिनोंसे खटक रहा था उसकी पूर्ति प्रसादजीने ही की। प्रसादके पूर्व जिन कहानियोंकी रचना होती थी उनके पात्र किसी वर्ग या सम्प्रदायका प्रतिनिधित्व करते थे लेकिन प्रसादने चरित्र-चित्रणकी इस परिपाटीको सदाके लिए दूर कर व्यक्ति-चरित्रोंका सृजन किया। कहानीका रूप ही बदल गया। अब कहानीका विषय समाज न होकर व्यक्ति हो गया। प्रसादजीने व्यक्तिकी शक्ति और हस्तीको समझनेका भरसक प्रयत्न भी किया। इसीलिए उनकी कहानियोंके सभी पात्र मानव हैं जो किसी रहस्य-मय अभावसे पीड़ित रहते हैं—वैभवकी गोदमें पलनेवाले व्यक्ति दुःखी हैं, संसारके सभी सुख-साधन उपलब्ध होते हुए भी विरागी हैं, अपनी अभि-

---

१. हिन्दी उपन्यास--प्रो० शिवनारायण श्रीवास्तव पृ० १५५

लाषाओंकी पूर्ति होते हुए भी त्यागी हैं। इस तरह हिन्दीके कहानी-साहित्य-में प्रसाद ही पहले कहानीकार थे जिन्होंने परम्परासे चली आती हुई कहानियों-की आत्माका परिष्कार किया और उसमें नवचेतना और नवजागरणका सञ्चार किया।

इसके अतिरिक्त, हिन्दी-कहानीके 'प्रसव-काल' में प्रसादजीने कहानी-कलाको जिस ऊँचे धरातलपर बिठाया उसका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि यह कलाकार कितना दूरदर्शी था। वास्तवमें, प्रसादजीकी कहानियोंमें कहानी-कलाने लम्बी-लम्बी डगें भारी हैं जैसे भगवान् बावनकी तरह वह भी कलाका संसार एक ही पगमें नाप लेने-का प्रयत्न कर रहे हों। प्रसादकी कहानी-कला अपनेमें अनूठी और अद्वितीय है। इस तरहकी कहानियाँ न तो पहले कभी लिखी गयीं और न आज भी देखनेको मिलती हैं। हाँ, प्रसाद-स्कूलके कुछ कहानीकारोंने उनका अनुकरण करनेका प्रयत्न अवश्य किया है लेकिन प्रसादकी कहानीकी जो अपनी सूझ और देन है वह उनमें भी नहीं हैं। इस स्कूलके कहानीकारोंमें पं० विनोद-शङ्कर व्यास, राय कृष्णदास तथा पं० मोहन लाल महतो 'वियोगी' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी प्रसाद स्कूलके मान्य कहानीकार हैं, जिसकी खास विशेषता मानव-मनकी किसी एक 'मनोवृत्ति' का चित्र उपस्थित करने-में होती है और जिसमें घटना और चरित्रकी प्रधानता नहीं रहती। इसलिए ये कहानियाँ अधिकांशतः भावात्मक या वातावरण प्रधान होती हैं।

प्रसादका कहानी - साहित्य—प्रसादका कहानी-साहित्य हिन्दी-साहित्यकी नूतन सृष्टि है। उनकी समस्त रचनाओंको तीन कालोंमें विभाजित किया जाता है—पूर्वकाल-सन् १९१०-२२; मध्यकाल–सन् १९२३-१९२९ अन्तिम काल–सन् १९२९-३७ प्रसादजीकी कहानियाँ इन तीन कालोंको स्पर्श करती हुई विकसित हुई हैं। पहले कालमें उनकी कहानियोंके दो संग्रह 'प्रतिध्वनि' और 'छाया'–प्रकाशित हुए। उनमें 'छाया' उनका प्रथम कहानी-संग्रह है। दूसरे कालमें 'आकाशदीप' कहानी-संग्रह प्रकाशमें आया और तीसरे कालमें कहानियोंके दो अन्य संग्रह-'आँधी' और 'इन्द्रजाल'

निकले। प्रसादकी कहानियोंको उपरिकथित तीन कालोंमें विभाजित कर अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि इन कहानियोंके विषय-पक्ष और कलापक्ष दोनोंमें सूक्ष्म परिवर्तन और विकास होते गये हैं। डा० सत्येन्द्रने विकासको इन रेखाओंको शब्दोंमें बाँधनेका बड़ा ही अच्छा प्रयत्न किया है—"प्रसादजीकी आरम्भिक रचनाओंमें किशोरीलाल गोस्वामीके द्वारा अपनायी बङ्ग शैलीके दर्शन होते हैं, जिसमें भावोंकी रङ्गीनीके स्थूल विकारोंका प्रदर्शन करनेके लिए शब्दोंकी रङ्गीनीका आश्रय लिया गया है। पर 'आकाशदीप' तक आते-आते उनके अन्तरस्थ कलाके गहरे सागरके हृदयकी झलक पूरी तरह उभर आयी और वे कल्पनाके हिमधौत लोकमें ऊँची चोटीपर उषाके रँगमें रङ्गकर जा पहुँचे--हिमालयके पथिक बने, स्वर्गके खँडहरोंमें विचरे। वहाँसे करुणा तथा प्रेमकी यथार्थ अनुभूति लेकर वे 'इन्द्रजाल' और 'आँधी' की रचना करने बैठे—उनकी दृष्टि शतधा हो गयी, कल्पनाकी रङ्गीनी यथार्थमेंसे, जगत् के जीवनमेंसे, अस्पृश्य क्षेत्रोंमेंसे उड़ने लगी।"[1] इस उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसादकी कहानियाँ मानवीय 'भावोंकी रङ्गीनीके स्थूल विकारोंका प्रदर्शन' करती हुई, 'कल्पनाके हिमधौत-लोकमें' विचरण करती हुई, हृदयमें करुणा तथा प्रेमको समेटे, किसी 'रहस्य-लोक' की ओर अग्रसर होती गयी हैं। यही उनकी कहानीकी कहानी है और इसी पृष्ठ-भूमिपर प्रसादकी कहानियोंका अध्ययन किया जा सकता है। अतः उनकी कहानियोंमें विकासकी रेखाएँ बहुत स्पष्ट हैं; पारखियोंकी आवश्यकता है।

प्रसादका कहानी-साहित्य उनके 'हृदय-मंथन' का सुपरिणाम है। श्री रायकृष्णदासने 'इक्कीस कहानियाँ'की भूमिकामें प्रसादीय कहानीकी परिभाषा स्थिर करनेका प्रयत्न निम्नलिखित पंक्तियोंमें किया है—"प्रसादजीने एक बार इन पंक्तियोंके लेखक (रायकृष्णदास) से प्रसङ्गवश एक बात कही थी, जिसका भाव लेकर कहानीकी परिभाषा यों बनायी जा सकती है--"आख्यायिकामें सौन्दर्यकी एक झलकका रस है। मान लीजिये कि आप किसी तेज सवारीपर चले जा रहे हैं, रास्तेमें गोल-मटोल शिशु खेल रहा है सुन्दरताकी मूर्त्ति।

---

१ प्रसादकी कला, पृ० १६५

उसकी झलक मिलते-न-मिलते भरमें सवारी आगे निकल जाती है। किन्तु उतनी ही झलक ऐसी होती है कि उसकी स्थायी रेखा आपके अन्तर्पटपर अङ्कित हो जाती है। यही काम कहानी भी करती है।" श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी-ने इसी भावको प्रकारान्तसे इस प्रकार कहा है—"प्रसादकी कहानियोंमें एक निष्फल यौवन, एक करुण प्रणय, एक दर्दीली स्मृतिके चित्र भिन्न-भिन्न प्रकारसे चित्रित होते रहते हैं और इन्हींके साथ-साथ किसी सूक्ष्म मानवी मनोवृत्तियोंकी एक पतली-सी रहस्यपूर्ण रेखा भी खींच दी जाती है। उनकी सभी कहानियोंके प्लाट प्रायः एक-से ही हैं, केवल स्थान और पात्रोंके नाममें अनेकता है। उनकी कहानियोंको हम एक प्रकारका प्रेम-पूर्ण कथात्मक गद्य-काव्य कह सकते हैं जिसमें घटना और चरित्र प्रधान न होकर भाव ही प्रधान होते हैं। इस भावाभिव्यक्तिके लिए वे कथाकी सृष्टि गद्य-काव्यके ढङ्गपर कर देते हैं। उसमें कहानी उतनी ही सूक्ष्म रहती है जितनी पल्लवोंमें उनकी शिराएँ,जो उनके भाव विकसित हृदयके हरित विस्तारमें ढँकी रहती हैं।...प्रसादजीकी कहानियाँ एकाङ्की नाटकोंकी भाँति एकाङ्गी हैं, जिनमें एक मनोवृत्ति, हृदयका एक चित्र, अथवा घटनाकी एक रेखा है।"[1] ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसादकी कहानियोंमें भावों तथा कलाका क्रमिक विकास होता गया है; उनमें घटना अथवा चरित्रके स्थानपर किसी एक मानवीय मनोवृत्तिका चित्र अङ्कित किया गया है तथा उनके विषय 'निष्फल प्रेम' 'करुण प्रणय' और 'दर्दीली स्मृति' आदि होते हैं जिनकी परिणति किसी रहस्यकी छायामें होती है। उनकी अधिकांश कहानियाँ भावात्मक होती हैं। सामान्यतः इनमें स्थूल-जगत्की अपेक्षा कल्पना-लोक या भाव-लोककी सृष्टि की गयी है। इसलिए ये कहानियाँ साधारण पाठकोंको नहीं रुचतीं। बात यह है कि प्रसादका कहानी-साहित्य मनोरञ्जन और मनोविनोदकी सामग्रियाँ प्रस्तुत नहीं करता। इसमें 'मनोहर कहानियाँ' और 'माया' की सस्ती कहानियोंका पूर्ण अभाव है। प्रसादकी कहानियाँ उनके लिए हैं जो भावनाको पङ्ख फैलानेका अवसर देते हैं, जो कल्पनाको उड़ान भरने देनेके लिए थोड़ा समय निकाल लेते हैं, जो

---

१. हमारे साहित्य निर्माता, पृ० ११०–१११

आन्तरिक चेतनाके स्फुरण और शक्तिको स्वस्थ बनाये रखनेमें विश्वास रखते हैं और जो भावनाके साथ कामना और वासनाके साथ साधना तथा भावुकता-के साथ विवेकको अपने साथ लिये चलते हैं। उनकी कहानियाँ न तो कार-खानोंके मजदूरोंको हड़तालके लिए उत्साहित कर सकती हैं और न किसानों-को जमीन्दारोंके निर्दोष शिशुओंकी हत्या करनेके लिए ही प्रेरित कर सकती हैं। प्रगतिवादियोंको इनसे बड़ी निराशा होगी क्योंकि प्रसादजीने इनमें युग-की अस्थायी समस्याओंका समावेश नहीं किया है। उनकी कहानियाँ रोटीकी समस्याका समाधान नहीं निकालतीं। सच तो यह है कि प्रसादजीने युगकी समस्याको न लेकर युग-युगके सांस्कृतिक प्रश्नोंको उठाया है और यही शाश्वत प्रश्न उनकी कहानियोंके विषय बनकर आये हैं। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रसादजी युगके प्रति बिलकुल उदासीन थे। सच तो यह है कि युगकी मूल समस्याकी ओर उनका भी ध्यान था; जैसे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक समस्या। अपनी कहानियोंमें उन्होंने वर्तमान युगकी समस्याओंकी ओर भी पाठकोंका ध्यान आकृष्ट किया है। यह सच है कि अपनी कहानियोंमें, नाटकों-की तरह ही वे अतीतकी ओर गये हैं और उनमें भी राजे-महाराजे, रानियाँ, राजकुमार और राजकुमारियोंका अत्यधिक वर्णन हुआ है लेकिन उन्होंने उनके जिस जीवनपर प्रकाश डाला है वह पूँजीवादी लेखकसे बिलकुल भिन्न है। प्रसादजीकी दृष्टि शरीरसे अधिक आत्माकी ओर लगी रही है। इसके साथ ही उनकी कहानियोंमें जो एक नयी बात देखनेको मिलती है वह यह कि राजा-महाराजाओंके साथ निम्न वर्गके व्यक्तियोंको भी स्थान दिया है। 'पुर-स्कार' कहानीमें कृषक-बालिका मधूलिका और 'आकाशदीप' में प्रहरीकी बेटी चम्पा इसके ज्वलत प्रमाण हैं। नाटकोंकी अपेक्षा कहानी-साहित्यमें प्रसादने निम्नवर्गके व्यक्तियोंको जितना स्थान दिया है, वह अन्यत्र नहीं मिलता। यह ठीक है कि यहाँ भी वे अतीतके खँडहरोंमें ही विचर रहे हैं लेकिन अतीतके जिन लोगोंको उन्होंने अपनी कहानीका उपादान बनाया है, वे इतिहासके उपेक्षित पात्र हैं, जिनपर इतिहासकारोंका ध्यान कभी गया ही नहीं। प्रसादजी अपने साहित्यिक जीवनमें अतीतसे वर्तमानकी ओर केवल दो ही बार खुलकर आये

थे--'कङ्काल' और 'तितली' में। लेकिन अपनी कहानियोंमें वे अतीतकी ओर ही अग्रसर होते रहे। उनकी कहानियोंमें मानव-जीवनके राग-विरागका, दुःख सुखका जो अन्तर्द्वन्द्व दिखलाया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उपरिलिखित बातोंसे यह स्पष्ट है कि प्रसादकी कहानियोंके पाठकोंका बौद्धिक स्तर जबतक ऊँचा नहीं होता तबतक उनकी कहानियाँ समझी नहीं जा सकतीं। डॉ० सत्येन्दने ठीक ही लिखा है कि 'प्रसादकी कहानियोंका धरातल बहुत ऊँचा है।' ऐतिहासिक दृष्टिसे उनकी कहानियोंका महत्व इसलिए है कि उन्होंने हिन्दी-के पाठकोंका ध्यान बँगला और अङ्गरेजीकी कहानियोंकी ओरसे हटाकर हिन्दी-कहानियोंकी ओर लगा दिया। डॉ० सत्येन्द्रके शब्दोंमें "प्रसादजीने जिस समय लिखना आरम्भ किया उस समय हिन्दीपर बँगलाका आतंक था। नाटकों-में द्विजेन्द्रलाल रायकी धूम थी, काव्य-कहानीमें रवीन्द्रकी। प्रसादजीने बङ्गाल-की इन लहरोंको झेला, और उनके कलाकारने मौलिक रचनाएँ देकर उसके विचार और मानसके धरातलको ऊँचाकर दिया। बँगलाके लिए जो लहक थी, उसका शमन प्रसादजीने किया--वह प्रायः उसी कोटिकी वस्तुएँ देकर जिस कोटिकी बँगला दे रही थी।"

प्रसादकी कहानी-कला--प्रसादकी कहानियाँ नियमोंके बन्धनको स्वीकार नहीं करतीं। उनमें हृदयके भावों तथा उद्गारोंकी अभिव्यक्ति टेकनीककी अपेक्षा अधिक हुई है। अतः उनकी कहानियोंकी आलोचना कहानीके मूल तत्वोंके आधारपर नहीं की जा सकती। प्रसादकी कहानी-कला उनकी प्रकृति-की सहचरी है जो सदैव उनके साथ 'समरसता' की स्थितिमें बनी रहती है। इसीलिए उनकी कहानियोंकी कलामें एकरूपता और समरसता पायी जाती है। यदि उनकी भाषा और उसकी प्रकाशन-शैलीमें भिन्नता न होती तो सम्भवतः उनकी कहानियाँ मनको उबानेवाली होतीं। यद्यपि प्रसादकी कहानी-कलामें एकरूपता है तथापि प्रत्येक कहानीमें उसका आकर्षण तथा प्रभाव भिन्न है।

प्रसादकी कहानी-कलाकी पहली विशेषता ऐतिहासिक वातावरणकी सृष्टिमें है। मैं कह चुका हूँ कि उनकी कहानियाँ अतीतकी पुकार हैं। वे जिस युगका चित्र खींचना चाहते हैं, उसकी साकार तस्वीर हमारी आँखोंके सामने स्वतः

खिंच जाती है। प्रसादकी ऐतिहासिक चेतना अद्भुत थी। इस कलामें उनकी समता करनेवाला हिन्दीका कोई भी दूसरा लेखक नजर नहीं आता। उस युगकी राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक जीवनका मूर्त्त चित्र आँकनेमें उन्हें आशातीत सफलता मिली है। यह उनकी कहानी-कलाकी एक ऐसी विजय है जो कठोर साधनाके बाद ही प्राप्त होती है। जिस रोमांटिक संसारके चित्र उन्होंने हमारे सामने खड़े किये हैं, वे इतने भव्य, मनोहर और आकर्षक हैं कि पाठकोंका मन उस 'सुदूर' के लिए ललक पड़ता है। उस संसारका समस्त वातावरण हमारे वर्तमान संसारसे भिन्न है। 'आकाशदीप'में सामुद्रिक जीवनका जो रूप खड़ा किया गया है वह भारतीय पाठकोंके लिए बिलकुल नवीन और मौलिक है क्योंकि भारतीयोंको समुद्र-दर्शन करनेका अवसर कम ही मिलता है। 'पुरस्कार' कहानीमें जिस राजपरिवारके ऐश्वर्यमय जीवनका चित्र अंकित किया गया है वह यथार्थ और स्वाभाविक है।

प्रसादकी कहानी-कलाकी दूसरी विशेषता व्यक्ति-चरित्र (Individual character) के मानसिक द्वन्द्वोंकी अवतारणामें है। मैं कह चुका हूँ कि प्रसादके पात्र किसी समाज, सम्प्रदाय या वर्गका प्रतिनिधित्व नहीं करते। यद्यपि वे किसी वर्गके ही प्रतिनिधि-जैसे लगते हैं लेकिन जिन मानसिक परिस्थितियोंके द्वन्द्वमय जीवनसे उन्हें गुजरना पड़ता है वह वर्गगत चरित्रसे बिलकुल भिन्न होता है। उनके पात्र मानव हैं जो आन्तरिक अभावसे पीड़ित रहते हैं। उनमें राग-विराग, पाप-पुण्य तथा सुख-दुःखका घात-प्रतिघात होता रहता है। उनके अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक हैं। जीवनकी कठोर परिस्थितियाँ उन्हें उत्तेजित करती हैं। प्रसादके पात्र जब किसी आदर्श-भावसे आक्रान्त होते हैं, तब उनके अन्तर्द्वन्द्व चरम सीमापर पहुँच जाते हैं। 'पुरस्कार' में मधूलिकाका आन्तरिक द्वन्द्व चरमावस्थाको प्राप्त हो जाता है जब वह कर्त्तव्य और प्रेमके बीच आन्दोलित हो उठती है। एक ओर राष्ट्रकी रक्षाका प्रश्न है और दूसरी ओर अरुणका प्रेम खींचता है। किसी भी व्यक्तिके लिए यह परिस्थिति कितनी कठोर सिद्ध हो सकती है, इसका अनुभव किसी भी समझदार व्यक्तिको हो सकता है। ऐसे-ऐसे अवसरोंपर प्रसादकी कहानी-कलाका आकर्षण बढ़ जाता

है। यहींपर लेखक मनका विश्लेषण करनेमें लग जाता है। वह एक ओर मनोभावोंका चित्र खींचने लगता है और दूसरी ओर शारीरिक व्यापारोंका भी वर्णन करता है। चित्रणकी शक्ति प्रसादकी कलाकी अपनी देन है। इसके उदाहरण उनके नाटकों, उपन्यासों, काव्योंमें—सर्वत्र देखनेको मिलते हैं।

प्रसादकी कहानी-कलाकी तीसरी विशेषता दृश्य-वर्णनमें है। उन्होंने समयानुसार तथा युगानुकूल प्रकृति, नगर, ग्राम और समाजके सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। उनका दृश्य-वर्णन वातावरणकी सृष्टिके लिए हुआ है। उन वर्णनोंसे वातावरणकी यथार्थता और स्वाभाविकतामें पाठकका विश्वास दृढ़ हो जाता है। 'आकाशदीप'में समुद्र और जहाँ-तहाँ बिखरे हुए द्वीपोंके जो दृश्य-वर्णन किये गये हैं, वे काफी स्वाभाविक और सजीव हैं। यहाँ भी प्रसादजीने अपनी चित्रमत्ताशक्तिका परिचय दिया है।

प्रसादकी कहानी-कलाकी चौथी विशेषता भाव-प्रवणतामें है। यह कहा जा चुका है कि प्रसादजी पहले कवि थे, फिर और कुछ। उनके कविकी भाव-प्रवणता उनकी कहानियोंमें भी समाविष्ट हो गयी है। इसलिए उनकी कहानियाँ गद्य-काव्यका आनन्द देती हैं। काव्यकी कल्पना और भावुकताका प्रयोग यहाँ भी हुआ है। जहाँ-जहाँ लेखकने भावुकता तथा कल्पनाको व्यावहारिक रूप दिया है, वहाँका गद्य स्निग्ध और काव्यमय है ही, उससे प्रसादकी प्रतिभाकी गहराईका पता भी चलता है।

प्रसादकी कहानी-कलापर प्रकाश डालते हुए डॉ. सत्येन्द्रने लिखा है कि "प्रसादजीकी कहानीकी टेकनीकका सबसे प्रधान लक्षण यह है कि उसमें बीज विकासकी अवस्थामें नहीं, कहानीमें जैसे एक बिन्दु विशद होकर उपस्थित हो गया है, और वह विशदरूप अपनेमें सौन्दर्य लिये उस बिन्दुसे ही पूछता है, 'ओ तू! मुझे आइना बनाकर अपना रूप देख।"……तभी प्रेमचन्दने कहा था कि प्रसादजीकी कहानियोंका अन्त अपने ढंगका निराला होता है—बड़ा भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक और सहसा…पाठकका मन झकझोर उठता है,……वह एक समस्याको पुनः सुलझाने लगता है।" वास्तवमें प्रसादकी कहानियाँ प्रसादान्त होती हैं। अन्तमें न तो सुखकी प्रधानता होती

है और न दुःखकी। 'आकाशदीप' में बुद्धगुप्त तथा चम्पाका अन्ततक विवाह सम्पन्न न होना इस बातको प्रमाणित करता है। कहानीके अन्तमें प्रसाद अपने सुधी पाठकोंके लिए बहुत कुछ छोड़ देते हैं ताकि वे समस्याका समाधान अपनी ओरसे निकाल सकें। अतः उन्होंने अपनी कहानियोंको उपदेशात्मक और प्रचारात्मक होनेसे बचा लिया है। उनकी कहानियाँ विवेकशील व्यक्तियोंके लिए लिखी गयी हैं, जो स्वयं कुछ सोचने समझनेकी क्षमता रखते हैं।

प्रसादकी कहानियाँ सङ्कलन-त्रय (Three unities)के नियमको भी स्वीकार नहीं करतीं। वे स्थान और कालके बन्धन और सीमाको तोड़कर स्वच्छन्द विचरण करती हैं। उनमें न तो समयकी एकताका निर्वाह किया गया है और न स्थानकी एकताका ही। लेकिन प्रभावकी एकता (Unity of Impression) का सफल निर्वाह सर्वत्र हुआ है क्योंकि प्रसादजी रसके उद्बोधक थे और कहानियोंमें किसी एक रसका परिपाक करना ही उनका ध्येय था। आरम्भसे अन्ततक 'करुणाकी ललकार' सर्वत्र पायी जाती है।

भाषा-शैली—प्रसादकी कहानीकी सफलताका कारण उनकी भाषा-शैली भी है। कहानियोंमें उनकी भाषा-शैलीका लगभग वही रूप है जो उनके नाटकोंमें प्रायः रहा करता है। उनकी भाषाके दो रूप हैं—व्यावहारिक और संस्कृत-प्रधान। व्यावहारिक भाषाका प्रयोग उपन्यासोंमें अधिक हुआ है और संस्कृत-प्रधान भाषाका कहानी-नाटकोंमें। ऐतिहासिक वातावरणका चित्राङ्कन करनेके लिए ही उन्हें अपनी भाषाको संस्कृत-प्रधान बनाना पड़ा। यह स्वाभाविक बात भी है। भाषामें प्रवाह, प्रभाव और काव्यात्मकता हर-जगह देखी जा सकती है। उनकी कहानियोंकी गद्य-भाषा गद्य-काव्यका एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(सन् १८८३–१९२२ ई०)

जीवनकी रेखाएँ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी मृत्युके ठीक एकवर्ष पहले हिन्दी और संस्कृतके महापंडित श्रीयुत चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका जन्म २५ जुलाई सन् १८८३ को जयपुरमें हुआ था। गुलेरीजी अपने पिता पं० शिवरामजीके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनकी जीवनीपर प्रकाश डालते हुए श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ने निम्नलिखित बातें लिखी हैं—"बाल्यावस्थामें उन्होंने अपने विद्वान पितासे ही पढ़ना-लिखना सीखा। आरम्भमें उन्होंने संस्कृत पढ़ी। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। पाँच-छः वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने संस्कृतमें बोलनेका अच्छा अभ्यास कर लिया था। उन्हें तीन-चार सौ श्लोक तथा अष्टाध्यायीके दो अध्याय कण्ठस्थ थे। नौ-दस वर्षकी अवस्थामें तो उन्होंने संस्कृतमें एक छोटा-सा व्याख्यान देकर भारतधर्म महामण्डलके कई उपदेशकोंको आश्चर्य चकित कर दिया था। सन १८९३ में उन्होंने जयपुरके महाराज कॉलेजमें अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया। सन् १८९९ में वह प्रयाग-विश्वविद्यालयकी इन्ट्रेस-परीक्षा सर्वप्रथम और कलकत्ता विश्वविद्यालयकी उसी परीक्षामें प्रथमश्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। उनकी इस प्रकारकी सफलतासे प्रसन्न होकर जयपुर-राज्यने उन्हें स्वर्ण-पदक देकर प्रोत्साहित किया। वह विद्याव्यसनी थे। संस्कृत साहित्यमें उनकी विशेष रुचि थी। इन्ट्रेसकी परीक्षा पास करनेके बाद उन्होंने महाभाष्यका अध्ययन किया। सन १९०२ में उन्होंने जयपुरके मान-मन्दिरके जीर्णोद्धारमें सहायता दी और 'सम्राट्-सिद्धान्त' नामक ज्योतिष ग्रन्थके कई अंशोंका बड़ी योग्यतापूर्वक अनुवाद किया। उसी समय लेफ्टनेंट गैरेटके साथ उन्होंने अंग्रेजीमें 'the Jaipar observatary and its builder' नामक ग्रन्थ लिखा। यह कार्य उन्होंने अपने विद्यार्थीजीवनमें ही किया था। इसके एक वर्ष बाद सन् १९०३ में उन्होंने प्रयाग, विश्वविद्यालयसे प्रथम श्रेणीमें बी. ए. पास किया। इस बार उन्हें फिर जयपुर-राज्यसे स्वर्ण-पदक और बहुतसी पुस्तकें पुरस्कारमें मिलीं। उनका विचार दर्शन-शास्त्रमें एम.ए. की परीक्षा देनेका था, पर जयपुर-राज्यके

आग्रहसे खेतड़ी-नरेश जयसिंहका संरक्षक बनकर उन्हें अजमेरके मेयो कॉलेज-में जाना पड़ा। वहाँ वह संस्कृतके प्रधानाध्यापक हो गये। सन् १६१७ में वह जयपुर राज्यके समस्त सामन्तोंके अभिभावक नियुक्त हुए। मेयो कालेजमें कश्मीरके महाराज हरिसिंह, प्रतापगढ़के नरेश रामसिंह, ठाकुर अमरसिंह, ठाकुर कुशालसिंह तथा ठाकुर दलपतसिंह उनके प्रिय शिष्योंमें थे। सन्१९२० में वह अजमेरसे काशी आये और काशी-विश्वविद्यालयमें संस्कृत-विभागके अध्यक्ष हो गये। यहाँ दो वर्षोंतक कार्य करनेके बाद ११ सितम्बर सन् १९२२ को ३९ वर्षकी अल्पावस्थामें उनका स्वर्गवास हो गया।

"गुलेरीजी संस्कृत-साहित्यके प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने वैदिक साहित्य, भाषातत्व, दर्शन और पुरातत्वका गम्भीर अध्ययन किया था। अंग्रेजी और संस्कृतके अतिरिक्त प्राकृत, पाली, बँगला और मराठीका उन्हें अच्छा ज्ञान था। सन् १८९७ में जयपुरके स्वर्गीय जैनवैद्यजीसे उनका परिचय हुआ, तब हिन्दीके प्रति उनके हृदयमें अनुराग उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप दोनों सज्जनोंने हिन्दी-सेवाकी प्रतिज्ञा की और इसी उद्देश्यसे सन् १९००में जयपुर-में नागरी-भवनकी स्थापना की। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके प्रति उनकी बड़ी सहानुभूति थी और वह बराबर उसके सदस्य रहे।"[१] खेतड़ीके राजा जयसिंहकी बड़ी बहन महारानी सूर्यकुमारीकी मृत्यु होनेपर उनके पति महाराज उम्मेदसिंहने अपनी पत्नीकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिए जो बीस हजार रुपये दान देकर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा सूर्यकुमारी पुस्तक-मालाकी स्थापना की थी, उसमें गुलेरीजीका ही सक्रिय हाथ था। इससे उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और हिन्दी-प्रेमका ज्वलन्त प्रमाण मिल जाता है।

गुलेरीजीका व्यक्तित्व :—गुलेरीजी संस्कृतके महापंडित थे, राहुल-सांकृत्यायनकी तरह। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अगाध विद्वता और असीम योग्यता व्यक्तिकी स्वतन्त्र प्रतिभाको कुण्ठित कर देती है। डॉ० नगेन्द्र-

१. हमारे लेखक-श्रीराजेन्द्रसिंह पृ० १८०-८१

के शब्दोंमें "विद्वत्ताके अनुपातसे ही व्यक्तिकी प्राणवत्तामें कमी होती जाती है। विद्वान् व्यक्ति प्रायः प्राणवान् नहीं रह पाता, उसके दृष्टि-कोणमें जीवन-की ताजगी न रहकर पुस्तक-ज्ञानका बोझिलपन आ जाता है।" लेकिन हिन्दीमें निराला, प्रसाद, राहुल और गुलेरी जैसे कवि-लेखक इस सिद्धान्तके अपवाद हैं। डॉ० नगेन्द्रने गुलेरीजीके महान व्यक्तित्वपर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "उच्च कोटिकी विद्वताके साथ ही उनकी प्राणवत्ता भी उनके व्यक्तित्वमें पायी जाती है। वे अपने युगके शुद्ध प्रथम श्रेणीके विद्वान थे। पुरातत्त्व, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, साहित्य, भाषा विज्ञान—सभीमें उनकी अबाध गति थी। संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं और हिन्दी, बँगला, मराठी, अंग्रेजी आदि आधुनिक भाषाओंपर उनका समान अधिकार था। लेटिन, जर्मन फ्रेंचका भी उन्हें ज्ञान था। परन्तु अपने इस असाधारण पाण्डित्यको उन्होंने सदैव जीवनका साधन ही माना, साध्य नहीं बनने दिया। उनकी जीवन-चेतना इतनी प्रबल थी कि पांडित्य उसको पुष्ट तो कर सका, पर दबा नहीं सका।

"गुलेरीजीका संक्षिप्त जीवन सभी प्रकारसे सफल ही रहा। वे पुत्र, वित्त और लोक-तीनों ओरसे सुखी थे। विद्यार्थी-जीवनमें उन्हें स्पृहणीय सफलता मिलती थी। हाई-स्कूल और बी० ए० में वे सर्वप्रथम रहे थे। यौवन-काल में भी सफलता उनके चरण चूमती रही। पहले वे जयपुर राज्यके सभी सामन्त-पुत्रोंके अभिभावक रहे। बादमें उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें College of oriental learnig and theology के प्रिन्सिपल पदको सुशोभित किया। लोक-जीवनमें भी उनको अक्षय गौरव प्राप्त हुआ था। काशी-नागरी-प्रचारिणीका सभापतित्व, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक-माला एवं सूर्यकुमारी पुस्तकमालाका सम्पादन, अनेक लेखोंका स्वदेशी-विदेशी विद्वानों द्वारा अभिनन्दन—ये सब उनके गौरवकी स्वीकृतिके विभिन्न रूप थे। किन्तु गौरव दीर्घजीवी नहीं होता। उन चालीस वर्षकी अल्पायुमें ही समस्त दिशाओंको उद्भासित कर यह प्रकाश-पुञ्ज भी तिरोहित हो गया और विद्वान लोग यह अनुमान ही लगाते रह गये कि यदि कुछ और समय मिलता तो शायद वह

हिन्दी जगत्को समग्रतः आच्छादित कर लेता।"[1] "गुलेरीजी मुख्यतः संस्कृत-साहित्यके महापण्डित थे। उनका झुकाव अध्ययनकी ओर ही विशेष रूपसे था। इसलिए किसी मौलिक ग्रन्थकी रचना उन्होंने नहीं की। वह लिखना चाहते तो लिख सकते थे, पर इस साधनसे उन्होंने लाभ उठाने और यश प्राप्त करनेकी कामना नहीं की। हिन्दीके प्रति प्रेम उत्पन्न होनेपर उनका कार्य मुख्यतः प्रचारात्मक ही रहा। स्थायी रूपसे उन्होंने हिन्दीमें भी लिखनेकी चेष्टा नहीं की। कई वर्षतक उन्होंने 'समालोचक' का अवश्य सम्पादन किया। उनके लेख सामयिक पत्रोंमें भी प्रकाशित होते रहते थे। 'पुरानी हिन्दी और शिशुनाग-मूर्तियोंपर लिखे हुए उनके लेख आज भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।' काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने उनके ऐसे समस्त लेखोंका संग्रह किया है, पर अभी वह प्रकाशमें नहीं आया है।...गुलेरीजी हिन्दीके उन साहित्यिकोंमेंसे थे जिन्होंने कम लिखा, पर ख्याति अधिक प्राप्त की। उनकी समस्त रचनाएँ हमें इस समय उपलब्ध नहीं। वास्तवमें उन्होंने कोई पुस्तक नहीं लिखी।"[2]

हिन्दी-कहानी-साहित्यमें गुलेरीजी :—हिन्दी-साहित्य-संसारमें गुलेरीजी तीन रूपोंमें आये—सम्पादक, निबन्धकार और कहानीकारके रूपमें। हिन्दी-साहित्यमें उनका कहानीकार अन्य रूपोंकी अपेक्षा सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ है। दो-एक कहानी लिखकर कहानीकारका अमरपद पा लेना एक असाधारण व्यक्तिका ही काम है। विश्व-साहित्यमें इस तरहकी घटना दुर्लभ है। लेकिन गुलेरीजी एक ऐसे ही महापुरुष हैं जिन्होंने अपने जीवनमें केवल तीन कहानियाँ लिखीं और उनमेंसे एक कहानी—'उसने कहा था' लिखकर वे विश्वके अमर कहानीकारोंमें अमर हो गये। यह सौभाग्य बिरले ही पुरुषको प्राप्त होता है। कुछ वर्ष पहले लोगोंका यह ख्याल था कि गुलेरीजीने केवल एक ही कहानी 'उसने कहा था' लिखी थी। कुछ लोगोंको इस कहानीकी मौलिकतामें सन्देह भी होता है। उनका कहना है कि 'यह किसी अंग्रेजी कहानीका अनुवाद है या कोई अपहृत कृति है।' लेकिन यह केवल अनुमान

---

१. विचार और अनुभूति—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६-४७

२. हमारे लेखक, पृ० १८२

है। इस आक्षेपमें प्रामाणिकताका पूर्ण अभाव है। गुलेरीजीकी दो अन्य कहानियाँ——'सुखमय जीवन' और 'बुद्धूका काँटा'——भी प्रकाशमें आ चुकी हैं। इस प्रकार उन्होंने केवल तीन ही कहानियाँ लिखीं। उनकी कहानियोंमें 'सुखमय जीवन' प्रथम 'बुद्धूका काँटा' द्वितीय और 'उसने कहा था' का तृतीय स्थान है। इन तीन कहानियोंमें गुलेरीजीकी कला क्रमशः छलाँग मारती हुई विकसित होती गयी है जिसका पूर्ण उत्कर्ष 'उसने कहा था' में देखनेको मिलता है। यह कहानी हिन्दी-कहानी-साहित्यकी अमूल्य निधि है जो अपनेमें 'उत्कृष्ट' और 'बेजोड़' है। केवल इसी कहानीने गुलेरीजीके साहित्यिक व्यक्तित्वको उच्च स्तर दिया है। इसका प्रकाशन प्रथम महायुद्धके अवसरपर सन् १९१५ में, 'सरस्वती' में हुआ था। उस समय साहित्य-जगत्‌में इसने काफी धूम मचायी थी। इस कहानीकी प्रशंसा करते हुए प्रो० केसरी कुमारने लिखा है कि 'उसने कहा था' शीर्षक कहानीमें गुलेरीजीने प्रथम महायुद्धके एक अद्भुत दृश्यकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हुए मानव-जीवनकी दिव्य सार्थकतासे उन्हें परिचित कराया है। युद्धोंमें अनेक सैनिक मारे जाते हैं लेकिन कितनेकी ओर हमारा ध्यान जाता है तथा कितनेके जीवनके कोमल, करुण, त्याग-पूर्ण पक्षोंको हम सहानुभूति एवं समवेदनाकी दृष्टिसे देखनेकी चेष्टा करते हैं! एक महान् लेखककी सूक्ष्मदृष्टि ही इस क्षेत्रमें अनायास प्रवेश-कर पाती है।''[1] उनकी प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' में ''एक ऐसे नवयुवकका चित्र अंकित किया गया है जिसमें विद्या-बल तो है, संसारका अनुभव-बल नहीं है। इसलिए उसे जीवनका सुख नहीं मिलता। अन्तमें परिस्थितियाँ उसकी आँखें खोल देती हैं और वह सुखमय जीवन प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है। 'बुद्धूका काँटा' भी इसी प्रकार एक अनुभवहीन युवककी कहानी है। ये तीनों कहानियाँ जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोंके सजीव चित्र उपस्थित करती हैं। इनकी बड़ी विशेषता यह है कि इनमें भिन्न-भिन्न पात्रोंकी भाव-भंगी अपनी-अपनी परिस्थितिके अनुसार सुन्दर और उपयुक्त भाषामें

---

१. हिन्दीके कथाकार, पृ० १८-१९.

अंकित की गयी है। यही गुलेरीजीकी साहित्यिक क्षमता है और इसी क्षमताके कारण वह हमारे अमर कहानीकार हैं।"[1]

जिस समय गुलेरीजीने कहानी लिखना आरम्भ किया वह हिन्दी-कहानीका 'प्रसवकाल' था। 'उसने कहा था' (१६१५) के पहले प्रसादजीकी प्रथम मौलिक कहानी 'ग्राम' का प्रकाशन 'इन्दु' पत्रिकामें, सन् १९११ में हो चुका था। इसके अतिरिक्त 'कौशिक'जीका 'रक्षाबंधन' (१९१२), आचार्य शिवपूजन सहायका 'मुण्डमाल' (१६११), प्रेमचन्दका 'पंच परमेश्वर' (१९१४) राजा राधिकारमणका 'कानोंका कँगना' आदि कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी थीं। गुलेरीजीका रचना-काल इन्हीं द्विवेदी युगीन कहानीकारोंके साथ आरम्भ हुआ था। अतः वह द्विवेदी-युगके कहानीकार हैं। लेकिन इस युगकी इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकताको स्वीकार न-कर उन्होंने अपनी स्वच्छन्द विवेक-बुद्धिसे काम लिया है। गुलेरीजी ही हिन्दीमें सम्भवतः प्रथम कहानीकार हैं जिन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१८) को लक्ष्य कर कहानी लिखी है। इससे उनकी व्यापक दृष्टि और अन्तर्राष्ट्रीय चेतनाका प्रमाण मिलता है। 'उसने कहा था' में उन्होंने महा-युद्धका जो चित्र अङ्कित किया है वह आँखों देखा मालूम होता है। इसके अतिरिक्त कहानीके उस उपदेश-प्रधान युगमें उन्होंने मानव-मनका जो सूक्ष्म विश्लेषण किया है वह उनके समयसे आगेका उपादान था। सेक्स' के नाम-पर नाक-भौं सिकोड़नेवाले द्विवेदी-युगमें रहकर भी गुलेरीजी उसके प्रति उदासीन नहीं थे। उनकी दृष्टिमें जीवनमें नीति और सदाचारकी सदैव आवश्यकता रहेगी लेकिन सेक्सके महत्त्वको भी कम नहीं किया जा सकता। गुलेरीजीका कहानी-साहित्य, हिन्दी-कहानीके आनेवाले युगकी घड़ियाँ गिन रहा था। इसीलिए उनके कहानी-साहित्यमें हम आचार भी पाते हैं, व्यवहार भी; शृङ्गार भी पाते हैं, संयम भी; मानव-मनकी 'छायानुभूतियाँ' भी पाते हैं, 'जीवनकी मांसल अनुभूतियाँ भी। जीवनके प्रति उनके दृष्टिकोण अपने थे। डॉ० नगेन्द्रने ठीक ही कहा है कि "वे सेक्स (Sex) के नामपर

१. हमारे लेखक, पृ० १८२.

झिझकनेवाले आदमियोंमें से नहीं थे। जहाँ-कहीं भी प्रसङ्ग आया है उन्होंने मुक्त भावसे बिना झिझके उसकी स्पष्ट व्यञ्जना की है—यहाँतक कि 'उसने कहा था' कहानीमें उद्धृत पंजाबीके उस गानेमें 'कर लेगा नाड़े दा सौदा अड़िये' के स्थानपर उन्होंने शरमाकर चिह्न-बिन्दु नहीं लगाया, साफ ही पंक्तिको उद्धृत कर दिया है। यह उनके मनके स्वास्थ्यका असन्दिग्ध प्रमाण है। एक स्थानपर उन्होंने स्वयं इस सत्यका उद्घाटन किया है, "जो कोनेमें बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं उनकी अपेक्षा खुले मैदानमें खेलनेवालोंके विचार अधिक पवित्र होते हैं।" गुलेरीजी प्रकृतिके सच्चे चित्रोंको ही देखते थे, उपन्यासोंकी मृगतृष्णामें चमत्कार नहीं ढूँढ़ते थे। उनकी कहानियोंमें स्पष्ट ही शास्त्रके बँधे हुए वातावरणसे प्रकृतिके उन्मुक्त वातावरणकी ओर जानेकी प्रवृत्ति है। उनके जीवन-मान सर्वथा प्राकृतिक हैं। कृत्रिम मान उन्हें सह्य नहीं थे। दृष्टि-कोणका यह स्वास्थ्य रस, विवेक और विचार—तीनों तत्त्वोंके उचित सम्मिश्रणका फल था। उसमें अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता-का वांछित संयोग था। जीवनके रसका उन्होंने सम्यक् उपभोग किया परन्तु अपने जागृत विवेकके कारण उसमें बहे नहीं। इससे अनुभूतिमें स्थिरता आयी। उधर विचारने उसको गम्भीरता और परिपक्वता प्रदान की। जीवन-तत्त्वोंका यही सम्यक् संतुलन उनके जीवन और साहित्यकी सफलताका कारण था।"[1] 'अनुभूतिकी स्थिरता'के कारण ही उनकी कहानी 'उसने कहा था' में आज भी, ३०-३२ वर्ष बीत जानेके बाद भी, पहले जैसी ताजगी बनी हुई है, आज भी हम उस कहानीको उतनी ही रुचि, शक्ति और गतिके साथ पढ़ते हैं जितनी वह आजसे ३०-३२ वर्ष पहले पढ़ी गयी थी और पसन्द की गयी थी। विश्वके कहानी-साहित्यमें इस कहानीका अपना बेजोड़ स्थान है।

गुलेरीजीकी कहानी-कला—अनेक शास्त्रोंके विद्वान् होते हुए भी गुलेरीजी कहानीको शास्त्रीय विधियोंमें ढालना नहीं चाहते थे। यहीं उनकी विद्वत्ता और प्रतिभाके बीच विभाजक रेखा खिंच जाती है और पाण्डित्यपर कारयित्री प्रतिभाकी विजय हो जाती है। अतएव, गुलेरीजीकी कहानियोंका अध्ययन

१. बिचार और अनुभूति पृ० ४७-४८

टेकनीकके बँधे-बँधे नियमोंके आधारपर नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्हें बन्धन सह्य नहीं था। आधुनिक हिन्दी-कहानीने आदि-कालमें 'उसने कहा था' जैसी उत्कृष्ट कहानीका लिखा जाना वास्तवमें एक अद्भुत घटना है जिसपर मानव-सन्देहका इठलाना स्वाभविक ही है।

गुलेरीजीकी कहानीका विषय है मनुष्य, जो अपनी भूलोंपर पश्चात्ताप करता है, सुखमें हँसता है और दुःखमें आठ-आठ आँसू बहाता है, जो मानव-जीवनके धूल-धुएँमें अपनेको लपेटकर, धूपमें तपाकर मनकी मलिनताको चाँदीकी तरह उज्वल और गंगा-जलकी तरह पवित्र बनाना चाहता है। यह मनुष्य अपनी सामाजिक चेतनासे परिपूरित भी है और उसके द्वन्द्वोंसे आक्रान्त भी। 'उसने कहना था' का लहनासिंह ऐसा ही पात्र है। गुलेरीजी अपने पात्रोंको जीवनके उन्मुक्त प्रवाहमें तिनकेकी तरह या कागजकी नाव बनाकर छोड़ देते हैं और स्वयं उसके साथ बहते चले जाते हैं। वह कभी उनके दुःख-सुखका चिर साथी बनकर उनकी वेदनाकी कहानी सुनते हैं तो कभी उनके सुखसे सुखी होकर हँसते हैं। अतः उनके पात्र मिट्टीकी मूर्तियाँ न होकर जीवनकी सजीव सृष्टियाँ हैं जो हाड़-मांसके जीते-जगाते नमूने हैं, हमारी-आपकी तरह। कथा-साहित्यमें सजीव चरित्र ही अमर होते हैं। गुलेरीजीके पात्र इसलिए अमर हैं कि उन्होंने मानव-मानकी सुप्त भावनाओंको कुरेदकर उभार दिया है जो चिरन्तन सत्य हैं, अजर और अमर।

डॉ० नगेन्द्रके शब्दोंमें "गुलेरीजीकी कहानियोंका प्रमुख आकर्षण रस है।" यद्यपि आधुनिक कहानी-कलामें प्राचीन साहित्यकारों द्वारा स्वीकृत इसका मूल्य कम गया है तथापि गुलेरीजीने शास्त्र-सम्मत रस-सिद्धान्तको मुक्त-कण्ठसे स्वीकार किया है क्योंकि वह स्वयं प्राचीन संस्कृत-साहित्यके महापंडित थे। गुलेरीजी अपनी कहानियोंमें रस-बोध कराकर स्थिर हो जाते हैं। आधुनिक शब्दावलीमें उनकी कहानियोंमें प्रभावकी एकता (Unity of Impression) का सुन्दर और सफल निर्वाह हुआ है। 'उसने कहा था' कहानीमें कहानीकारने क्रमशः इतिहास, ओज और करुणाका उत्तरोत्तर विकास किया है जिसमें पाठकके हृदयमें रसका परिपाक क्रमानुसार प्रगाढ़ और पुष्ट होता

गया है। कहानीके आरम्भमें जो माधुर्यजनित चंचलता है, उसका अन्तमें अभाव है। कहानीका अन्त इतना गम्भीर हो गया है कि पाठकका मन रसमें डूब जाता है। लेकिन कथानकके आदि और अन्तको इस खूबीके साथ लपेटकर एक कर दिया है जिससे कथाकी एकताको धक्का नहीं लगा है। अन्तमें शैशवकी मधुर घटनाकी पुनरावृत्तिकर लेखकने कहानीके आदि-अन्तका मुँह मिला दिया है, जैसे कुत्ता अपना मुँह उलटकर अपनी पूँछ चाटने लगता है। रसका यह 'सिञ्चन' केवल कथानकके निर्वाहमें ही सम्भव नहीं हुआ बल्कि स्थान-स्थानपर वर्णनोंमें भी उसका उपयोग किया गया है।

गुलेरीजीके कहानीकारकी आत्मा गम्भीर है लेकिन उसका हृदय मधुर हास्यसे वेष्ठित है। क्योंकि उनके 'हृदयमें कुढ़नका विष नहीं था, सन्तोषका अमृत था।' संस्कृत-सागरकी थाह लेनेवाले व्यक्तिका व्यक्तित्व गम्भीर होता ही है लेकिन जो व्यक्ति शास्त्रके बँधे नियमोंकी खचित रेखाओंपर चलनेका अभ्यासी नहीं होता उसकी गम्भीरतापर हास्य और व्यंग्यका झीना आवरण पड़ना आवश्यक हो जाता है। गुलेरीजी संस्कृतके महापण्डित थे और इसलिए उन्होंने जीवनको गाम्भीर्यके चश्मेसे देखा था लेकिन चूँकि वह कभी-कभी शास्त्रीय नियमोंको भी चुनौती दे देते थे, इसीलिए उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्वके दर्शन भी उनकी कहानियोंमें हो जाते हैं। ऐसे अवसरोंपर गुलेरीजीका व्यक्तित्व और उनका स्वभाव चाँदीकी तरह चमक जाता है। उनके हास्यके सम्बन्धमें डॉ० नगेन्द्रके विचार बड़े ही उपयुक्त और उपयोगी हैं: "वास्तवमें उनका हास्य एक ऐसे व्यक्तिका हास्य है जिसके हृदयमें जीवनके प्रत्येक सुखसे सहानुभूति है, जो विकृतियोंमें भी अद्भुत वैचित्र्य और आकर्षण पाता है, जिसके हृदयमें किसी प्रकारका दम्भ या मैल नहीं है और जो खुलकर हँसता है। एक उदारण लीजिये। अमृतसरके इक्के-ताँगेवालोंकी बोलियोंकी तारीफ करते हुए आप फर्माते हैं—"क्या मजाल है कि जी और साहब सुने बिना किसीको हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरीकी तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बारबार चुनौती देनेपर भी लीकसे नहीं हटती तो उनकी

वचनावलीके ये नमूने हैं : 'हट जीणे जोगिये, हट जा करमा वालिये, हट जा पुत्ताँ व्यारिये, बच जा लम्बी बालिए'। समष्टिमें इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रोंको प्यारी है, लम्बी आयु तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियोंके नीचे आना चाहती है—बच जा!" (उसने कहा था)

एक बात और; गुलेरीजी हास्यके सृष्टिकर्त्ता नहीं, उद्बोधक मात्र हैं। 'बेढब' बनारसीकी तरह वह हास्यकी सृष्टि नहीं करते, वरन् उसका उद्बोधन या व्यञ्जना कर देते हैं। इसलिए उनकी कहानियोंमें जहाँ कहीं भी हास्य आया है, वह साध्य न होकर साधन-मात्र है। "वे केवल हास्यके लिए परिस्थितिका सृजन नहीं करेंगे वरन् उपस्थित परिस्थितिमें ही हास्यकी तरंग पैदा कर देंगे। कहीं कहीं तो गम्भीर परिस्थितिमें ही हँसीसे गुदगुदा देते हैं। 'सुखमय जीवन' के अन्तमें परिस्थितिमें काफी खिंचाव आ गया है परन्तु ज्यों ही उत्तेजना शान्त होती है और परिस्थितिमें लोच आता है, गुलेरीजी फौरन ही उसे गुदगुदा देते हैं।" हास्य और विनोदका 'सुन्दर उदाहरण' लहनासिंह और नकली लेफ्टिनेंट साहबकी बातचीतमें मिलता है। गुलेरीजीकी कहानियोंमें हास्य और विनोदके लिए अनेक अवसर निकल आये हैं लेकिन उनमें व्यंग्यको कोई स्थान नहीं दिया गया है। साधारणतः साहित्यमें व्यंग्य (Satire) वहीं होता है जब साहित्यकार अपनी परिस्थितियोंसे खिन्न और निराश होता है। गुलेरीजीके साथ इसका प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि अपने जीवनमें वह अभावके शिकार कभी हुए ही नहीं। वह पुत्र, धन और लोक—तीनों ओरसे सुखी थे।

गुलेरीजीकी कहानियोंमें उनकी प्रकृत प्रतिभा, असीम विद्वत्ता और व्यक्तित्वकी उच्चता धरातलपर उभर आयी हैं। उनमें कहानी-कलाकी सृजनात्मक शक्तिका अभाव नहीं था लेकिन राज-परिवारके बीच रहते-रहते उनकी कलापर बुजुर्आपनकी छाप भी कहीं-कहीं दिखायी पड़ जाती है। यदि गुलेरीजी अनेक देशी राजा-महाराजाओंका शिष्यत्व स्वीकार न कर जन-मनका नेतृत्व करते तो उनकी प्रकृत प्रतिभाको अधिक गति और शक्तिके साथ पनपनेका अवसर मिलता। उनकी कहानियाँ उनके जीवनकी अनुभूतियाँ नहीं,

कला-जगत्की सृष्टियाँ हैं, जिनमें कला भी है और उसकी कारीगरी भी, लेकिन हमारे समाजके उपेक्षित और शोषित वर्गको, उत्प्रेरित करनेकी क्षमता उनमें नहीं है। इसीलिए 'उसने कहा था'–जैसी कहानी आज कलाकी वस्तु भर रह गयी है, जन-जीवनकी शक्ति नहीं। हमारा वर्त्तमान जन-समाज कलाकी बारीकीसे कोसों दूर है क्योंकि उसके पेटमें भूखकी आग लगी हुई है। लहनासिंहकी अश्रुसिक्त प्रेम-कहानी सुनने और समझनेके लिए आज उसके पास समय नहीं है। आज वह स्वय एक कहानी बन गया है। इसीलिए गुलेरीजीकी कहानियोंका मूल्य आज उतना नहीं रहा जितना आगे चलकर होगा। आनेवाले युगमें–जब कि भावी समाज रोटीकी समस्यासे मुक्त हो सकेगा, तब वह उनकी कहानियोंकी बारीक कलाको समझनेके लिए अवश्य समय निकालेगा और तब वह उनकी प्रशंसाका पुल बाँध देगा।

गुलेरीजीकी भाषा-शैली—गुलेरीजीकी भाषा-शैली अपने युगसे आगेकी चीज थी। उनकी भाषामें जो प्रौढ़ता और शक्ति, स्फूर्ति और यथार्थता है वह प्रेमचन्द और शुक्लजीमें भी देखनेको नहीं मिलती। यहाँ भी गुलेरीजीकी भाषा अपनी जन्मजात प्रतिभाको साथ लेकर अवतरित हुई है। संस्कृतके महापंडित होते हुए भी उनकी गद्य-भाषामें तत्सम शब्दोंका मोह नहीं है। 'प्रायः ऐसा देखा जाता है कि संस्कृतके पंडितोंको तत्सम शब्दोंके प्रति अपरिमेय ममता होती है और जब भी वे गद्य लिखते हैं, उनकी यह ममता अपने खुले रूपमें प्रकट हो ही जाती है। लेकिन गुलेरीजीने भाषाको कट्टरतासे अपनेको सदैव बचाया है और इसीलिए उनकी भाषा-शैली पांडित्य-पूर्ण न होकर व्यावहारिक रूपमें उपस्थित हुई है। उनकी भाषामें संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजीके शब्द आवश्यकतानुसार पाये जाते हैं। विषयको रोचक बनानेके लिए ये कहीं-कहीं उर्दूकी पदावलीका प्रयोग भी कर देते हैं। अंग्रेजीके अनेक शब्दोंका प्रयोग खुलकर किया है। ड्रामेटिक, टेलीपैथी जैसे अंग्रेजी शब्दोंका व्यवहार करनेमें वे तनिक भी नहीं हिचकते। जहाँतक हो सका है, उन्होंने अपनी भाषाको भावके अनुकूल व्यावहारिक बनानेका प्रयत्न किया है। भाषाको कहीं भी कृत्रिम नहीं होने दिया है। प्रसादजीका क्लिष्ट गद्य गुलेरीजीकी

कहानियोंमें कहीं नहीं पाया जाता। भाषा चलती और सरल है। उन्हें भाषाकी लाक्षणिक और व्यंजनात्मक शक्तियोंपर असाधारण अधिकार था। इसीलिए हम जहाँ-तहाँ भाव-व्यंजनाके सुन्दर-सुन्दर उदाहरण पाते हैं। उनकी शैलीमें स्फूर्ति और गम्भीरताका अद्भुत संयोग हुआ है जिसके फलस्वरूप उनकी भाषामें एक ओर भावोंकी सुन्दर व्यंजना हुई है और दूसरी ओर सरलता और प्रवाह आ गये हैं। प्रवाह और प्रभाव भाषा-शक्तिकी पहचान हैं। गुलेरी-जीकी भाषामें ये गुण सहजहीमें उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन जहाँ उन्होंने अपने पांडित्यको खुलने दिया है, वहाँकी भाषा बोझिल और कृत्रिम हो गयी है और प्रसंग-गर्भत्वके दोषसे अभियुक्त हो गयी है। साधारणतः उनकी कहानियोंकी शैली व्यावहारिक है, जिसमें प्रवाह, प्रभाव और सरलताका अभाव नहीं है। भाषा-शैलीमें पांडित्य और व्यावहारिकताका इतना सुन्दर समन्वय कम ही देखनेको मिलता है। गुलेरीजी वास्तवमें प्रतिभा-पुत्र थे।

प्रेमचन्द

[१८८० ई०–१९३६ ई०]

जीवन-परिचय—हिन्दीके उपन्यास-सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दके जीवन-की कहानी अंग्रेजी उपन्यासकार डिकेन्स और गोल्डस्मिथकी जर्जर गरीबीकी कहानी है। प्रेमचन्दकी कहानियोंमें गरीबीका चित्रण जो इतना सजीव और मर्मस्पर्शी हो सका है, उसका कारण उनकी अद्भुत कल्पना-शक्ति नहीं, बल्कि उनकी आप बीती आत्मानुभूति है। प्रेमचन्दने 'जीवन-सार' (आत्म-कहानी) के आरम्भमें लिखा है कि 'मेरा जीवन सपाट समथल मैदान है, जिसमें कहीं कहीं गढ़े तो हैं, पर टीले, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डोंका स्थान नहीं है'। "जिस व्यक्तिकी माताका देहान्त सात वर्षकी अवस्था प्राप्त करते-करते हो जाय और विमाताके कठोर शासनका कटु सुख भोगना

पड़े। सोलह वर्षके लगभग पिताने अपना हाथ जिसके ऊपरसे उठा लिया, जिसे पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें विवाह-बन्धनमें बाँध दिया गया, जिससे सन्तोष न पाकर जिसे उसकी जीवित अवस्थामें ही बहुत कुछ सोच-विचारके पश्चात् बिना आवेगोंका शिकार बने, एक विधवासे विवाह करनेके लिए अग्रसर होना पड़े, जिसने रो-धोकर, ले-देकर कष्टों और आपत्तियोंको काटते हुए मैट्रिककी परीक्षा पास की हो, जिसके पारिवारिक जीवनकी यहीं कुछ मोटी-मोटी घटनाएँ हों—माताकी मृत्यु, अपना विवाह, पिताकी मृत्यु, अपना विधवासे विवाह, फिर सरकारी नौकरी और उसे छोड़ प्रेस और लेखन-व्यवसाय—निश्चय ही बाहरी जीवन उसका सपाट कहा जायगा !—कुछ गड्ढे हों; पर जिसे हम लेखक कहते हैं, वहाँ, जहाँका प्रेमचन्द इस पंच-तत्त्वके पुतलेके भीतर किसी मानस-लोकमें ही जन्म ग्रहण करता है और जिससे यह मिट्टीका शरीर सम्मानका भागी हो पाता है उस प्रेमचन्दके जीवनमें पर्वत और जंगलोंकी भरमार दीखती है, गहरी घाटियों, खाईं, खन्दकोंका वहाँ अभाव नहीं—और इसे सभी देखनेवालोंने उनके सौम्य मुखकी विषादयुक्त झुर्रियोंमें सम्भवतः देखा भी।'[1] यह है प्रेमचन्दके जीवनका एक रेखा-चित्र।

प्रेमचन्दका जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० ई० को मध्यश्रेणीके एक गरीब कायस्थ-परिवारमें हुआ था। उनके पिता श्री अजायबराय बहुत ही मामूली आदमी थे। बनारस जिलेके पाँडेपुर मौजेमें उनकी थोड़ी-सी काश्तकारी थी लेकिन इसकी आमदनी प्रायः नहींके बराबर थी। वे डाकखानेमें २० रुपयेपर क्लर्कका काम करते थे। प्रेमचन्दकी माताका नाम श्रीमती आनन्दी देवी था। प्रेमचन्दकी तीन बहनें थीं। उनमें दो तो मर गयीं, तीसरी बहुत दिनोंतक जीवित रहीं। उस बहनसे प्रेमचन्द आठ साल छोटे थे। माता हमेशा मरीज रहती थीं। प्रेमचन्दके घरके दो नाम थे। पिता धनपतराय कहते थे और चाचा नवाबराय। ये जब आठ सालके हुए तब इनकी माताका देहान्त हो गया और सोलह साल पहुँचते-पहुँचते इनके पिताकी भी मृत्यु हो गयी। सन् १८८५ में पाँचवें वर्ष प्रेमचन्दकी पढ़ाई शुरू हुई। पहले यह मौलवी

१. प्रेमचन्द : उनकी कहानी-कला—डॉ. सत्येन्द्र पृ. ३–४

साहबसे उर्दू पढ़ते थे। उन दिनों सभी पढ़े-लिखे हिन्दू-विशेषकर कायस्थ, उर्दू, फारसी, अरबी इत्यादि पढ़ते थे। ये पढ़नेमें बहुत तेज थे। इनका बचपन घोर गरीबीमें कटा। अपनी 'आत्मकथा' में इन्होंने स्वयं लिखा है कि "अँधराके पुलका चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनोंतक पहना है। जबतक मेरे पिताजी जीवित रहे, तबतक उन्होंने मेरे लिए बारह आनेसे ज्यादाका जूता कभी नहीं खरीदा, और न चार आनेसे ज्यादा गजका कपड़ा कभी मेरे लिए खरीदा गया।"

प्रेमचन्द बचपनसे ही भावुक, सत्यवक्ता, स्वाभिमानी और निष्पकटी थे।

आठ सालकी अवस्थामें माताका देहान्त हो जानेपर प्रेमचन्दके पिताने दूसरी शादी कर ली। इनके साथ सौतेली माँका व्यवहार अच्छा न था। घरमें आते ही वह घरकी मालकिन बन गयी और प्रेमचन्द मातृ-प्रेमसे सदाके लिए बंचित कर दिये गये। जब फीसके रुपये माँगते तो वे बुरी तरह झल्लातीं। पितासे कहनेकी हिम्मत न थी। ऐसी स्थितिमें अपनी माताकी याद इन्हें बुरी तरह सताती थी। अपनी विमाताके सम्बन्धमें प्रेमचन्दने लिखा है कि—'वे इस बातका कोई भी ख्याल नहीं रखतीं कि प्रेमचन्द उनके पुत्र नहीं तो पुत्र स्थानीय हैं, इसीलिए उनके सामने दूसरोंसे हँसी-मजाक दायरेके अन्दर ही करना चाहिये, किन्तु वे इसका कोई ख्याल नहीं रखती थीं। मुझे तेरह सालमें ही उन बातोंका ज्ञान हो गया था जो कि बच्चोंके लिए घातक है।'

गरीबीने प्रेमचन्दका कभी पीछा नहीं छोड़ा। पैसोंकी दिक्कत उन्हें हमेशा बनी रही। १३ वर्षमें उनका नाम मिशन स्कूलके छठे दर्जेमें लिखाया गया। दो वर्ष बाद इन्हें बनारस आना पड़ा। इस समय इनकी उम्र १५ वर्षकी थी। नवें दर्जेमें पढ़ते थे। उन दिनों इनके पिताकी बदली गोरखपुर हो चुकी थी। महीनेमें पाँच रुपये इन्हें मिल जाते थे। दो रुपये स्कूल-फीस, शेष अपने ऊपर। सब मिलाकर पूरा खर्चा नहीं बैठता था। एक कुप्पीके सामने रातमें बैठकर टाट बिछाकर पढ़ते थे। जबतक पिता जीवित रहे तबतक प्रेमचन्दकी पढ़ाईका सिलसिला किसी तरह चलता रहा लेकिन उनके

मरनेपर गरीबीने अपनी उग्र भीषणता और विकरालताका परिचय दिया। अब वे पाँच रुपयेका ट्यूशन करने लगे। ट्यूशनसे जो रुपये मिलते थे, वे तो बहुत शीघ्र ही खर्च हो जाते थे। फिर उधारपर काम चलता था। रोटियाँ उधारपर चलती थीं। एक बार प्रेमचन्दको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए अपना गरम कोट और चक्रवर्तीका अङ्क-गणित बेचना पड़ा। उस कोट-को एक साल पहले उन्होंने बड़ी मुश्किलसे बनवाया था।

१५ सालकी अवस्थामें प्रेमचन्दका विवाह हुआ। उन्होंने लिखा है कि जब उनकी शादी हुई तो वह बहुत खुश थे, मण्डप छानेके लिए बाँस उन्होंने खुद काटे थे। लेकिन जब उन्होंने अपनी पत्नीकी सूरत देखी तो उनकी सारी उमङ्ग जाती रही। यह विवाह कैसे सुखी होता जब इसका पहला दृश्य ही इतना करुण और दर्दनाक था। वह स्त्री बदसूरत, जबानकी तेज और प्रेमचन्दसे उम्रमें बड़ी थी।

पिताकी मृत्यु हो चुकी थी–किन्तु प्रेमचन्दजीमें पढ़नेके अरमान थे, होना चाहते थे एम०ए० और एल०एल०बी०, पर घरमें भूँजी भाँग न थी। प्रेमचन्दजी लिखते हैं—'मैं चढ़ना चाहता था पहाड़पर'। 'पाँवमें जूते न थे, देहपर साबित कपड़े न थे, महँगी अलग।' काशीके क्वींस कालेजमें पढ़ते थे, फीस माफ हो गयी थी, पर इससे क्या? ट्यूशन करनी पड़ी। काशीमें 'बाँसके फाटक' एक लड़केको पढ़ाने जाते थे। साढ़े तीन बजे कालेज से छूटते, ६ बजे ट्यूशनसे; पाँच मील पैदल गाँव, आठ बजेके लगभग घर पहुँचते और इसी प्रकार प्रातः आठ बजे चल देना पड़ता। फिर भी दूसरी श्रेणीमें मैट्रिकुलेशन पास हो गये। इंटरमें नाम लिखाया। हिसाबमें बार-बार फेल हो जानेसे इंटरमें कई बार फेल हुए। अन्तमें इम्तहान देना छोड़ दिया। १०-१२ सालके बाद जब हिसाब 'अख्तियारी' हो गया तो इंटर पास किया और फिर बी० ए०। 'कालिज छोड़नेपर एक वकीलके यहाँ ट्यूशन मिल गयी थी।......वेतन ५ रु० था। दो-ढाई रुपया अपने आपपर खर्च करते, दो-ढाई घर दे आते। वकील साहबके अस्तबलके ऊपर एक कच्ची कोठरी थी, उसीमें रहते।...एक बार एक दुकानपर एक पुरान

किताब बेचने गये वहाँ एक सज्जनसे भेंट हो गयी। वे एक छोटेसे स्कूलके हेड मास्टर थे। उन्हें सहकारी अध्यापककी जरूरत थी। १८ रुपये वेतन-पर उन्हें रख लिया। यह सन् १८९९ ई० की बात है। बढ़ते-बढ़ते १९०८ ई० में ये डिप्टी इन्सपेक्टर हो गये और १९२०के असहयोग आन्दोलनतक शिक्षा विभागमें ही काम करते रहे। उन दिनों ये गोरखपुर थे। सारे देशका दौरा करते हुए गाँधीजी वहाँ आये। उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर दो ही चार दिन बाद अपनी २० सालकी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया और देहातमें जाकर प्रचार और साहित्य-सेवाको अपने जीवनका उद्देश्य बनाया।'[1]

किस्से-कहानी सुनने, सुनाने और लिखनेकी प्रवृत्ति प्रेमचन्दमें बचपनसे ही थी। लड़कपनमें उनकी दोस्ती अपने दर्जेके एक ऐसे लड़केसे हो गयी थी जो एक तम्बाकू बेचनेवालेका बेटा था। वे नित्य-अपने मित्रके साथ स्कूल के बाद, उसके मकानपर जाते और वहाँ तम्बाकूके बड़े-बड़े काले पिण्डोंके पीछे बैठकर दोनों मित्र हुक्का पीते थे और 'तिलस्म होशरूबा' पढ़ते थे—यह कभी न समाप्त होनेवाली कहानी थी। जब सन्ध्या हो जाती तब वे अपने घर चले जाते। यह क्रम प्रायः एक सालतक चलता रहा। इसी बीच उन्होंने लिखनेका अभ्यास किया। प्रेमचन्दने स्वयं लिखा है कि 'वहीं मुझे लिखनेका भी शौक़ हुआ। मैं लिखता, फाड़ता, लिखता और फाड़ता। कभी-कभी मेरे पिताजी हुक्का पीते-पीते मेरी कोठरीमें आ जाते थे। जो कुछ मैं लिखकर रखता, वे देख लेते और पूछते—'नवाब, कुछ लिख रहे हो?' मैं शर्माकर गड़ जाता। मगर इस विषयमें पिताजीको कोई दिलचस्पी न थी।'

'प्रेमचन्दकी १३ सालकी अवस्था रही होगी, हिन्दी जानते न थे। उर्दूके उपन्यास पढ़नेका उन्माद था। मौलाना शरर, पं० रतननाथ-शरशार, रुशवा, मौलवी मुहम्मद अलीके उपन्यासोंकी धूम थी, रेनाल्डके उपन्यासोंका भी उर्दू-में अनुवाद हो रहा था। वे भी लोक-रुचिको बहुत पकड़ रहे थे। प्रेमचन्दको इसका चस्का पड़ गया। उस समय वे गोरखपुरमें अपने पिताके पास थे। मिशन स्कूलकी आठवीं कक्षामें पढ़ते थे। वहाँ उन्होंने बुद्धिलाल नामक बुक-

१—प्रेमचन्दः एक अध्ययन—रामरतन भटनागर, पृ० १-२

सेलरसे दोस्ती कर ली। उसकी दूकानपर बैठकर उपन्यास पढ़ते, उसके यहाँसे पुस्तकें बेचकर कमीशनमें पुस्तकें घर ले जाते और पढ़ते। सैकड़ों उपन्यास पढ़ डाले।...कई वर्ष बीत गये, इतने उपन्यास पढ़े कि दिल उसमें रँग गया था। सन् १९०१ आ पहुँचा और उन्होंने उर्दूमें एक उपन्यास लिख डाला। उसका नाम 'प्रेमा' था। इसके बाद कई उपन्यास लिखे। अभी कहानियाँ लिखना आरम्भ नहीं हुआ था। सन् १९०७ आ गया। रवींद्रनाथकी कहानियोंकी धूम थी। उन्होंने इन्हीं रवीन्द्रकी कहानियाँ अँग्रेजीसे उर्दूमें अनुवाद करके छपवायीं। फिर ये मौलिक कहानियाँ भी लिखने लगे। १९०९में पाँच मौलिक कहानियोंका संग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित हुआ। इसमें सरकारी अधिकारियोंको 'सिडीशन-विद्रोह' दिखायी पड़ा।...सारी प्रतियाँ जला दी गयीं।'[1]

साहित्यके क्षेत्रमें प्रेमचन्द उर्दू-लेखककी हैसियतसे आये थे। हिन्दीमें कहानी-उपन्यास लिखनेकी प्रेरणा उन्हें हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत मन्नन द्विवेदीसे मिली। इसके अतिरिक्त श्रीयुत महावीर प्रसाद पोद्दारसे परिचय प्राप्त करनेपर उन्होंने हिन्दी साहित्यकी सेवा करनेका एकमात्र लक्ष्य बना लिया। 'सरस्वती' पत्रिकाने इनकी कहानियोंका स्वागत किया। प्रेमचन्दका सबसे पहला कहानी-संग्रह, हिन्दीमें, १९१५ में, प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका श्रीयुत मन्नन द्विवेदीने लिखी। 'उर्दूके उपन्यासकारोंने प्रेमचन्दको कथा-साहित्यका चस्का लगाया। रवीन्द्रने उन्हें नवोन्मेषसे परिपूर्ण किया, इनमेंसे अभी उन्हें अपनी कुञ्जी नहीं मिली थी।'[2]

२० वर्षतक हिन्दीमें कहानियाँ और उपन्यास लिखकर इन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की। 'मर्यादा', 'माधुरी' 'हंस' और 'जागरण' जैसी उच्चकोटिकी पत्रिकाओंका सम्पादन कर १९३६ में प्रेमचन्द अपने नश्वर शरीरको त्याग कर स्वर्गलोकको सिधारे। इनकी पत्नी श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्दने इनकी विशद् जीवनी लिखी है, जो पठनीय है।

---

१. प्रेमचन्द: उनकी कहानी-कला. पृ० ९,१०,११.

२. वही, पृ० १४.

रचनाएँ—प्रेमचन्दका सबसे पहला हिन्दी कहानी-संग्रह 'सप्तसरोज' नामसे निकला। इसके बाद क्रमशः निम्नांकित संग्रह जनताकी अधिकाधिक माँगसे निकलते गये—

१. सप्तसरोज
२. नवनिधि
३. प्रेम-पचीसी
४. प्रेम-पूर्णिमा
५. प्रेम-द्वादशी
६. प्रेम-तीर्थ
७. प्रेम-पीयूष
८. प्रेम-कुञ्ज
९. प्रेम-चतुर्थी
१० पंच-प्रसून
११. सप्त-सुमन
१२. कफन
१३. मानसरोवर, भाग १
१४. मानसरोवर, भाग २
१५. ,, ,, ३
१६. ,, ,, ४
१७. ,, ,, ५
१८. प्रेम-प्रतिमा
१९. प्रेरणा
२०. प्रेम प्रमोद
२१. प्रेम-सरोवर
२२. कुत्तेकी कहानी
२३. जंगलकी कहानी
२४. अग्नि समाधि
२५. प्रेम-पचीसी
२६. प्रेम-गंगा

साहित्यमें प्रेमचन्दका स्थान—हिन्दीमें कहानी-साहित्यका वास्तविक प्रारम्भ प्रेमचन्दसे होता है। प्रेमचन्दके पहले हिन्दीमें उपन्यास और कहानियाँ थीं अवश्य, पर उनके रूप सर्वथा भिन्न थे। इनके पहलेके गद्य-साहित्यमें तीन धाराएँ बह रही थीं और इन तीन धाराओंके तीन साहित्यिक नेता थे—१. देवकीनन्दन खत्री, २. किशोरीलाल गोस्वामी ३. गोपाल-राम गहमरी। सन् १९१६ ई० तक हिन्दी पाठकोंपर इनका जादू सिरपर चढ़कर बोल रहा था। १९०७ में प्रेमचन्द अपनी कहानियोंके साथ साहित्यमें आये; पहले उर्दूमें, फिर हिन्दीमें। इन्होंने देवकीनन्दन खत्रीके रोमान्टिक संसारको सामयिक जीवनका स्वरूप दिया; जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोंकी मार्मिक विवेचना की; कल्पित कथानक और रोमांचकारी घटनाओंके स्थानपर जीवन और जगतकी वास्तविकताका दर्शन कराया। हिन्दी

कहानीके क्षेत्रमें इन्होंने ही मौलिक कहानियोंकी सृष्टि की। प्रेमचन्दके पहले पाठकोंके मनोरंजनपर जरूरतसे ज्यादा ध्यान रखा जाता था। इसके विपरीत, प्रेमचन्दने जनताकी रुचिको उन्नत बनाने तथा उसमें सामयिक जीवनके अनुकूल नवीन संस्कार भरनेका अथक परिश्रम किया। इन्होंने ही प्रथम-प्रथम हिन्दी कहानियोंको सुन्दर साहित्यिक रूप देकर जनताकी रुचिको उन्नत किया। आज खत्रीजीके उपन्यासोंकी कोई पूछ नहीं है। हिन्दीके पाठकोंके पुराने दृष्टिकोणोंको बदलनेमें प्रेमचन्दका उतना ही हाथ है जितना आधुनिक भारतके राजनीतिक दृष्टिकोणमें परिवर्तन लानेका श्रेय महात्मा गाँधीको है। अतएव, प्रेमचन्द हिन्दी-कहानी तथा उपन्यास-साहित्यके प्रथम युगान्तरकारी साहित्यकार हैं जिन्होंने न केवल हिन्दी साहित्यमें मौलिकता और नवीनताका रस-संचार किया बल्कि जन-जीवनको प्रबुद्ध-शुद्ध और जागरूक बनानेका पूर्ण प्रयास भी किया जिसमें उन्हें पूरी सफलता भी मिली।

प्रेमचन्द 'मूक जनता' के प्रथम साहित्यकार हैं। भारतीय गाँवोंको ये शब्दका प्रतीक मानते थे। इस देशके ८० प्रतिशत बेजबान ग्रामीणोंका जितना स्वाभाविक चित्रण प्रेमचन्दने किया है उसका एक अंश भी भारतीय साहित्यके किसी भी पुराने या नये साहित्यकारोंमें नहीं पाया जाता। इस क्षेत्रमें इनकी दृष्टि सर्वथा नवीन तथा मौलिक थी। भारतीय भाषाओंके बहुतेरे लेखकोंने प्रेमचन्दकी इस नयी दिशाका अनुकरण किया। प्रेमचन्दने जितनी सफाई, मार्मिकता और सहृदयतासे इन गाँवोंका चित्र उपस्थित किया है वैसा अबतक हिन्दीका कोई दूसरा लेखक नहीं कर सका। इस क्षेत्रमें प्रेमचन्द अद्वितीय हैं, भारतके एकमात्र प्रतिनिधि लेखक हैं। अबतकके कहानी-साहित्यमें वैभवके पुत्रोंको ही अपने साहित्यके पात्र बनाये जाते थे। ग्राम-साहित्य प्रस्तुत करनेकी ओर लेखकोंकी दृष्टि नहीं थी। प्रेमचन्द ही सबसे पहले हिन्दी-लेखक हैं जिन्होंने इतने बड़े पैमानेपर भारतके ग्रामीण-जीवनका इतना स्वाभाविक चित्रण किया। इनकी दृष्टिमें गाँव और नगरमें अविच्छिन्न सम्बन्ध है और इस सम्बन्धको जोड़नेका सफल प्रयास उन्होंने ही किया। महात्मा गाँधीके विशाल व्यक्तित्वसे प्रेरणा ग्रहण करनेवाले

इस लेखकने अपनी आधीसे अधिक कहानियोंमें ग्रामीण वातावरणको ही अपने साहित्यका आधार बनाया है। इस तरहकी कहानियाँ प्रेमचन्दके साहित्यकी अमूल्य निधियाँ हैं; उनके साहित्यिक जीवनकी कड़ी कमाई हैं।

"प्रेमचन्दके पहले हिन्दीकी गद्य-शैली अविकसित थी। द्विवेदीजीके प्रभावमें हिन्दी-गद्य-शैलीका परिमार्जन अवश्य हुआ था, पर उसमें निर्जीवता और शिथिलताकी प्रबलता तथा सरलता और स्वाभाविकताका अभाव था। भाषाकी ग्राहिका शक्ति परिमित थी, उसमें इतनी व्यापकता और उदारता न थी कि वह एक ओर तो उन्नत राष्ट्रोंके भावों और विचारोंको आत्मसात् करके उन्हें अपनेमें खपा सके और दूसरी ओर जीवन और जगत्की सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक अन्तर्वृत्तियोंका कलात्मक रहस्योद्घाटन कर सके।······हिन्दी साहित्यके इतिहासमें प्रेमचन्द सबसे पहले साहित्यिक हैं जिन्होंने उपयुक्त अभावोंको दूर किया।······भाषा और शैलीके क्षेत्रमें उन्होंने हिन्दी गद्यको बहुत कुछ दिया। हिन्दी गद्य-शैलीकी शिथिलता हटाकर उन्होंने उसे उर्दूकी सरसता मुहाविरेदारी और रवानी दी जिससे वह अधिक चुस्त और सुबोध बन गयी। जिस 'हिन्दुस्तानी' की समस्यापर इतना अधिक विवाद होता रहा है, उसका व्यावहारिक स्वरूप सबसे पहले प्रेमचन्दने ही हिन्दीमें दिखाया। सारांश यह है कि भाव और भाषा दोनोंके क्षेत्रमें प्रेमचन्दने हिन्दी-साहित्यको ऐसी भेंट दी है जिसके लिए वह शताब्दियोंसे तरस रहा था।"[१]

प्रेमचन्दका हिन्दी साहित्यमें उच्चतम स्थान तो है ही, उन्होंने संसारके कहानी-साहित्यमें भी एक उच्च स्थान बना लिया है। उनकी कहानियोंका अनुवाद देशकी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं—बँगला, गुजराती, मराठी, तामिल आदिमें तो हो ही रहा है, इसके साथ ही विश्वकी कुछ सभ्य भाषाओं—अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, डच और जापानीमें भी हुआ है। इससे उनकी उत्कट प्रतिभाका परिचय मिलता है।

प्रेमचन्दके पूर्व कथाकार नागरिक जीवनके उच्च वर्गसे ही कथानक चुनता था। उन्होंने समाजके निम्न स्तरके व्यक्तियोंको अपने साहित्यमें स्थान

१—कहानी-कला और प्रेमचन्द, निवेदन पृ, १—२

दिया। अछूतों और हरिजनोंकी करुण कहानी इनके साहित्यके बहुत बड़े भागपर छायी हुई है।

भारतेन्दुके बाद हमारे साहित्यमें प्रेमचन्द ही क्रान्तिकारी तथा युगप्रवर्त्तक लेखकके रूपमें आये इसमें कोई सन्देह नहीं।

कहानीकार प्रेमचन्द—"प्रेमचन्द उपन्यासकारके नाते तो महान् हैं ही, कहानीकारके नाते और भी महान् हैं। यह सच है कि पीछे चलकर उनका उपन्यासकार ही अधिक प्रकाशमें आया लेकिन पहले वह कहानीकार ही थे। इस क्षेत्रमें उनकी सफलता और लोक-प्रियता अद्वितीय है। वे कहानी-लेखन-कलाके अग्रदूत थे। उन्होंने लगभग ३०० कहानियाँ लिखीं, जिनमेंसे कई साहित्यकी अमर निधि हैं। उन्होंने कहानीको बिलकुल नया रूप दिया। वह पहले व्यक्ति थे जो सामग्रीके लिए गाँवोंकी ओर गये और जिन्होंने सीधे-सादे ग्रामीणोंके घटनाहीन जीवनको अपनी कहानियोंका विषय बनाया। उन्होंने इन सीधे-सादे धरतीके पुत्रों, क्लर्कों, और बड़े-बड़े व्यापारियोंके मामूली मुंशियोंके मनकी हलचलको व्यक्त किया। वे उनके संघर्षों-प्रलोभनों और कमजोरियों, उनकी आशाओं और आशंकाओं, उनकी सहज धार्मिकता और अन्ध विश्वासोंसे भलीभाँति परिचित थे। किसानका मन उनके लिए खुली पुस्तकके समान था।

प्रेमचन्द और कहानी-कला—"प्रेमचन्द विदेशी लेखकोंसे बहुत अधिक प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने साहित्यकी एक पृथक् विद्याके रूपमें कहानीके शिल्प-विधानके सन्बन्धमें अपना मत बनाया। उन्होंने कहानीके क्षेत्र और कार्यके सम्बन्धमें अत्यन्त उच्चकोटिके निबन्ध लिखे हैं। इन लेखोंमें प्रेमचन्दने कहानीके सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों रूपोंके सम्बन्धमें अपना निजी मत व्यक्त किया है। अतीत युगोंके साहित्यसे उसके जन्म और बिकासका इतिहास बतलाते हुए उन्होंने इस कहानी-कलाकी कुछ विशेषताएँ अपने कामके लिए निर्धारित कर ली थीं।··· प्रेमचन्द उपन्यास और कहानीको साहित्यकी दो पृथक्-पृथक् विद्याएँ समझते हैं। इसलिए आवश्यक है कि कहानीमें पेचीदा कथा-वस्तु, न रखें। यदि ऐसा होगा तो

कहानीका उद्देश्य नष्ट हो जायगा। चरित्र, कथा-वस्तु और वातावरणमेंसे एक तत्त्व प्रधान होता है और शेष उसके अधीन रहते हैं। प्रेमचन्दने यह अनुभव किया था कि उपन्यास उस वर्गके मनोरञ्जन और ज्ञान-वर्द्धनके लिए है, जिसके पास पर्याप्त अवकाश है। कहानी उस वर्गके लिए है जिसे जीवित रहनेके लिए घोर संघर्ष करना पड़ता है। प्रेमचन्द एक दूसरे लेखमें लिखते हैं कि अपने विकसित रूपमें कहानीका शिल्प-विधान पाश्चात्य लेखकोंके ग्रन्थोंसे लिया गया है। उन्होंने चेखव (Chechov) और मोपासांको सर्वश्रेष्ठ कहानीकार माना है। साहित्यकी इस नयी विद्याका प्रयोग सबसे पहले बंगाली लेखकोंने किया।''[१]

प्रेमचन्दके कहानी-सम्बन्धी अपने सिद्धान्तोंका सारांश निम्नलिखित है। डॉ०सत्येन्द्रने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्दः उनकी कहानी-कला'में इन सिद्धान्तोंको एक स्थानपर एकत्र कर दिया है और बताया हैं कि 'प्रेमचन्दके विविध समयके इन एकत्रित मतोंमें समयके अनुसार परिवर्तन दीखता है, जिसने घटनाको कहानीकी इकाई माना, आगे चलकर वही अनुभूतिको प्रधान बतलाने लगा, (प्रेमचन्दके शब्दोंमें, 'कहानीका आधार अब घटना नहीं' अनुभूति है)। पहले आदर्श और उपयोगिताको जो प्रधान समझ रहा था, बादमें वह मनोरञ्जन और मानस-तृप्तिको प्रधानता देने लगा। (प्रेमचन्दके शब्दोंमें, वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनोंमेंसे मनोरंजन और मानसिक तृप्तिमेंसे एक अवश्य उपलब्ध हो)। नीतिके स्थानपर सौन्दर्य-प्रेम हुआ (उन्हींके शब्दोंमें, 'उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं है वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहती है कि उसमें सौन्दर्यकी झलक हो और जिसके द्वारा वह पाठककी सुन्दर भावनाओंको स्पर्श कर सके) और आदर्शने आदर्श न रहकर 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' में परिणति पायी। इस भाव-विकासके अनुसार ही प्रेमचन्दकी विविध प्रकारकी कहानियाँ मिलती हैं।''[२] इसीके आधारपर डॉ० सत्येन्द्रने उनकी कहानियोंको तीन कालोंमें विभाजित किया

१. प्रेमचन्द—डॉ० इन्द्रनाथ मदन।
२. प्रेमचन्दः उनकी कहानी-कला पृ. २८-२९

है—१६०७ से १९२० तक प्रेमचन्दकी कहानियोंका आरम्भिक काल था, १६२० से १६३० तक उनकी कहानियोंकी विकासावस्था थी और १९३०से १६३६ तक उनकी कहानियाँ विकासोत्कर्षकी ओर उन्मुख हुईं। अन्तिम ६ वर्षोंमें उनकी आधीसे अधिक कहानियाँ लिखी गयीं। इन तीन कालोंकी कहानियोंकी शैली और कलाके विकासकी रेखाएँ स्पष्ट हैं। प्रेमचन्द प्रगतिशील कहानीकार थे। उनके विचार, भाव, शैली और कलामें क्रमशः परिवर्तन होते गये। इसका सारांश निम्नलिखित विचार-विन्दुओंमें दिया जाता है:—

१. "कहानीमें एक तथ्यता होती है, एक घटना, आत्माकी एक झलक, एक मनोवैज्ञानिक सत्यका प्रदर्शन, जो भी हो वह एक हो, विविध न हो।

२. "घटनाका स्थान अनुभूति ले सकती है, अनुभूतिवाली कहानियाँ ऊँचे दर्जेकी होती हैं।

३. "कहानीका आधार मनोवैज्ञानिक सत्य हो, यह सबसे उत्तम कहानी होती है।

४. "वह मनोरंजन करती है, पर उसमें मानसिक तृप्तिके लिए भावोंको जागृत करनेके लिए भी कुछ होता है।

५. "यह आवश्यक है कि कहानीका जो परिणाम या तत्व निकले वह सर्वमान्य हो और उसमें कुछ बारीकी हो।

६. "कहानीमें तीव्रता हो, ताजगी हो कुछ भी ऐसा न हो जो अनावश्यक कहा जा सके।

७. "कहानीकी भाषा बहुत ही सरस और सुबोध होनी चाहिये।

८. "कहानी घटना-प्रधान हो सकती है और चरित्र-प्रधान भी। पिछले प्रकारकी कहानियाँ उच्च कोटिकी समझी जाती हैं।

६. "घटनाएँ, पात्रोंकी मनोगतिसे स्वयं उद्भूत हों, वे प्रधानता न ग्रहण कर ले।" [१]

---

१. प्रेमचन्द: उनकी कहानी-कला।

प्रेमचन्दकी कहानियोंका अध्ययन उपरिलिखित विचार-विन्दुओंके आलोक-में करना चाहिए, तभी हम उनकी कहानियोंका वास्तविक आनन्द ले सकते हैं। हिन्दीके अपने कहानी-संग्रह 'मानसरोवर' के प्राक्कथनमें ,जो उनकी मृत्युके कुछ ही पहले छपा था, उन्होंने वर्तमान कहानीकी परिभाषा, विषय-क्षेत्र, कार्य और उसके स्वरूपकी जो मार्मिक व्याख्या की है वह अन्यत्र नहीं मिलती। वह इस प्रकार है—"कहानी जीवनके बहुत निकट आ गयी है, उसकी जमीन अब उतनी लम्बी-चौड़ी नहीं है। उसमें कई रसों, कई चित्रों और कई घटनाओंके लिए स्थान नहीं रहा। वह अब केवल एक प्रसंगका, आत्मा-की एक झलकका, सजीव स्पष्ट चित्रण है। अब उसमें व्याख्याका अंश कम, संवेदनाका अंश अधिक रहता है। उसकी शैली भी अब प्रवाहमयी हो गयी है। लेखकको जो कुछ कहना है, वह कम-से-कम शब्दोंमें कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रोंके मनोभावोंकी व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उनकी ओर इशारा भर कर देता है। अब हम कहानीका मूल्य उसके घटना-विन्यास-से नहीं लगाते। हम चाहते हैं, पात्रोंकी मनोगति स्वयं घटनाओंकी सृष्टि करे। खुलासा यह कि आधुनिक गल्पका आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान-की अनुभूति है।" श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के शब्दोंमें "आधुनिक गल्पकी इससे अच्छी परिभाषा आजका बड़ेसे बड़ा समालोचक भी नहीं दे सकता। अपने जीवनकी सन्ध्यामें प्रेमचन्दने जो कहानियाँ लिखीं, उनसे प्रकट होता है कि उन्होंने कहानी-कलाकी विवेचना ही नहीं की बल्कि उस कलापर पूरी उतरनेवाली कहानियाँ भी लिखी हैं। 'कफ़न' 'नशा' 'रसिक सम्पादक' 'मनोवृत्तियाँ' ऐसी ही कहानियाँ हैं।"

"प्रेमचन्द और उनकी कला' पर लेख लिखते हुए उर्दूके एक आलो-चक, श्री आगा अब्दुल हमीदने फरमाया है कि 'कहानीके सम्बन्धमें प्रेमचन्द-का दृष्टिकोण किसी कद्र पुराना है, यों कह लीजिये कि आधुनिक पश्चिमी कथाकारोंसे कदरे भिन्न है, वे कभी-कभी इस बातको भूल जाते हैं कि अना-वश्यक विस्तार और असंगत बातें कहानीको कितनी हानि पहुँचाती हैं।' इसका उत्तर देते हुए श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'हंस' में लिखा था कि 'यह

कहना कि प्रेमचन्द आधुनिक कहानीकी टेकनिकको नहीं जानते थे और उनका दृष्टिकोण पुराना है, यह प्रकट करता है कि आगा साहबने प्रेमचन्द-की इधरकी कहानियोंको पढ़ने और उनके दृष्टिकोणको जाननेका प्रयास नहीं किया। उनकी बहुत-सी कहानियाँ ऐसी हैं जो आधुनिक कहानीकी टेकनिक-पर पूरी उतरती हैं और उनमें कहानीके सब गुण मौजूद हैं। 'शतरंजके खिलाड़ी' 'गुल्ली डण्डा' 'कफन' कुछ ऐसी ही कहानियाँ हैं।' सच तो यह है कि प्रेमचन्द आधुनिक कहानीके स्वरूपको अच्छी तरह समझते थे। यही उनके 'मानसरोवर' में दिये 'प्राक्कथन' से प्रकट होता है। यह गौरव प्रेम-चन्दको ही है जिन्होंने एक साथ दो भाषाओंमें आधुनिक कहानी-कलाको जन्म दिया। उर्दू और हिन्दी भाषाओंमें प्रेमचन्दका समान स्थान है।

प्रेमचन्दकी कहानियोंका वर्गीकरण—यों तो प्रेमचन्दकी कहा-नियोंका वर्गीकरण भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे किया जाता है लेकिन सामूहिक रूप-से हम उनकी कहानियोंको दो भागोंमें बाँट सकते हैं। "एक तो चरित्र-प्रधान कहानियाँ हैं जिनमें लेखक किसी मनुष्यके जीवनकी महत्त्व-पूर्ण घटनाका वर्णन करता है और दूसरी कथा-प्रधान कहानियाँ हैं, जिनमें वह जीवनके मनोवैज्ञिक सत्यको प्रकट करनेके लिए कुछ घटनाएँ चुनता है। उन्होंने दोनों प्रकारकी बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं जिनमें उनका उद्देश्य सामाजिक रहा है। अपनी प्रारम्भिक रचनाओंमें उन्होंने चरित्र-चित्रणकी अपेक्षा कथा-वस्तु-पर विशेष ध्यान रखा है। इन कहानियोंमें घटनाओं और प्रसङ्गोंकी शृंखला पात्रों और विचारोंको घेरे हुए है। सामाजिक ध्येयकी ओर संकेत नहीं किया गया है वरन् उसे प्रकट कर दिया गया है। इस प्रकारकी कहानियोंमें 'प्रतिकार' 'माताका हृदय'. 'स्वर्गकी यात्रा', 'सत्याग्रह', 'नरकका मार्ग', 'दिवाला' उल्लेखनीय हैं।

"दूसरे प्रकारकी जो कहानियाँ प्रेमचन्दने लिखी हैं, उनमें पात्र और कथा-वस्तुपर विचारोंकी प्रधानता दी गयी है। इनका उद्देश्य सामाजिक है। वे सामाजिक उद्देश्यको लेकर लिखते थे और उन्होंने कहानीको उन्नति और सुधारका साधन बनाया।...उनकी आरम्भिक कहानियोंमें जो सुधार-भावना

थी, उसे वे अन्ततक नहीं छोड़ सके। उदाहरणके लिए 'उद्धार', 'नैराश्य', 'कायर' 'नशा' आदि।"[१]

आज विचारोंके युगमें प्रेमचन्दकी कहानियोंका वर्गीकरण कथानक, चरित्र, वातावरण इत्यादि शिल्प-विधानोंको ध्यानमें रखकर नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द एक कलाकार थे। उनकी कहानी-कलाकी आलोचना सामूहिक रूपसे होनी चाहिये। उनकी कलाका अध्ययन उनके जीवनकी मानसिक परिस्थितियों तथा सामयिक जीवनकी सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियोंका विश्लेषण करके होना चाहिये। तभी हम कलाकार प्रेमचन्दके अन्तस्तलतक पहुँचनेका साहस कर सकेंगे। डॉ० इन्द्रनाथ मदनने ठीक ही लिखा है कि "प्रेमचन्द यदि महान् हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानोंके मानसिक गठन और मध्यवर्गके दृष्टिकोणको उस समय अत्यन्त विश्वास और उत्साहके साथ वाणी दी थी जिस समय इस देशके सामाजिक और राजनीतिक जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे।...१९०५ से १९३६ का युग, जिसमें प्रेमचन्दने साहित्यका सृजन किया, सामन्तशाहीके आभिजात्यमें बदलनेका संक्रान्तिकाल था।" जब लेखकके विचार बदलते हैं तब उसकी भाषा-शैली और टेकनिकमें परिवर्तन हो जाते हैं। प्रेमचन्द प्रगतिवादी नहीं, प्रगतिशील कहानीकार थे। अब हम यहाँ संक्षेपमें उनकी कहानी-कलाका अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

प्रेमचन्दकी कहानी-कला—प्रेमचन्दकी कहानी-कलाकी सबसे बड़ी विशेषता है आदर्श और यथार्थका उचित समन्वय। अधिकांश कहानियोंमें इसका समुचित निर्वाह किया गया है। 'उपन्यास' शीर्षक निबन्धमें प्रेमचन्दने लिखा है कि 'जहाँ यथार्थ और आदर्शका साथ-साथ समावेश मिलता है, वही उच्च कोटिकी रचना है और उसे हम आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते हैं। आदर्शको सजीव बनानेके लिए यथार्थका समावेश होना चाहिये।' प्रेमचन्दकी दृष्टिमें कहानीका उद्देश्य नैतिक पतन नहीं वरन् नैतिक उत्थान करना है। पश्चिमका यथार्थवाद और भारतका आदर्शवाद, दोनोंका संतुलित सामञ्जस्य

---

१ प्रेमचन्द: डॉ० इन्द्रनाथ मदन

उनकी कहानियोंमें हुआ है। अपने चरित्रोंका यथातथ्य चित्रण करते हुए उन्होंने उनकी समाप्ति आदर्शात्मक ढंगसे की है। प्रेमचन्दका यह स्वरूप लगभग उनकी सभी कहानियोंमें पाया जाता है। पाश्चात्य कहानीकारों जैसे मोपांसा, ज़ोला, गोर्की और बालज़कको तरह वे जीवनका नंगा चित्र खींचकर नहीं रख देते वरन् उनपर आदर्श जीवनका गहरा रंग भी छोड़ देते हैं। उनकी समस्त कहानियोंमें समस्याका समाधान निकालकर रख दिया जाता है। प्रेमचन्दका व्यक्तिगत विश्वास था कि प्रत्येक कहानीमें एक ऊँचा नैतिक सन्देश होना चाहिये। ऐसा न करनेसे समाज तथा साहित्यका कोई लाभ नहीं होगा और समाज पथ-भ्रष्ट हो जायगा। यह सच है, जैसा कि पश्चिमवाले मानते हैं कि जीवनमें सदा रामकी ही रावणपर विजय नहीं होती, कभी-कभी दैनिक जीवनमें रावणकी भी रामपर विजय होती है। इसके उत्तरमें प्रेमचन्दका कहना है कि 'यदि साहित्यमें भी रामपर रावणकी विजय दिखायी जायगी तो इसका परिणाम कितना अनर्थकारी होगा? धर्मात्मालोग धर्म करना छोड़ देंगे, लोग नास्तिक हो जायँगे। समाजका नैतिक पतन हो जायगा।' 'नमकका दारोगा', 'परीक्षा', 'पशुसे मनुष्य', 'पञ्च परमेश्वर', 'दो बहनें', 'बड़े घरकी बेटी' आदि इनकी सफल आदर्शात्मक कहानियाँ हैं। इन कहानियोंमें कहानीकी कलाको उपयोगिताकी तुलापर तौला गया है।

प्रेमचन्दका उपर्युक्त विश्वास बहुत दिनोंतक टिका न रह सका। मैं अन्यत्र कह आया हूँ कि प्रेमचन्द्रकी धारणाएँ सदैव बदलती रही हैं। विचारोंके साथ उनकी कहानी-कलाका भी विकास होता रहा है। १९३० से १९३६ के बीच उन्होंने जितनी कहानियाँ लिखीं, वे आरम्भिक कहानियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। डॉ० सत्येन्द्रका भी कहना है कि इस अवस्था (१९३० के बाद) की कहानियाँ न आचरणकी कहानियाँ कही जा सकती हैं, न आचरणकी प्रेरणा (motive) अथवा आचरणकी व्याख्याकी।.... अब कहानियाँ अन्तरका संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करती हैं।'[1] प्रेमचन्दने

---

१. प्रेमचन्द–उनकी कहानी-कला, पृ० १७८

'मानसरोवर'की भूमिकामें लिखा है कि 'खुलासा यह है कि गल्पका आधार अब घटना नहीं मनोविज्ञानकी अनुभूति है।'

'मनोविज्ञानकी अनुभूति' प्रेमचन्दकी कहानी-कलाकी दूसरी विशेषता है। इनकी आधेसे अधिक कहानियाँ १९३० के बाद ही लिखी गयीं, जिनमें उन्होंने मनोवैज्ञानिक चरित्रोंकी सृष्टि करनेकी चेष्टा की है। 'प्रेम-पीयूष'की भूमिकामें उन्होंने लिखा है कि 'मनुष्य जातिके लिए मनुष्य सबसे विकट पहेली है, किसी-न-किसी रूपमें वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मनोरहस्य खोला करता है। वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषणको अपना ध्येय समझती है और सबसे उत्तम वह कहानी होती है जिसका आधार किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक सत्यपर हो।' प्रेमचन्द जब व्यक्ति-जीवनके 'किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक सत्य'की खोज करने लगे तब वे धीरे-धीरे आदर्शवादकी आतिशबाजीसे दूर रहने लगे और उनकी ऐसी कहानियाँ बहुत अधिक पसन्द की गयीं। इस प्रकारकी कहानियोंमें 'शतरञ्जके खिलाड़ी', 'कफन', 'सत्याग्रह' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें उन्होंने जीवनका यथार्थ चित्रण किया है। इन कहानियोंमें यह दिखलाया गया है कि जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोंके वात्याचक्रमें पड़ जानेपर व्यक्तिकी अन्तर्वृत्तियोंकी क्या स्थिति होती है। प्रेमचन्द इस तरहकी स्थितियोंसे पूर्णतया परिचित थे। इस मानसिक संघर्षका उन्होंने कहीं-कहीं बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है, जैसे 'सोहागका शव', 'बड़े भाई साहब', 'आत्माराम' आदि कहानियोंमें। डॉ० भटनागरके शब्दोंमें उन्होंने मनोविज्ञानका आश्रय कई प्रकारसे लिया है—शैली, वर्णनके ढङ्ग, उपमा, कथोपकथन, कथानक, इन सभी अङ्गोंको वे मनोविज्ञानसे पुष्ट करते चलते हैं।'[1]

हिन्दीके समर्थ आलोचक श्री प्रकाशचन्द्र गुप्तने अपने एक लेखमें प्रेमचन्दको 'मनोविज्ञानके कुशल आचार्य' माना है। प्रो० प्रभाकर माचवेके शब्दोंमें यह कहा जायगा कि 'प्रेमचन्दजी हिन्दीमें मनोवैज्ञानिकता लानेवाले प्रथम प्रमुख रचनाकार माने जा सकते हैं परन्तु फिर भी मनोवैज्ञानिकता

१. प्रेमचन्दः एक अध्ययन, पृ० २०६–२०७

बहुत स्थूल अर्थमें प्रेमचन्दमें प्रयुक्त मिलती है।'[1] इस मतका समर्थन प्रो० श्रीपति शर्माने इन शब्दोंमें किया है--"प्रेमचन्द मनोविज्ञानके पूर्ण ज्ञाता नहीं थे, क्योंकि इनके पात्रोंके मानसिक चित्रणमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं। ·· अपने पात्रोंकी मानसिक प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करते समय वे उनके मुखसे अपनी ही मनोवृत्ति और अपने विचारोंका प्रायः प्रकाशन करने लगते हैं। अतः उनकी कहानियोंमें अनेक पात्र काठके उस पुतलेके तुल्य हैं, जिसे लेखक अपनी उंगलियोंके सूत्रसे नचाता है। उनमें कोई निजी मौलिकता नहीं है।'[2] यह सब-कुछ होते हुए भी यह तो मानना ही होगा ,कि '२०वीं शताब्दीके पहले १५ वर्षोंकी कहानियोंमें केवल प्रसादकी कहानियोंको छोड़कर हम मनोवैज्ञानिक चित्रण कहीं भी प्रधान नहीं पायेंगे। प्रेमचन्दने ही पहले-पहल कहानीको मनोविज्ञानके स्पष्ट करनेका साधन बनाया और अपनी कहानियोंमें हर जगह मानव-प्रकृति और विश्वव्यापी नैतिक तत्त्वोंकी स्थापना की।'[3]

प्रेमचन्दकी कहानियोंकी कदाचित् सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने उनमें काफी सफलतापूर्वक स्थानीय रङ्ग (Local Colour) भरा है। उन्होंने जिस स्थान और समाजकी तसवीर खींचनेका प्रयत्न किया उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उनकी इस प्रकारकी कहानियाँ दो वर्गोंमें बाँटी जा सकती है—१. मध्यवर्गके नागरिकोंके घरेलू जीवनकी कहानियाँ। २. गाँवकी कहानियाँ। इनमें भी दूसरे वर्गकी कहानियोंको सबसे अधिक स्थान और प्रश्रय दिया गया है। प्रेमचन्दकी महानता इसलिए है कि उन्होंने अपने कहानी-साहित्यके द्वारा भारतके उस ग्रामीण-समाजके जीवनको स्फूर्ति दी 'जिसकी देह धूलसे भरी रहती है और ललाटपर श्रमकी बूँदें कभी सूखने नहीं पातीं, अत्याचार, उत्पीड़न एवं शोषणके बीच जिनके जीवनका आरम्भ और अन्त होता है, ऋणकी चिन्तासे भारग्रस्त मन लेकर जो शान्तिपूर्वक

---

१. साहित्य-सन्देश ,अक्टूबर १९४५

२. कहानी-कला और प्रेमचन्द, पृ० १२२–१२४

३. प्रेमचन्द: एक अध्ययन, पृ० २०७

मृत्युकी गोदमें अनन्त विश्राम भी नहीं ले सकते उन्हींके लिए अमर कलाकारने फूलोंकी माला गूँथी है और उनके गलेमें पहनायी है।...प्रेमचन्दने एक ओर यदि, जमीन्दारों, महाजनों, रईसों, सरकारी अफसरों और धर्मध्वजियोंके निष्ठुर लोभ, उद्धत अन्याय, दुर्विनीत अहङ्कार, मिथ्या दम्भ, दर्प एवं स्पर्धा तथा दैन्य एवं दारिद्र्यके बीच उनके ऐश्वर्य एवं विलासिताके हृदयहीन आडम्बरका यथार्थ चित्रण किया है वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अज्ञात एवं अख्यात असाधारण नरनारियोंके जीवनमें जो सरल धर्म-भीरुता, जो आदर्शनिष्ठा, जो सुषमा, जो माधुर्य उद्भासित होते रहते हैं उस ओर भी दृष्टि निक्षेप किया है।'[1] इस तरह हम देखते हैं कि प्रेमचन्दकी कहानियोंकी पटभूमि काफी व्यापक है। स्थानीय जीवनका स्वाभाविक चित्रण करनेमें ये अद्वितीय कहानीकार हैं। इस क्षेत्रमें ये अकेले ही हैं। इससे यह पता चलता है कि उनकी निरीक्षण-शक्ति कितनी सूक्ष्म और आश्चर्यजनक थी। अब हम यहाँ, संक्षेपमें, कहानीके उपादानों या तत्त्वोंके आधारपर प्रेमचन्दकी कहानियोंका अध्ययन करेंगे।

अपनी कहानियोंके कथानकोंमे प्रेमचन्दने भारतीय समाजके विभिन्न अंगोंको छूनेका भरसक प्रयत्न किया है। किसानकी टूटी-फूटी झोपड़ीसे लेकर नगरकी विशाल अट्टालिकाओंतकमें होने वाली घटनाओंको अपनी कहानीका कथानक बनाया है। समाजके इन व्यापक अंगोंको लेकर अपनी कहानियोंके कथानकमें विविधता लानेका प्रयत्न तो प्रेमचन्दने अवश्य किया, पर उसका सर्वत्र निर्वाह न कर सके, अर्थात् सभी कथानकोंको सफल कहानीके रूपमें परिणत न कर सके। प्रेमचन्दने कहीं-कहीं कथा-वस्तुके चयनमें अपने रूढ़िवाद और उपदेशात्मकताकी छाप लगा दी है। इसी कारण कथावस्तु यथातथ्य और स्वाभाविक न होकर अस्वाभाविक हो गया है। उदाहरणार्थ, देहातियोंको सरल, निष्कपट भावका दिखाना तो उचित है, परन्तु सब जगह उन्हें धर्मका पुतला ही बताना ठीक नहीं है। देहातोंमें भी बहुतसे किसान बेईमान, दुष्ट और नीच होते हैं और शहरोंमें भी बड़े-बड़े धर्मात्मा और

---

१. साहित्यकी वर्तमान धारा, पृ० १७४–१७६

सिद्धान्तवादी। उदाहरणके लिए 'दो बैलोंकी कथा', 'अधिकार' आदि कहानियोंमें पशुओंको मनुष्योंसे भी अधिक विचारशील और बुद्धिमान् बनाकर कहानीकी कथा-वस्तुको अत्यन्त अस्वाभाविक बना दिया है। इस प्रकार प्रेमचन्द पहलेसे ही अपना ध्येय निश्चित कर लेते हैं और उसीके अनुसार कथा-वस्तुको तोड़-मोड़ लेते हैं, उसका परिणाम यह होता है कि कहीं-कहीं कथा-वस्तु कल्पित और अस्वाभाविक हो जाती है।'[1]

कथानकका समुचित निर्वाह करनेमें प्रेमचन्दको सफलता नहीं मिली है। इसका कारण यह है कि कहानीमें अनेक पात्रोंका समावेश तथा जीवनके विविध रूपोंका वर्णन होनेके कारण कथा-वस्तुका मूल सूत्र टूट-फूटकर इधर-उधर बिखर जाता है और इस तरह 'प्रभावकी एकता (Unity of impression) जाती रहती है। संकलन त्रय (three unities–unity of time, unity of place & unity of Impression) का सम्मिलित प्रभाव उनकी बहुत कम कहानियोंमें पाया जाता है। यह कहानीके लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन प्रेमचन्दने कहानीकी कथावस्तुकी अपेक्षा चरित्र-चित्रणपर अधिक बल दिया है। उनकी प्रारम्भिक कहानियोंका कथानक बहुत शिथिल और लचर है। लेकिन ज्यों-ज्यों उनकी दृष्टि 'किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक सत्य'के उद्घाटनकी ओर जाने लगी त्यों-त्यों उनकी कहानियोंका कथानक सबल और सशक्त होने लगा। उनकी कथा-वस्तुमें कहीं भी अश्लीलता नहीं' आने पायी है और स्थानीय स्वरूपका सूक्ष्म-पर्यवेक्षण हुआ है।

प्रेमचन्द, प्रधान रूपसे, कथाकार न होकर चरित्रोंके चितेरा हैं। इस कलामें उनकी कलमको कमाल हासिल है। इस क्षेत्रमें उनकी प्रतिभा अद्वितीय है। वे मानव-प्रकृतिके कलाकार थे। उन्होंने इसका कितना गहरा अध्ययन किया था, इसका प्रमाण उनकी कहानियाँ हैं। समाजके किसी भी वर्गका व्यक्ति क्यों न हो, उन्होंने उसका सजीव चित्रण किया है। राजकुमारोंसे लेकर भिखमंगोंतक, खानाबदोश जिप्सियोंकी शोख औरतोंसे लेकर भोले-भाले किसानोंतकका बड़ा ही मार्मिक और स्वाभाविक चित्र आँका है। प्रेम-

१. कहानी-कला और प्रेमचन्द, पृ० ७३-७४

चन्दने अपने प्रत्येक चरित्रको मनोविज्ञानकी तुलापर रखकर तौला है और जहाँतक हो सका है, उन्होंने उसके मानस-सागरमें उठती-गिरती ऊर्मियोंमें समाकर उसकी थाह लेनेकी चेष्टा की है। चरित्रोंकी सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियोंका मनोवैज्ञानिक वर्णन करनेमें प्रेमचन्द बड़े ही कुशल कलाकार हैं। जीवनकी उलझी परिस्थितियोंके बीच अपने पात्रोंको रखकर उनकी मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओंका उन्होंने बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। प्रेमचन्दकी कलम जितना दरिद्र किसानों, मजदूरों, शोषितों और पीड़ितोंका चित्रण करनेमें अपनी कार्य-कुशलताका परिचय देती है उतना दूसरे वर्गके पात्रोंके वर्णनमें नहीं। फटेहालों, कंगालों और निस्सहायोंका चित्रण करनेमें प्रेमचन्दको छोड़कर कोई भी दूसरा लेखक हमारे साहित्यमें नहीं है। यह सब-कुछ होते हुए भी उनके चरित्रोंके व्यक्तित्व स्वतन्त्र नहीं हैं। ये लेखकके इशारेपर नाचते हुए-से दीख पड़ते हैं। इसका कारण है लेखकका आदर्शवाद। प्रेमचन्दकी अन्तिम कहानियोंमें यह दोष दूर हो गया है।

प्रेमचन्दकी कहानी-कलाकी सफलताका बहुत बड़ा श्रेय कथोपकथन (Dialogue) को है। चरित्र-चित्रण और कथा-वस्तुके विस्तारमें इसका उपयोग किया गया है। उनकी प्रारम्भिक कहानियोंमें कथोपकथनकी अस्वाभाविकता पायी जाती है लेकिन बादकी कहानियोंमें इसका रूप बिखर गया है। प्रेमचन्दके कथोपकथनोंकी पहली विशेषता यह है कि जहाँ-जहाँ कथोपकथनका व्यवहार किया गया है वहाँ पात्रोंकी स्थिति और सुरुचिका पूरा ख्याल रखा गया है। वर्गगत कथोपकथन इसकी विशेषता है। दूसरी बात यह है कि इसके व्यवहारमें संयम और नियन्त्रणसे काम लिया गया है। आवश्यकतानुसार ही इसका उपयोग किया गया है। तीसरी बात यह है कि इनके कथोपकथनमें सुसम्बद्धता पायी जाती है। फिर भी यह कहना होगा कि इनके वार्तालाप कहानीकार 'कौशिक' जीके अपेक्षाकृत सफल नहीं हैं।

प्रेमचन्दकी कहानी-कला और उसकी लोक-प्रियताका सबसे बड़ा कारण है उनकी भाषा-शैली। भाषाकी सरलता, चलते मुहावरोंका प्रयोग तथा हास्य और व्यंग्यका सम्मिश्रित व्यवहार उनकी भाषा-शैलीकी कुछ खास बातें हैं।

जैनेन्द्र कुमार

(१९०५ ई०……)

सामान्य परिचय—श्रीजैनेन्द्र कुमारका जन्म १९०५ ई०में अलीगढ़के कौड़ियागंज मुहल्लेमें एक मध्यम श्रेणीके परिवारमें हुआ था। बाल्यावस्थामें ही इनके पिताका देहान्त हो गया था। इनकी प्राथमिक शिक्षा जैन पाठशालामें हुई। इनका बचपनका नाम आनन्दीलाल था। लेकिन जैन पाठशालामें इनका नाम 'जैनेन्द्र' रख दिया गया। तभीसे ये इस नामसे प्रसिद्ध हुए। फिर हस्तिनापुरके जैन गुरुकुल ऋषि ब्रह्मचर्याश्रममें सातवीं श्रेणीतक पढ़े। प्राइवेट मैट्रिक पास किया। फिर काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयमें दूसरे वर्षतक पढ़कर छोड़ दिया। जैनेन्द्रकी शिक्षा यहीं समाप्त हो गयी।

जैनेन्द्रने बताया है कि उन्हें लिखनेकी प्रेरणा दो स्रोतोंसे मिली। १—'अपने निकम्मेपनके परिणाम स्वरूप' २—नागपुरके एक मित्र मनचेहशाह रुस्तमजी अवारीके जेल जानेके परिणाम स्वरूप। लिखनेकी रुचिके सम्बन्धमें उनका कहना है कि रुचि तो अबतक नहीं है, वैसे सन् १९२९ में शायद कुछ लिखना हो गया। यों उससे पहले और बाद भी रुचिकी जगह अरुचि ही रही।… लिखनेके क्षेत्रमें मेरा अनधिकार प्रवेश हुआ। राज-मार्गसे मैं वहाँ नहीं पहुँचा। तैयारी नहीं थी, कुछ सीखा नहीं था, जाना नहीं था। ऐसी हालतमें सन् १९२९में 'परख' लिख गया।….खैर, पन्ने कुछ काले हुए और वे छप भी गये। तब आलोचकोंसे जबानी मालूम हुआ कि मैं तो उपन्यास लिख गया हूँ। लेकिन साफ है कि उस विषयकी कला अथवा विज्ञानसे मैं एक दम कोरा था। जैसा तब वैसा ही अब।'[१]

श्री जैनेन्द्रने अपने जीवनकी कुछ विशेष उल्लेखनीय घटनाओंके बारेमें बताया है कि 'मेरी जिन्दगी एकदम सामान्य है। चढ़ा भी नहीं कि कोई उतार हो। सामाजिक जीवनके निम्नभागमें रेंगता रहा हूँ और अब-तक नहीं जानता कि उड़ना कैसा होता है।' ये पंक्तियाँ जैनेन्द्रकी गरीबीकी सूचक

---

१. साहित्य-सन्देश, उपन्यास-अङ्क पृ० १८३.

हैं। हिन्दीके अधिकांश लेखकोंका जीवन इसी तरहका रहा है। जरा हिन्दीके इस महान् लेखक श्री जैनेन्द्र कुमारके घरकी हालत तो देखिये—१९४३ में डॉ० सत्येन्द्रकी देख-रेखमें पोद्दार कॉलेज, नवलगढ़के विद्यार्थियोंका एक दल जैनेन्द्रसे मिलने दिल्ली आया। 'उनके मकानके दरवाजेपर एक सज्जन मिले। सत्येन्द्रजीने पूछा—'जैनेन्द्रजी हैं?' 'जी नहीं, अभी डॉक्टरके यहाँ गये हैं—आते ही होंगे।' मकान-मालिकके घरके अहातेमें ही उनका छोटा-सा मकान है। जैनेन्द्रजी आये और बोले—आपलोग यहीं रहिये—स्वर्गमें इतने लोगोंको स्थान नहीं है। और हँसते हुए वे ऊपर चले गये। उनका लड़का दिलीप बीमार था। दो मिनटमें ही वे नीचे उतर आये और सीधे घासकी लॉनपर बढ़े जैसे पहलेसे ही तजवीज कर आये हों कि इन भोले आदमियोंको यहाँ बैठाना है। स्वयं बैठते हुए बोले—'आप लोगोंको यहाँ बैठनेमें एतराज तो न होगा?' यह है जैनेन्द्र जैसे ऊँची चोटीके हिन्दी कहानीकार-उपन्यासकारकी आर्थिक अवस्था जिनको हमारे पाठक और आलोचक हिन्दीका युगप्रवर्तक तथा क्रान्तिकारी लेखक कहते हैं। प्रेमचन्दको हमने मौखिक उपाधि, उपन्यास-सम्राट्-तो दे डाली थी लेकिन हमने उनके लिए क्या किया? जैनेन्द्रके इस कथन-'स्वर्गमें इतने लोगोंको स्थान नहीं है' में उनके जर्जर जीवनका व्यंग्य छिपा है। इससे यह व्यंजना निकलती है कि जैनेन्द्रका स्वर्ग केवल उन्हींके लिए उपादेय है, उन्हीं जैसा संतोषी जीव उसमें रह सकता है, दूसरा व्यक्ति वहाँ रहनेका साहस भी नहीं कर सकता। अन्दरसे जैनेन्द्र जितने महान् हैं, बाहरसे उनका जीवन उतना ही जर्जर म्रियमाण है। उनके होठोंपर मुस्कान है पर हृदयमें विकल वेदनाकी ऊर्मियाँ। हमारे अधिकांश लेखकोंका जीवन जैनेन्द्र जैसा होता है—भरपूर शिक्षा नहीं, पारिवारिक जीवन दयनीय, आर्थिक अवस्था जर्जर, बाहर-भीतरके जीवनमें महान् अन्तर।

जैनेन्द्रका व्यक्तित्व (Personality)—जैनेन्द्र एक असाधारण व्यक्ति हैं। 'हंस'में श्री 'विष्णु'ने उनके व्यक्तित्वका बड़ा ही सुन्दर रेखा-चित्र खींचा है। उन्हींके शब्दोंमें—'उन्हें दूरसे देखे तो बात जँचती है—यह

व्यक्ति सदा अपने अहम्‌में डूबा जान पड़ता है। अपने आसपासके वातावरण-को कुछ ऐसी नजरसे देखता है कि बताना चाहता हो—मैं सब-कुछ जानता हूँ, मुझे तुम्हारी चिन्ता नहीं है। लेकिन जैनेन्द्र अहंकारी आदमी बिलकुल नहीं है। केवल दार्शनिकताके कारण जो अलगाव उनमें आ गया है, वही अहंकार सा जान पड़ता है। पास जाकर देखें तो माथेकी उठी हुई रेखाओंके पीछे सरलता भरी पड़ी है। इतनी सरलता कि अचरज होता है। पर अपनी सरलताके प्रति जैनेन्द्र जागरूक हैं। इस कारण उनमें पूर्ण निरभिमानता नहीं आ पायी है। यानी जैनेन्द्रकी सरलता सँवारी हुई है, अटपटी नहीं। खद्दर-धारी यह व्यक्ति संयम और तपकी परीक्षामें जान-बूझकर आ बैठा है और अभीतक पास नहीं हो पाया है। पर पास होनेके लिए वह जी-जानसे प्रयत्नशील है।

'जैनेन्द्रका मूड दार्शनिक है। इसीसे उनके स्वभावमें भावनासे अधिक बुद्धिका दखल है। दार्शनिक बुद्धिवादने उन्हें बिल्कुल अकर्मण्य बना दिया है। सिरजनहारके प्रति इस व्यक्तिकी आस्था इतनी तीव्र है कि उसने अपने-को चारों ओरसे जकड़ा है। यह आस्था कड़वे करेलेपर नीम चढ़ेका काम करती है; परन्तु यह आस्था जीवनके प्रति उनके मोहको कम करती है और विश्वमें दिन-प्रतिदिन जागरूक मृगतृष्णासे उन्हें दूर रखती है। इसी कारण उन्हें कभी-कभी साधु हो जानेके दौरे पड़ा करते हैं। और यही स्वभाव उन्हें परिजनोंकी समष्टिमें घुल-मिल जाने नहीं देता। ईश्वरके प्रति आस्था होनेके कारण इनके बुद्धि-प्रधान स्वभावमें श्रद्धाका पूरा-पूरा समावेश है और भवि-तव्यताके पूर्ण भक्त होनेके कारण ये अभी साधु नहीं हो पाये हैं। यह जैने-न्द्रके विरोधी जीवन, आदर्श और व्यवहारका विश्लेषण है और संघर्षका मूल बीज है और इसी कारण वे परिवारके सभी नाते-रिश्ते कायम किये हुए हैं।

'इस व्यक्तिमें अद्‌भुत विरोधी भावनाओंका मेल है। यह मानते हुए कि जो कुछ हो रहा है ईश्वर करता है, वह इस होनेवाले हरएक कामका विश्ले-षण करना चाहता है। पर बहुत कम लोग जानते हैं कि यह बनना क्या चाहता है। टालस्टायके समान यह संघर्ष उन्हें ऊपर उठाये लिये जा रहा

है। इस व्यक्तिको जो कुछ करना है, उसको करनेमें भवितव्य और कर्त्तव्य दोनोंका मेल वह मानता है। इसी कारण वे उलझते हैं और अन्धेरेमें टकराते हैं। तब इनके अन्दर एक गोल गाँठ पैदा होती है। वे उसे खोलना चाहते हैं। यहीं वे कलाकार हैं और यहीं वे 'अहम्' में रत मानव। यह उनके अन्दर मानव-भावके भीतरका प्रतिबिम्ब है। परन्तु बहुत कम-ही लोग अपने अन्दरकी इस अवस्थाको पहचानते हैं। इस अवस्थाको पहचानकर जैनेन्द्र बहुत ऊपर उठते हैं पर अभी दिलमें भय मौजूद है, वह भय जो आनन्दके लिए घूमते हुए गोल चक्करमें बैठकर ऊपर उठते हुए आदमीके हृदयमें पैदा होता है।'

'दार्शनिक होकर भी जैनेन्द्रमें दार्शनिककी-सी अपने प्रति उदासीनता नहीं है। वह सदा अपने विषयमें सुननेको सजग है। प्रोत्साहन अन्दरसे मिलता है, यह मानकर भी वह बाहरके प्रोत्साहनकी अपेक्षा ही नहीं करता वरन् उत्सुक स्वागत करता है। अपने ऊपर किये गये दोषारोपणको वह हँसकर सुनता है—क्योंकि छातीके भीतर कहीं पीड़ा होती है और उसे वह प्रकट करना नहीं चाहता।'

'यह व्यक्ति उस मानवकी बहुत कुछ सच्ची मनोवैज्ञानिक स्थितिका प्रतीक है जो ऊपर उठना चाहता है। सच तो यह है कि उसकी सबसे बड़ी जागरूकता और दार्शनिकताने उन्हें एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक बना दिया है। गहरासे गहरा पैठनेकी उनमें शक्ति है। गाँधीजीके आत्ममन्थन और अहिंसाकी छाप भी उनपर बहुत है। इसी कारण जैनेन्द्रकी किसीके लिये दी गयी राय कड़वी होकर भी सौहार्द्रसे खाली नहीं है। जैनेन्द्र व्यक्तिको खराब नहीं कहते, उसके गुण और दोष ही उन्हें अच्छे-बुरे लगते हैं। यह व्यक्ति गाँधी-नीतिका समर्थक है और अपनी कमजोरियोंको जानता है। कटुता जैनेन्द्रके स्वभावमें नहीं है। अपने पथपर दृढ़ होकर वे सबके प्रति विनयी हैं। जैनेन्द्र व्यवहारमें खोखले हैं। उनकी दार्शनिकता, अकर्मण्यता और भवितव्यता उन्हें चारो-ओरसे बाँधे हुए है। घरसे बाहर निकलकर बाजारमें वे उलझनमें फँस जाते हैं और शङ्का पैदा हो जाती है। शङ्का पापाचारिणी होती है और

मनुष्यको बहुत नीचे गिरा देती है; पर सौभाग्यसे जैनेन्द्र बहुत कम बाहर निकलते हैं।

हिन्दी-साहित्यमें जैनेन्द्रका स्थान—'जैनेन्द्रके व्यक्तित्वमें जो अद्भुत संघर्ष और तप है, उसने उन्हें साहित्यमें बहुत ऊपर उठाया है। हिन्दीके वर्तमान धरातलपर उनका स्थान नहीं है, वह बहुत ऊपर है। व्यक्ति जब सब इन्द्रियोंको सिकोड़कर मस्तिष्कमें केंद्रित करके चलता है तब वह दार्शनिक बन जाता है। वहाँ वह केवल सोचता है।'इसी कारण जैनेन्द्र-की साहित्यिक प्रतिभामें एक अजीब दार्शनिक की-सी उलझन है। कभी-कभी वह इतनी जटिल हो जाती है कि पाठक उसको भेद नहीं कर पाता। 'कहीं पार नहीं, कहीं किनारा नहीं; आँखके ठहरनेका कोई सहारा नहीं।' लेकिन यह जटिलता जैनेन्द्रकी अपनी कलममें नहीं है, यह तो इसी दुनियाकी गड़-बड़ी है। सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत। समाज गलत। जीवन ही हमारा गलत है। साधारण पाठककी आँखें कभी इसे देखती नहीं। साधारण पाठकके जीवनमें संघर्ष ही कहाँ है जो वह साहित्यिक जैनेन्द्रको पाए। जो जीवनमें है, वही साहित्यमें है। तभी जनताको पहचानकर भी जैनेन्द्र जनता-से बहुत दूर हैं। पाठक उनमें श्रद्धा नहीं रखता। बल्कि रहस्य भरी दृष्टि-से एक बड़े प्रश्न वाचक चिह्न '?' के रूपमें देखता है।

'समाजमें जैनेन्द्रकी जो इकाई है, वह साहित्यमें भी बिखर पड़ी है। उसके शब्द, वाक्य, भाव और शैली—सब उनके अनोखे हैं। उनके पीछे उनका अपना 'अहम्' डटा खड़ा है। जैनेन्द्रके स्वभावमें साहित्यिकता कूट-कूट कर भरी है और उनके भीतर लिखनेका खजाना भरा पड़ा है पर वह निरा अकर्मण्य है निठल्ला पड़ा रहना उन्हें बहुत सोहाता है। तभी उन्होंने शक्तिके अनुपातसे बहुत कम लिखा है। जैनेन्द्रकी बुद्धि नया सृजन करना चाहती है। संग्रह और अनुवाद इनके स्वभावके अनुरूप नहीं है। अध्ययनकी शक्ति भी जैनेन्द्रमें नहीं है। मस्तिष्कमें जो मौलिकता है, वह उन्हें कहीं भी भट-कने नहीं देती। वे निर्विवाद रूपसे एक मौलिक कलाकार हैं।

'जैनेन्द्र कलाको कलाके लिए या कलाको स्वप्न नहीं मानते, बल्कि उनके

लिए कला जीवनकी वस्तु है और वास्तविक है। इसी कारण ये साहित्यमें सदा जीवनके गूढ़ अङ्गोंका समावेश करनेका उद्योग करते रहते हैं। वे जीवनके गूढ़ तथा अद्भुत ताने-बानेको सुलझाना चाहते हैं, लेकिन पाठककी दृष्टिमें उलझते रहते हैं। वास्तवमें उनकी भाषाके पीछे जो 'अहम्' है उसे चीरकर कोई-कोई ही उसके भीतर पैठता है, हर एक नहीं। जो भीतर पैठता है, वही शान्ति पाता है। दूसरे लोग तो अशान्ति मोल लेकर उन्हें कोसते हैं। जैनेन्द्रमें श्रद्धा और तर्क दोनो हैं, इसी कारण उनके साहित्यमें तार्किकका क्रम कम है; उलझन है। कहानी कहना इस व्यक्तिका उद्देश्य नहीं है, वह तो साधन-मात्र है। मूलमें तो यह व्यक्ति मानव-जीवनकी गुत्थियोंको ही सुलझाना चाहता है।

'जैनेन्द्रकी व्यावहारिक अकर्मण्यताके पीछे विचारोंका नित नया सृजन है। समाजके मनोवैज्ञानिक अध्ययनके कारण जवानीमें बूढ़ोंकी-सी क्रियाशीलता है। शब्दोंके बेजोड़से लगनेवाले ताने-बानेके पीछे स्पष्ट और सरल विचार हैं। वह अपने मस्तिष्कमें दुनियाको खूब जानता है, पर दुनिया उसे नहीं जानती। उनके विचार कईके दिलोंको छेद देते हैं। कई उन विचारोंको सन्देह-भरी दृष्टिसे भूलभुलैयाकी तरह देखते हैं। उन विचारोंमें वह आग है जिसपर अभी राख पड़ी है और जिसपर पैर पड़ते ही मन्द दृष्टिका पाठक चीख उठता है। उस चीखमें आग अपना मूल्य खो बैठती है और जैनेन्द्र पाठककी श्रद्धा पानेसे वंचित रह जाते हैं। हिन्दीके लिए जैनेन्द्र देन हैं।'

कहानी-साहित्यमें स्थान—पिछले एक हजार वर्षके हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें जैनेन्द्र-जैसे अद्भुत पर सीधे लेखकका दर्शन कभी हुआ ही नहीं। वास्तवमें ये हिन्दीके एक 'अद्भुत लेखक' हैं। इसलिये किसीकी दृष्टिमें ये आचारके पोषक हैं, किसीकी दृष्टिमें एक महान् कलाकार; किसीके लिए ये 'अनाकांक्षित शृङ्गारक' तथा 'अनाचार'के प्रचारक हैं, और किसीके लिए कलाके विदूषक। प्रेमचन्द और जैनेन्द्रकी तुलना करते हुए प्रो० नलिन विलोचन शर्माने ठीक ही कहा है कि "प्रेमचन्द और जैनेन्द्र दोनों हिन्दीके ऐसे कहानीकार हैं, जैसे हुए नहीं, हैं भी नहीं, होंगे तो जरूर ही, होने ही चाहिये।[1]"

---

१. दृष्टिकोण—'प्रेमचन्द और जैनेन्द्र' शीर्षक लेखमें।

श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्तने भी उचित ही कहा है कि "जैनेन्द्रके हिन्दी कहानी-साहित्यमें आ जानेसे शरद और बंकिमका अभाव अब नहीं खटकता।" विचारककी हैसियतसे जैनेन्द्र बर्ट्रण्ड रसेल (Bertrand Russel) हैं और कहानीकारकी दृष्टिसे रूसी कहानीकार दस्तयोवस्की (Dasteovasky)। १६२० के बाद हिन्दी-कहानी-साहित्यके रूपमें आमूल परिवर्तन लानेका एकमात्र श्रेय श्री जैनेन्द्र कुमारको है। यद्यपि तबतक श्री बेचन शर्मा 'उग्र' श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री इलाचन्द जोशी जैसे उच्च कोटिके कहानी-लेखक हमारे साहित्यमें आ गये थे लेकिन इन सबमें जैनेन्द्रका स्वर सबसे ऊँचा है। 'उग्र' उल्कापातकी तरह आये और चले गये, जोशीजी अपनी बनायी रेखाओं-पर आज भी चल रहे हैं। पर जैनेन्द्र हिमालय जैसे अडिग और अडोल पर्वतकी तरह आज भी वहीं हैं जहाँ वे आजसे कई वर्ष पहले थे। प्रो० प्रभाकर माचवेके शब्दोंमें "हिन्दीके घटना-प्रधान कथा-साहित्यको पात्र-प्रधान बनानेका श्रेय जैनेन्द्रको ही है। पात्र भी दो-ही-चार चुनकर उनके अन्तर्द्वन्द्वोंमें पैठनेकी शैली हिन्दीमें अपने ढंगकी एक ही है। उनके बादके सभी कहानीकारों तथा उपन्यासकारोंने कम-अधिक परिमाणमें उसे ग्रहण किया है।"[1]

'जैनेन्द्र', श्री इलाचन्द जोशीके शब्दोंमें, 'वास्तविक अर्थमें हिन्दीके प्रमुख मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्यकी निर्जीव, औपन्यासिकतामें, (जिसमें या तो किसानों तथा जमीदारोंके बीच संघर्ष दिखानेवाले निर्जीव कठपुतलोंका खेल दिखाया जाता था, या काव्य-जगत्के अवास्तविक जीवोंके स्वर्गीय प्रेम'का स्वाँग भरा जाता था) सप्राण और अन्तरसंघर्षशील पात्रोंकी सजीवता भर दी।'[2] श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीने मनोवैज्ञानिक अध्ययनकी दृष्टिसे प्रेमचन्दसे जैनेन्द्रतकके क्रम-विकासका स्वरूप इस प्रकार स्थिर किया है—"पहले सत्-असत् अलग-अलग व्यक्तित्वोंमें विभक्त था, एक पात्र अच्छा रहता था दूसरा पात्र बुरा; यथा, प्रेमचन्दके साहित्यमें। यथार्थवादी चित्रणमें सत्-असत्का वर्गीकरण टूट गया, सिर्फ असत्की अनेक विकृ-

---

१. साहित्य-संदेश, अक्टूबर, १९४५, २. साहित्य-संदेश, अक्टूबर १९४४, पृ० १९७,

तियोंको ही बहिर्मन और अवचेतन मनका युगल धरातल मिल गया; यथा, उग्रके साहित्यमें। आदर्शवादकी ओरसे जैनेन्द्रजीने यथार्थवादको एक मनोवैज्ञानिक नवीनता दी। उन्होंने सत्-असत्को एक ही व्यक्तित्वमें स्थापितकर दोनोंकी सार्थकता दिखलायी।... पूर्ण आदर्श और पूर्ण यथार्थ (प्रेमचन्द-उग्र) को एकत्रकर जैनेन्द्रने दोनों युगोंको भी एकत्र कर दिया है। यथार्थवादियोंकी अपेक्षा उनकी अभिव्यक्ति अधिक आधुनिक है।"[१]

इसके अतिरिक्त "जैनेन्द्रने शरद्की दिशामें एक नवीन प्रयोग किया। शरद्-साहित्यमें नारी शान्त है; यथा, पार्वती और सावित्री; पुरुष उत्क्रान्त हैं, यथा, देवदास और सतीश। असलमें नारी और पुरुषके दो व्यक्तित्व नहीं, बल्कि एक ही व्यक्तित्वकी दो परिणतियाँ हैं; नारीकी अशान्ति पुरुषके जीवनमें साकार है, पुरुषकी शान्ति नारीके जीवनमें। इन दोनों परिणतियोंको एकमें मिलाकर जैनेन्द्रने नारीको उत्क्रान्त शान्त बना दिया, यथा, 'कल्याणी' और 'त्यागपत्र' में। (जैनेंद्रकी 'पत्नी' शीर्षक कहानीकी सुनन्दा इसी प्रकारकी नारी है।) जीवनकी दो भिन्न परिणतियोंमें शरदकी नारी मानो कहती है—'तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति प्रेम-जंजीर।' किन्तु जैनेन्द्रकी नारी जीवनकी अभिन्न परिणतिमें कह सकती है—"वन्दिनी बनकर हुई मैं, बन्धनोंकी स्वामिनी-सी"[२]।—जैनेन्द्र प्रधानतः एक मनोविश्लेषक हैं। प्रेमचन्दने इनके बारेमें ठीक ही कहा है कि 'जैनेन्द्रमें अन्तःप्रेरणा और दार्शनिक-संकोचका संघर्ष है, इतना हृदयको मसोसनेवाला, इतना स्वच्छन्द जैसे बन्धनोंमें जकड़ी हुई आत्माकी पुकार हो।' 'पत्नी' कहानीकी सुनन्दा इसी प्रकारकी 'आत्मा' है। जैनेन्द्रके बाद हिन्दी मनोवैज्ञानिक साहित्यके सृजनमें श्री 'अज्ञेय'ने ही इस धाराको उन्मुख किया तथा विकास-पथ दिया। 'अन्तस्तलके उद्वेलित तरंगाकुल प्रदेशका जैसा मार्मिक तथा सजीव चित्रण' इस लेखकने किया है वैसा पहले कभी हुआ ही न था। अतः मनोविज्ञान जैनेन्द्रके साहित्यका मेरुदण्ड है।

जैनेन्द्रका कथा-साहित्य नितान्त नवीन है, उसमें मौलिकताकी अतिशयता है। आलोचक गंगाप्रसाद पाण्डेयने इनके साहित्यके सम्बन्धमें एक बड़े ही मार्केकी बात बतायी है। वह यह कि "सामाजिक विश्वास (आदर्श) को

१. सामयिकी पृ० २६२-६३; २. सामयिकी, पृ० २६३,

व्यावहारिकता (यथार्थ) देनेके लिए, हिन्दी कथा-साहित्यमें, प्रथम बार, जैनेन्द्रने व्यक्तिके माध्यमसे उसका अध्ययन करनेकी चेष्टा की। समाज सुधारकोंद्वारा समाजकी जिन कुप्रथाओंको दूर करनेकी चेष्टा बंगालसे प्रारम्भ हुई थी उसे हमारे समाज और साहित्यने अपना रखा था। प्रेमचन्दके सामाजिक-संघर्ष और उनके सुधारोंकी योजनाका भी स्वरूप कुछ वैसा ही है। जैनेन्द्रने व्यक्तिका संघर्ष समाजके प्रति सचेत किया। शरदकी भाँति प्रेमचन्दने पारिवारिक जीवनकी झाँकी दी और उसे भारतीय संस्कृति, सौन्दर्यसे सजाया किन्तु जैनेन्द्रने फ्रायड (Freud) की भाँति व्यक्तिका मुक्त (निरावरण) रूप समाजके सामने रखा।''[1] हिन्दी-कहानी-साहित्यमें यह एक नयी बात हुई। जैनेन्द्रके सभी प्रश्नोंके मध्यमें भारतीय नारी होती है। संघर्षशील पात्र होनेके कारण इनकी कहानियाँ सुखान्त और दुःखान्त न होकर प्रश्नान्त होती हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि उन्होंने व्यक्तिके माध्यमसे वर्तमान समाजकी दुरवस्था और उसके दूषणोंका विश्लेषण किया है। जहाँ प्रेमचन्दके साहित्यमें समाजका संघर्ष व्यक्तिके प्रति दिखाया गया है वहाँ जैनेन्द्रने व्यक्तिका संघर्ष समाजके प्रति दिखालाया है।

वर्तमान हिन्दी-लेखकोंमें जैनेन्द्र ही एक ऐसे लेखक हैं जिनकी भाषाको देखनेपर पता चलता कि उनकी कहानियोंकी भिन्न कथाकी तरह उनकी भाषा भी भिन्न तरहकी है। इसमें स्वाभाविकता और सजगता है। भाषा भावकी अनुगामिनी है। भाषाकी कट्टरता तथा एकरसता जैनेन्द्रमें नहीं पायी जाती।

जैनेन्द्रका जीवन-दर्शन—साधारण पाठकोंको जैनेन्द्रके साहित्यमें चटकीले मनोरञ्जनका अभाव खटकता है। इसलिए कुछ लोगोंने इन्हें नीरस और शुष्क दार्शनिक कहा है। डॉ० भटनागरका कहना है कि "जैनेन्द्रकी कहानियोंमें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। कदाचित् यही व्यक्तित्व। और (कठिन गम्भीर व्यक्तित्व) उनके जनताके समीप पहुँचनेमें बाधा डाल रहा है।'' इसका एक मात्र कारण उनकी बोझिल दार्शनिकता है। उनके जीवन-दर्शनको न समझनेके कारण ही साधारण पाठकको निराश होना

---

१. **आधुनिक कथा साहित्य, पृ० ८९,**

पड़ता है। इसलिए उनके कहानीकारका अध्ययन करनेके पहले इस बातकी आवश्यकता है कि हम उनके दार्शनिकको समझें। प्रत्येक लेखकका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। ऊपर मैं बता आया हूँ कि उनका व्यक्तित्व महान् होते हुए भी अद्‌भुत है और अद्‌भुत इसलिए है कि साधारण पाठक उस ऊँचाई (व्यक्तित्वकी ऊँचाई) तक पहुँचनेमें अपनेको असमर्थ पाता है। जैनेन्द्रकी दार्शनिकता उनकी कमजोरी भी है और शक्ति भी। उन्होंने स्वयं कहा है कि 'मेरी एक कमजोरी है। उससे मैं तंग हूँ। पर वह मुझसे छूटती नहीं है। मूर्ख (साधारण पाठक) जानना चाहता है और मेरे साथ मूर्खता लगी है कि मैं जानना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि जाना जर्रेको भी नहीं जा सकता है। अणुमें विश्व है और जानकार कब कोई किसीको चुका सका है? इससे बुद्धिमान जाननेसे अधिक पाना चाहते हैं। पानेकी मुझमें शक्ति नहीं इससे जाननेको ललचता हूँ।' यहाँ भी आप दार्शनिक और उलझी बातें पायेंगे। जैनेन्द्र ज्यों-ज्यों जीवनको 'जानने' के लिए ललचते गये त्यों-त्यों पाठक उतना ही उलझता गया। मैं यहाँ बतानेकी चेष्टा करूँगा कि जीवन और जगत्‌के साथ लेखकका सम्बन्ध क्या है और वह जीवनको किस दृष्टिसे देखता है। इन बातोंका सविस्तार विवेचन स्वयं जैनेन्द्रने 'साहित्य सन्देश'के संचालक श्री महेन्द्रको ७-८-४० के एक पत्रमें किया है। यहाँ मैं उन्हींके शब्दों तथा वाक्योंको उद्धृत करता हूँ—'जीवनका सच्चा उपयोग जीना है। लेकिन जीनेकी सामर्थ्य नहीं इससे उस जीनेके अर्थको, उसके नियमको उसकी पहेलीको, उसकी विचित्रताओंको, उसके आदर्शको, उसकी नीतिको समझसे पकड़ना चाहता हूँ। जीवनकी राहका चलनेसे पता खुलता है। पर कुछ मूर्ख होते हैं, चाहे उन्हें अपंग कह दीजिए, जो ठीक-ठीक चलनेके द्वारा नहीं, अर्थात् प्राणोंके द्वारा नहीं, बल्कि बुद्धिसे, मीमांसासे और कल्पनासे उस जीवनको समझना चाहते हैं। लेखक शायद उसी कोटिके दयनीय जीव होते हैं।' जैनेन्द्रकी दृष्टिमें 'लेखक वह है जो सौ फी-सदी सच्चा आदमी नहीं है। वह दूसरोंमें अपनेको पूरी तरह खो नहीं पाता। उसमें अहं की गाँठ रहती है। वह एकदम सेवक नहीं, कुछ स्वार्थी भी होता है, पर मन

उसका स्वार्थमें नहीं, प्रीतिमें रहता है। इस तरह दूसरोंके अर्थ जब वह अपनी समग्रताको विसर्जित नहीं कर पाता तब उनके लिए अपने मनको तो सहानुभूतिसे भरा रखनेकी कोशिशमें रहता ही है। यह द्वन्द्व उसकी वेदना है। इसीसे मुक्तिके प्रयासमें वह लिखता है।' कहनेका मतलब यह कि जैनेन्द्र लेखकके स्वतन्त्र व्यक्तित्व तथा उसके अहं-भावको बचा रखनेकी पूरी कोशिश करते हैं। उनके साहित्यमें उनका व्यक्तित्व बोलता रहता है। 'The writer is behind the book' बेनेट (Benett) का यह कथन जैनेद्रपर पूर्णतया लागू होता है। लेखक स्वार्थी होता है; अपने मानसिक द्वन्द्वोंको अभिव्यक्ति देनेके लिए ही वह कुछ लिखता है लेकिन उसका स्वार्थ पूँजीपतिका शोषण नहीं है बल्कि वह प्रेमका दूसरा नाम है। वह अपने मनकी आकुलता-वेदनामें समाजकी पीड़ाका अनुभव करता है। जैनेन्द्र इसी प्रकारके लेखक हैं। उन्होंने व्यक्तिके माध्यमसे समाजको समझनेका प्रयत्न किया है।

जैनेन्द्र फिर कहते हैं—'दार्शनिक मीमांसक है। वह व्यक्तिको लाँघ सकता है। व्यवहारकी ओरसे आँख मीच सकता है। कम-जगत्में क्या हो रहा है, इससे विमुख रहकर उसीके अन्तिम कारणके अनुसन्धानमें वह व्यस्त हो जा सकता है। सहानुभूतिसे उसे लगाव नहीं। उसे तटस्थता चाहिये। पर लेखक (कहानीकार-उपन्यास) का काम इससे कठिन है। तटस्थता तो उसे चाहिये ही, पर सहानुभूति भी कम नहीं चाहिये और समष्टिको समझनेके लिए व्यष्टि (Individual) को अन-समझा वह नहीं छोड़ सकता। व्यवहारसे कहीं दूर जाकर आत्म-सिद्धान्त पानेकी उसे छुट्टी नहीं। उसे व्यक्त और पदार्थ-जीवनमें अव्यक्त आत्म-सूत्र घटित हुआ देखना है। उसे कार्य-कारणकी उस शृंखलाको खोज निकालना है जो एक ओर इस कर्म-कर्दमसे भरे संसारको तो दूसरी ओर शुद्ध चिन्मय ईश-तत्त्वको थामती और समन्वित रखती है। उपन्यासकारका काम शायद समझा जाता हो कि वह समकालीन जीवनका नक्शा दे और इस तरह समाजका ज्ञान बढ़ावे अथवा समाजका सुधार करे, अथवा जनताका मनोरञ्जन करे, अथवा

उसके चहुँओर चलनेवाले राष्ट्रीय, जातीय या बौद्धिक आन्दोलनोंकी पैरवी या आलोचना करे। वह गरीबोंकी गरीबी मिटावे और अमीरोंकी अमीरीका हरण करे। एक वर्गको दूसरे वर्गसे विशिष्ट बने रहनेमें सहायता दे। वह जो हो, मेरे पास वह दृष्टि नहीं है, लाचार जो मेरे पास दृष्टि है मैं उसीसे क्या उपन्यास, क्या साहित्य और क्या राजनीति सबको देख सकता हूँ।

'दुनियामें बहुत कुछ घटित हो रहा है। उसको घटना कहते हैं। वह क्यों घटित हो रहा है शायद उसके कारणको भावना कहकर हम चीन्ह सकें। बहरहाल बुद्धि कार्यके कारणकी खोज चाहती है। आदमी मशीन नहीं है या मशीन है तो मनवाली मशीन है। उसके द्वारा होनेवाले व्यक्ति व्यक्ति-व्यापारका उसके मनकी अव्यक्त भावनासे सीधा सम्बन्ध है। जगत्के मनोभाव ही जगत्-कर्ममें प्रस्फुटित होते हैं। घटना यदि कार्य है, तो भावना कारण। उस कार्य-कारणकी सूक्ष्म शृंखलाको पकड़ना ज्ञानका लक्ष्य है। पूरी तरह तो वह समझकी पकड़में आ नहीं सकती, क्योंकि अन्तमें कार्य-कारण भेद ही भ्रान्ति है इसीसे कहना होता है कि सबका अन्तिम नियम और अन्तिम नियन्ता ईश्वर ही है। पर उस ईश्वरके दुरभिगम्यमें प्रतीति रखते हुए भी उसे अधिकाधिक रहस्यसे प्रकाशमें और कल्पनासे समझमें लानेकी आवश्यकता है। जाने-अनजाने मनुष्यका यही पुरुषार्थ है। और युग-युगके भीतर वाणी द्वारा और कर्म द्वारा वह यही करता चला आ रहा है तो मैं उपन्यास में (कहानीमें भी) यही टटोलता हूँ कि उसमें जगत्-व्यापार और मनोभावके बीच कैसी घनिष्ठ, सही और गहरी कार्य-कारण शृंखला बैठायी गयी है। दूसरे शब्दोंमें कहो तो सत्यका वहाँ गहरा अनुसन्धान मिलता है। अन्तिम सत्यका जितना मार्मिक उद्घाटन जिस रचना द्वारा मुझे मिले, उतना ही अधिक मैं उसके प्रति कृतज्ञ होता हूँ।...सत्यानुसन्धानकी इस वृत्तिको लेखकमें मैं पहले खोजता हूँ। ध्यान रहे यह दार्शनिकका सत्य नहीं है जो निस्पन्द हो सकता है। यह तो वह सजीव चिन्मय सत्य है जो हर स्त्री-पुरुषके हृदयमें, हर श्वासके साथ धड़कता सुन पड़ सकता है। और मैं मानता हूँ कि इस वृत्तिके भीतर समाज या राष्ट्र या जाति या विश्व, या

गरीब, या अमीर, सबके हितकी बात आ जाती है। अलगसे किसी और उपयोगिताको पकड़ रखनेकी जरूरत नहीं पड़ती। मेरी मान्यता है कि हम चाहें अथवा न चाहें प्रगति उसी ओर है। बाहरी घटनाएँ यदि विचारणीय हैं तो इसलिए कि वे कुछ भीतरीकी प्रतीक हैं। भीतरीकी अपेक्षामें ही बाहरको समझा जा सकेगा। इसी तरह भीतरको बाहरसे विरोधी बनाकर देखनेकी जरूरत नहीं हैं। मानव-जातिका साहित्य धीमे-धीमे, पर निश्चय पूर्वक उसी ओर बढ़ रहा है।'—जैनेन्द्रके जीवन-दर्शनका यही सरांश है। उनके साहित्यका अध्ययन उनके दर्शनके आलोकमें करना चाहिये। इनका साहित्य हिन्दीके वर्तमान छायावाद-रहस्यवादका गाद्यिक संस्करण है। इनकी प्रवृत्ति प्रसाद-महादेवीकी ओर उन्मुख है। इसीलिए हम उनमें दर्शनकी गहनता पाते हैं। हिन्दी-साहित्यमें यह बिलकुल नयी बात हुई कि मनोविज्ञानको केन्द्रमें रखकर साहित्यकी रचना की गयी।

कहानीकार जैनेन्द्र—जैनेन्द्र युग-प्रवर्तक कहानीकार हैं। प्रेमचन्दके बाद हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कहानीकार ये ही माने जाते हैं। इनकी पहली कहानी 'हत्या' १९२७ ई० में प्रकाशित हुई। इसी कहानीके साथ जैनेन्द्र हिन्दीमें आये। हिन्दी साहित्यमें इनके दो रूप हैं—कहानीकार और उपन्यासकार। इन दोनों रूपोंमें कौन किससे घटकर है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों—कहानी और उपन्यास—में इनकी कार्य-कुशलता अपने ढंगकी निराली और अद्वितीय है। साहित्य-क्षेत्रमें आ जानेपर पाठकों तथा आलोचकोंको बिलकुल नयी कहानियाँ पढ़नेको मिलीं। लोग आश्चर्यचकित हो गये। इनके पूर्व लोग प्रेमचन्दकी घटना-प्रधान कहानियाँ पढ़नेमें इतने व्यस्त थे कि बहुतोंको जैनेन्द्रकी कहानियोंमें 'अनाकांक्षित शृङ्गारकी उद्दाम वासनाका' दर्शन हुआ। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बदलता गया, त्यों-त्यों इनकी कहानियाँ भी विकसित होती गयीं और अन्तमें उनकी सत्ता-महत्तापर स्वीकृतिकी मुहर लगा दी गयी। आज जैनेन्द्र, प्रेमचन्दके बाद हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कहानीकार माने जाते हैं।

जैनेन्द्रको अपने पिछले युगकी परम्परासे, दर्शनको छोड़कर, शायद कुछ भी न मिला। हाँ, महात्मा गाँधीके दार्शनिक सिद्धान्तोंने उन्हें अवश्य प्रभावित किया। इसीलिए हम उनमें इतना गहरा 'दार्शनिक संकोच' पाते हैं। जैनेन्द्रका सब-कुछ अपना है। कहानी-कलाकी परिभाषा, उसके स्वरूप, विषय और उद्देश्य सब-कुछ उनके उर्बर मस्तिष्ककी सृष्टि हैं। प्रेमचन्दसे उन्हें यदि कुछ मिला तो इतना ही कि अपने साहित्यिक जीवनकी सन्ध्यामें प्रेमचन्दने कहानीके सम्बन्धमें जो धारणा बना रखी थी, उसीका विकास जैनेन्द्रने किया। मैं कह आया हूँ कि प्रेमचन्दकी कला-सम्बन्धी धारणाएँ सदैव बदलती रही हैं। अपने जीवनके शेष दिनोंमें उन्होंने मानसरोवर' की भूमिकामें स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि 'सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी **मनोवैज्ञानिक** सत्यपर हो।' जैनेन्द्रने इस 'मनोवैज्ञानिक सत्य' की खोज काफी बड़े पैमानेपर की जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इस दृष्टिसे ये प्रेमचन्दके ऋणी हो सकते हैं। कहानीकारके रूपमें प्रेमचन्द और जैनेन्द्रकी स्थिति ठीक तीन और छः जैसे अङ्कोंकी है। जिस सूत्रको प्रेमचन्दने जहाँ छोड़ दिया था वहींसे जैनेन्द्रका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ होता है। दोनोंमें यही महान अन्तर है।

'सभ्यताके विकासके साथ मनुष्यने अपने लिए बहुतसे सामाजिक तथा सैद्धान्तिक बन्धन बना लिये हैं, अपनी सहज स्वाभाविकतापर कृत्रिमताका आवरण डाल दिया है। इसके फलस्वरूप प्राकृत मानवीय भावनाएँ कुछ दुर्बल तथा क्षीण पड़ गयी हैं और रूढ़ियोंने स्वाभाविकताका स्वरूप धारण-कर लिया है। इसीके प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिक उपन्यास तथा कहानी-साहित्यने मनको अत्यधिक ममता दी है। मन अनिश्चित और गतिशील है। इसकी गतिविधिका अन्वेषण करना, मनोविज्ञानके अधारपर जैनेन्द्रके कहानीकारका प्रधानोद्देश्य है।...... परिस्थितियोंके प्रभावसे मनोभावोंके विकास-में जो परिवर्तन देखे जाते हैं, उन्हींको जैनेन्द्रने वाणी दी है। ये मानव-मन-के साथ उसके हृदयकी भी परख करना चाहते हैं।... इसके अतिरिक्त उन-की कहानियोंमें सामाजिक संस्कारोंके रूढ़ नीति-बन्धन, रूढ़ विवाह-पद्धति,

रूढ़ क्रान्तिकारिता और स्त्रीकी स्वतन्त्रता आदिकी सच्ची जाँच मिलती है। जैनेन्द्रने व्यक्तिके माध्यमसे रूढ़ समाज और उसके दूषणोंका विश्लेषण किया है। उन्होंने व्यक्तिका संघर्ष समाजके प्रति सचेत किया है।'[१] यह है जैनेन्द्रके कहानी-साहित्यका प्रधान विषय जिसपर उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनमें बुद्धि और हृदयका, समाज और व्यक्तिका एक अविराम संघर्ष पाया जाता है।

जैनेन्द्रकी कहानियोंमें समाजवादकी अपेक्षा व्यक्तिवादको और भौतिकताकी अपेक्षा आध्यात्मिकताको अधिक व्यक्त किया गया है। ये न तो साम्यवादियों-की तरह सामाजिक राजनीतिक मानवको लेकर चलते हैं और न आदर्श-वादियोंकी तरह सांस्कृतिक मानवको। ये न यशपाल-पहाड़ी हैं और न प्रेमचन्द सुदर्शन। ये बाहरकी घटनाओंको मानव-मनके अन्दर देखना चाहते हैं।

जैनेन्द्रके पात्र अपने जीवनकी परिस्थितियों तथा उनके वातावरणसे असन्तुष्ट हैं। इसलिए वे परिस्थितियोंपर विजयी होनेके लिए सतत तथा अथक परिश्रम करते हैं। वे क्रान्ति करनेपर भी उतारू हो जाते हैं। इस दृष्टिसे जैनेन्द्र एक क्रान्तिकारी कहानीकार हैं। रुढ़िगत विवाह-पद्धति उन्हें अमान्य है। भारतीय नारी बन्दिनी है, घरकी चहार-दीवारीके अन्दर कैद है। यह उन्हें परीशान करता है। उनकी मुक्तिके लिए ये जागरुक हैं। इनके पात्र जीवनकी विषम परिस्थितियों और टेढ़ी-मेढ़ी स्थितियोंसे युद्ध करनेके लिए तैयार होते हैं लेकिन उनपर ये विजयी-नहीं होने पाते। उन्हें मुँहकी खानी पड़ती है। जीवनकी विषण परिस्थितियों-से असन्तुष्ट होनेपर भी ये प्रेम और अहिंसाके द्वारा उनमें घुलने-मिलनेकी चेष्टा करते हैं। जैनेन्द्रका रास्ता संघर्षका न होकर समझौतेका है, सम-र्पणका है। हारकर थक जानेपर इनके पात्र आत्म-त्याग कर देते हैं। आत्म-त्याग इनकी सफलता-असफलता का एक मात्र साधन बनता है। इसीलिए इनमें बौद्धिकताकी अपेक्षा भावुकता अधिक है। लेखकने पाठककी हार्दिक सहानुभूति और आस्थाको प्रेरित किया है। इनकी कहानियोंके उद्देश्यकी अपील मस्तिष्ककी अपेक्षा हृदयके प्रति होती है। भवितव्यता

१ आधुनिक कथा साहित्य पृ ९०-९१

और भगवान्में अटूट श्रद्धा रखनेवाले जैनेन्द्रके पात्र जीवनकी दौड़में थके-माँदे पथिक हैं। 'पत्नी' कहानीमें सुनन्दा, जो वर्तमान भारतीय नारी-जीवन-का प्रतिनिधित्व करती है, उत्क्रान्त होते हुए भी शान्त बनी रहती है। वह इतना तो अवश्य कहती है कि 'तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके (अपने पति कालिन्दी चरणके) ही काममें लगी रहूँ', लेकिन अन्तमें वह भावुकता-की पुतली बन जाती है। सुनन्दाको दुःख इस बातका है कि वह रात-दिन घरके काम-काजमें मशीनकी तरह लगी रहती है लेकिन उसके पति कालिन्दी चरणने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी। फिर भी वह अपना पेट काटकर अपने पतिके आये हुए मित्रोंको अपना भोजन दे देती है। वह पतिके शोषणको शोषण न समझकर वरदान समझ शान्त हो जाती है। वह अपने मनको समझाते हुए कहती है—'छिः ! सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बातका अबतक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिये कि उनके लिए एक दिन भूखा रहनेका तुझे पुण्य मिला।' यह है जैनेन्द्रका पौराणिक आध्यात्मिक समर्पण, जीवनकी विषम परिस्थितिके प्रति। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि जैनेन्द्रकी नारी उत्क्रान्त-शान्त है। उसकी उत्क्रान्ति क्षणिक होती है और समर्पण और समझौताकी भावुकतामें जाकर शान्ति पा लेती है। इनके व्यक्तित्त्वकी यह बहुत बड़ी कमजोरी है। श्री अज्ञेयकी कहानी-में इसी विन्दुको काफी गहरा रंग दिया गया है—जीवन एक अविराम संघर्ष है, उसके प्रति समर्पण हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। इसके विपरीत, जैनेन्द्र-का कहना है कि 'कहानीके मूल भावोंका सम्बन्ध हृदय (Emotion) से होना चाहिये, मस्तिष्ककी कूट-बुद्धिसे नहीं।' इनके लगभग सभी पात्र बुद्धकी करुणा, महावीरकी अहिंसा और महात्मा गांधीकी सहानुभूति-समवेदनासे अनुप्राणित हैं।

जैनेन्द्रके चरित्र न तो देव हैं, न दानव; वे केवल हाड़-माँसके मानव हैं, अपनी इच्छा-अनिच्छाओंसे परिपूर्ण। इनकी कहानीमें व्यक्ति-चरित्रकी मानसिक दशाओंका बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण हुआ है। इस कला-में ये अद्वितीय हैं। हृदयके रागों-विरागोंकी उथल-पुथल, व्यक्तिकी प्रवृत्तियों-

का दमन, तथा उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया आदिका बड़ा ही विशद वर्णन जैनेन्द्र-की कहानियोंमें हुआ है। इस ऊँचाईपर यदि अबतक कोई पहुँच सका है तो वह श्री अज्ञेय ही हैं। 'पत्नी'में सुनन्दाका चरित्र चित्रण बड़ा ही मार्मिक हुआ है। इसलिए इनकी कहानियाँ घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान होती हैं। इनमें घटना बड़ी ही सूक्ष्म होती है।

कहानी-कला—कहानी-कलाकी दृष्टिसे जैनेन्द्रजीको अच्छी सफलता मिली है। उन्होंने कहानीकी अपनी परिभाषा दी है। उनकी दृष्टिमें 'कहानी मानव-जीवनके चिरन्तन प्रश्नों, शंकाओं और चिन्ताओंके उचित समाधानकी खोज है।' सत्यानुन्धान करना उनके कहानीकारका प्रधान उद्देश्य है। यह एक दार्शनिक परिभाषा है। सामाजिक समस्याओंने इस लेखक-को बिलकुल परीशान नहीं किया। मानवके चिर-नवीन और चिरन्तन प्रश्नोंका समाधान निकालना इनका कर्त्तव्य है। उन्होंने स्वयं कहा है—'कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समाधान पानेकी कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शङ्काएँ होती हैं, चिन्ताएँ होती हैं और हमीं उनका उत्तर, उनका समाधान खोजनेका सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। उदाहरणों और मिसालोंकी खोज होती रहती है। कहानी उस खोजके प्रयत्नका एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर ही नहीं दे देती, पर यह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है और पाठक अपनी चिन्तन-क्रियाके सहारे उस सूझको ले लेते हैं।''[1] इस तरह जैनेन्द्रकी कहानीका पाठक साधारण कोटिका व्यक्ति न होगा। इसके लिए परिष्कृत मस्तिष्कवाला पाठक चाहिये। विषयकी दुरूहताके कारण ही इनकी कहानियाँ सर्वसाधारणमें प्रचलित नहीं हो सकी हैं। जैनेन्द्रकी तरह पाठकको भी भावुक और चिन्तक होना होगा, तभी वह इनकी कहानियोंके मर्मको समझ सकेगा। इनमें मनोरंजन, उप-योगिता आदिके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। उन्होंने अपनी कहानियोंमें जिन समस्याओंको उठाया है, वे चिरन्तन हैं। सिद्धान्तकी अतिशयता,

---

१ जैनेन्द्रके विचार पृ. २७३.

(फ्रायडवाद और गाँधीवाद) प्रो० प्रभाकर माचवेके शब्दोंमें, 'उनमेंके कलाकारको खा गयी है।'

जैनेन्द्रकी कहानियोंमें न तो सस्ते मनोरंजनके लिए कोई जगह है और न जीवनकी साधारण उपयोगिताके लिए ही गुंजाइश है। ये हृदयके रागों (Emotions) को बहुत अधिक प्रश्रय देते हैं। हृदयसे उठनेवाली सहज भावधाराओंके लिए किसी बन्धनकी आवश्यकता नहीं पड़ती इसीलिए जैनेन्द्रको कहानीके लिए किसी टेकनिककी भी जरूरत नहीं पड़ती। उनका कहना है कि 'कहानीकार कुछ कम बुद्धिमान हो। थोड़ा उसे 'मूर्ख' और कुछ 'दुष्ट' होना चाहिये। दुष्ट इस अर्थमें कि उसे ऐसा न लगे कि वह साधु है। सब गड़बड़ी उसमें ही है, ऐसा उसे लगे। बुर्जुआपन उसमें नहीं होना चाहिये। उसमें विद्रोहीपन-सा आना चाहिये। और 'मूर्ख'से—बौद्धिक प्रवृत्ति उसमें पकी हुई नहीं होनी चाहिये।' उनकी दृष्टिमें अनुभूति (Emotion)कहानीके लिए बहुत आवश्यक तत्व है। यह तो कहानीमें व्याप्त होना ही चाहिये। कहानीमें मनोरंजन अनिवार्यसे अधिक न हो। कहानीकारकी भावातिशयता कहानीको जन्म देती है, जैनेन्द्रका ऐसा विश्वास है। कहानी लिखते समय वह उसके उद्देश्यसे बिलकुल अनभिज्ञ होता है। उन्होंने स्वयं कहा है कि 'जहाँ कहानी-लेखक और उद्देश्य उसकी कहानीमें अलग-अलग हो जाते हैं, वहाँ सृजन हो ही नहीं सकता। जब कहानी-लेखक उद्देश्यको ही जान गया तो जिसके लिए वह कहानी लिखता है, वह बात ही खत्म हो गयी।'

अपनी कहानियोंमें जैनेन्द्र टेकनिकसे अधिक वस्तु (Matter) को प्रधानता देते है। उनका कहना है–कि 'मैं तो कहानीमें फॉर्म (F rm) को स्थान नहीं देता—उससे मैं परीशान हूँ। कहानीमें फॉर्म मुख्य चीज़ नहीं है—क्या कहना है, वह मुख्य है। शरीर–विज्ञान (Anatomy) का शास्त्र जाने बिना भी लोग पिता बन जाते हैं—टेकनिक जाने बिना भी उसी तरह कहानी लिखी जा सकती है। वास्तवमें जो टेकनिक जानता है, वह कहानी नहीं लिख सकता। कहानीकारके पास यदि टेकनिक है तो वह उसी-

की है। उसके पास अपनी ही अन्तर्वृत्ति टेकनिक है।' जैनेन्द्रकी दृष्टिमें कहानीमें रचना-शैलीकी अपेक्षा भावना और चिन्तनकी प्रधानता होनी चाहिये।

जैनेन्द्रने सफल कहानीकी एक कसौटी बनायी हैं। साधारणतः लोगोंका विश्वास है कि जिस कहानीमें जितना अधिक मन लगे, वह उतनी ही अच्छी कहानी है। इसकी व्याख्या जैनेन्द्रने इस प्रकारकी है—'मन लगना तो बड़ी पहचान है ही, पर मन लगा रहे। 'तोता-मैना' में मन लगता है, पर लगा नहीं रहता। एक बार मनको पकड़कर जो बराबर जीवनमें जिन्दा रहता आये, वह अच्छी कहानी या उपन्यास है। जब-जब आप अकुला जायें, तब-तब आप उसे पढ़ें और उसे जीवनमें आप शाश्वत मानने लगें। मन लगे और जितने दीर्घ कालतक लगा रहे, उतना ही अच्छा है।'[1]

जैनेन्द्रकी कहानी-कलामें संकलन-त्रय (three unities) का सम्यक् निर्वाह किया गया है। कहानीमें मानव-जीवनके किसी एक ही केन्द्रीय भावकी अभिव्यक्ति है। प्रभावकी एकता (Unity of Impression) का जितना सफल और सुन्दर निर्वाह इनकी कहानियोंमें हुआ है उतना अन्य लेखकोंमें नहीं पाया जाता। यह उनकी कहानी कलाकी सबसे बड़ी विजय है। इस तथ्यको उन्होंने इस प्रकार पुष्ट किया है—'मैं समझता हूँ कहानीको ऐक्य प्रदान करनेवाला, संघटित करनेवाला जो भाव (Idea) है, उसपर उसका ध्यान केन्द्रित रहे। यदि ऐसा हो, तो कहानीके सब अवयव दुरुस्त रहेंगे और सारी कहानीमें ऐक्य तथा प्रवाह रहेगा। जिसे चरम उत्कर्ष (Climax) कहते हैं, उसकी ओर ही सारी कहानी बही जा रही है, यह बात स्वयं आ जायेगी। जहाँ वह उत्कर्ष पूर्ण होगा वहीं कहानीका अन्त हो जायगा।'

जैनेन्द्रकी कलामें मनोविज्ञानका बहुत बड़ा स्थान है। कथोपकथनमें मनोविज्ञानका प्रयोग उन्होंने ही पहले-पहल किया। इनके पूर्व प्रेमचन्द तथा 'कौशिक' ने कथोपकथनका सुन्दर प्रयोग अवश्य किया है लेकिन इसका व्यवहार उन्होंने कथाके विकासके लिए किया था। जैनेन्द्रने मानव-मनके रहस्यों

---

१. जैनेन्द्रके विचार, पृ० १०१

तथा गाँठोंको खोलनेके लिए ही कथोपकथनोंका प्रयोग किया है । प्रो० माचवे-ने कहा है कि 'जैनेन्द्रके पात्रोंका मनोवैज्ञानिक निरूपण कुशल संवादों द्वारा होता है । जैनेन्द्र मनोविश्लेषक हैं । व्यक्तिकी मानसिक स्थितियों तथा उसकी दुर्बलताओंका सुन्दर चित्र उपस्थित करनेमें इन्हें पूरी सफलता मिली है । इस क्षेत्रमें ये अकेले हैं ।

जैनेन्द्रकी कहानी-कलामें भाषाका अपना स्वरूप है जो अन्य लेखकोंमें नहीं पाया जाता । 'हिन्दीके सामाजिक उपन्यास' के लेखक श्री ताराशंकर पाठकका कहना है कि 'जैनेन्द्रकी सबसे बड़ी विशेषता इनका रचना-चमत्कार, कहनेका ढंग या शैली है ।' यद्यपि ये रचना-शैलीकी उतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बातकी कि 'उन्हें क्या कहना है, तथापि जैनेन्द्रकी भाषा-शैली निजकी है । इनकी भिन्न कहानियोंकी तरह उनकी भाषा भी भिन्न है ।' 'उनमें भाषामें भावोंकी ऊँचाईतक उठाकर उन्हें अभिव्यक्त करनेकी गज़ब-की शक्ति है । उनके वाक्य प्रायः छोटे-छोटे, चलते, पर साथ ही मानों फूल बिखेरते हुएसे चलते हैं । वे पारेकी तरह ढुलमुल-से करते रहते हैं, मानों हमारे हाथोंकी अँगुलियोंका स्पर्श हुआ नहीं कि वह हिल पड़ा, छितरा पड़ा । उर्दूसे घृणा नहीं, अंग्रेजीसे परहेज नहीं, संस्कृतसे दुराव नहीं । उनके यहाँ भेद-भावकी बू तक नहीं । केवल शर्त है तो स्वाभाविकताकी, सहजताकी और बोधगम्यताकी ।' (डॉ० देवराज, विशाल भारतके एक लेखमें)

जैनेन्द्रपर आक्षेप—हाड़-माँसके मनुष्यमें दोष और गुण दोनों होते हैं । चाँदमें भी कलंककी कालिमा है, गंगा-जैसी पवित्र नदीमें भी गन्दे नालों-का पानी गिरता है । फिर यदि जैनेन्द्रमें कुछ लोगोंको दोष दिखायी पड़ते हैं तो इसमें उनका क्या दोष ? प्रो० नन्ददुलारे बाजपेयीने जैनेन्द्रके साहित्यमें दो दोष देखे हैं—१. कृत्रिम भावात्मकताका लबादा—'इनके सभीपात्र एक ऊँचे उद्देश्यको लेकर एक उच्च मानसिक भूमिपर व्यवहार करते दीखते हैं किन्तु सच्ची चारित्रिक उच्चता और उदात्त मनःस्थिति उनमें नहीं । ··· पढ़नेपर एक अनाकांक्षित शृंगारिकताकी अन्तर्धारा हमें दिखायी देती है... और ऊपरसे विशुद्ध-सी वस्तु जान पड़ती है'; २. अस्पष्ट चरित्र—'जैनेन्द्रजी अपने पात्रोंको

सुस्पष्ट व्यक्तित्व नहीं देते, न उनके जीवनके सुख-दु:खको सुलझे हुए रूपमें हमारे सामने रखते हैं। उनके पात्र एक बड़ी हदतक रहस्यवादी बने रहते हैं। उनके प्रति पाठकोंकी आकांक्षित सहानुभूति उत्पन्न नहीं होती।'[१] इनके अतिरिक्त, कलकत्तेसे निकलनेवाली 'विश्वमित्र' पत्रिकाके सहायक सम्पादक श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' ने १९४० के मार्चकी 'माधुरी' में जैनेन्द्र-साहित्यमें दो दोष और निकाले हैं—१. 'जैनेन्द्रकी कलामें हम मानवताका स्पष्ट, पूर्ण और स्वस्थ चित्र नहीं देखते। उनकी कृतियाँ पाठकोंके लिए पहेली बनी रहतीं हैं', २. 'जैनेन्द्रकी भाषा और भाव-प्रकाशन-शैली बड़ी अस्वाभाविक और कृत्रिम-सी होती है ३. 'वह अपने पात्रोंको पूरा दार्शनिक बना देते हैं और एक विचित्रसे वाक्-जालमें पड़कर अपनी शक्ति और ओजको नष्टकर देते हैं।'[२]

जैनेन्द्रके साहित्यपर तरह-तरहके आलोचकोंने अपने-अपने ढंगसे आक्षेप लगाये हैं। मैं यहाँ इनके औचित्यनौचित्यका विवेचन न कर इतना ही कह देना चाहूँगा कि 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना'। इस विषयपर स्वतंत्र पुस्तक लिखनेकी आवश्यकता है। यहाँ मैं पाठकोंके अध्ययनार्थ जैनेन्द्रकी कहानी-संग्रह-पुस्तकोंके नाम दे रहा हूँ—

जैनेन्द्रकी रचनाएँ (कहानी-संग्रह)

१. वातायन
२. नीलम देशकी राजकन्या
३. दो चिड़ियाँ
४. स्पर्द्धा
५ ध्रुवयात्रा
६. पाजेब
७. एक दिन
८. एक रात
९. फाँसी

———

१. हिन्दी साहित्य-बीसवीं साहित्य, पृ० १९२, २. माधुरी १९४० (मार्च)

अज्ञेय

सन् १९११...

सामान्य परिचय—श्री अज्ञेयका पूरा नाम श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है। इनका जन्म गोरखपुरके कसिया गाँवमें ७ मार्च १९११ ई० में हुआ था। इनके पिता डॉ० हीरानन्द शास्त्री एम. ए, पी. एच. डी. पुरातत्व-विभागमें हैं। ये पंजाब (कर्तारपुर) के नागरिक हैं। गोरखपुरमें जिन दिनों, इनके पिताकी देखरेखमें खुदाईका काम चल रहा था तब वहीं अज्ञेयजीका जन्म हुआ। अज्ञेय अपने पिताके साथ अनेक प्रान्तोंमें रह चुके हैं। इसलिए उन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके स्कूलोंमें तरह-तरहके शिक्षकोंसे शिक्षा ग्रहण करनेका अवसर मिला है। ये जन्मसे ही हिन्दी-भाषी हैं। लखनऊमें उन्होंने बोलना सीखा। अज्ञेय स्वयं लिखते हैं—'सन् १९१४-१५ में अपने भाइयोंकी देखादेखी पहले गायत्री-मंत्र और फिर अष्टाध्यायीके अनेक अध्याय रट डाले। इस समय ये सिर्फ ३-४ सालके थे। फिर घरपर मास्टरसे अंग्रेजी बोलना सीखा। सन्, १९१६-१८ में काश्मीर-जम्मूमें एक अमेरिकन अध्यापकसे अंग्रेजी, वन-सम्पत्ति-शास्त्र और अंकगणित; एक मौलवीसे उर्दू-फारसीके कायदे और एक पण्डितसे धातुरूपावली पढ़ी। यहीं एक स्कूलमें दो-तीन मास रहकर तरह-तरहकी उछल-कूद सीखी। उसके बाद काश्मीर-जम्मू रियासतमें जींदके एक स्कूलमें महीना भर रहकर सीटी बजाना, अमरूदोंपर नाम लिखना, ताँगा हाँकना और गिलहरी पालना सीखा। फिर मिर्जापुरमें 'अरे बँदरवा टिल्ली-लिल्ली' और तदनन्तर नालन्दामें भाइयोंसे थोड़ी बहुत ड्राइंग, मालीसे खेतीके कुछ प्रारम्भिक नियम, रसोइयेसे भोजन बनाना-बिगाड़ना, एक डोमकी मददसे बिच्छू-साँप आदिके जीवन और प्रजननके रहस्य और थोड़ा लाठी चलाना, पेड़पर चढ़ना और रस्सी बाँटना। बिना मददके ही घड़ियोंके पुर्जे खोलनेकी तरकीबें सीखीं। पटनेमें बढ़ईगिरी सीखी। फिर नीलगिरि प्रदेशमें तामिल भाषा पढ़ी और स्काउटिंगकी पुस्तकोंके सहारे तरह-तरहका ज्ञान पाया जिसे जङ्गलोंके अनु-

भवसे पुष्ट भी किया। इसी बीच बारूद और तरह-तरहकी आतिशबाजी बनाना तथा फोटोग्राफी भी सीखी। सन् १९२४ में एक मेमसे अंग्रेजी साहित्य पढ़ना शुरू किया। लेकिन एँग्लो इण्डियन जीवनके ढंगसे खिन्न होकर छोड़ दिया। फिर एक मद्रासी मास्टरसे पढ़कर १९२५ में प्राइवेट तौरपर मैट्रिक पास किया। तदनन्तर इंटर (मद्रास, १९२७) बी. एस. सी. (लाहौर, १९२९) एम. ए. में अंग्रेजी लेकर डेढ़ वर्ष पढ़ चुका था, जब १९३० के 'नवम्बर में गिरफ्तार हो गया। इस बीच अनेक प्रकारके विस्फोटक पदार्थों, जहरीली गैसों और इनके उपचारोंका अध्ययन कर चुका था। गिरफ्तारीके बाद दूसरा शिक्षा-काल आरम्भ हुआ। विदेशी-साहित्य, मनोविज्ञान, राजनीति, समाज--शास्त्र, कानून, थोड़ा-सा दर्शन--सब जेल-में पढ़े।

"लिखनेकी ओर रुचि तभीसे थी जबसे साक्षर हुआ।...... सन् १९२१ में कुछ कविताएँ लिखी थीं। सन् १९२३ से घरमें एक हस्तलिखित पत्र निकालना आरम्भ किया। जिसके कुछ अङ्क अभी रखे हैं और जिसके पाठकों-में घरके लोगोंके अतिरिक्त पिताजीके सहयोगी स्वर्गीय राय बहादुर हीरालाल भी थे। उस समयसे कविता, कहानी, लेख आदि हिन्दी-अंग्रेजी दोनोंमें लिखने लगा। सन् १९२४-२५ में अंग्रेजीमें एक उपन्यास लिखा। सन् २४ में पहली कहानी इलाबादकी स्काउट पत्रिका 'सेवा' में छपी। सन् १९२५-२८ में प्रायः कविताएँ लिखीं, अधिकांश अंग्रेजीमें। कुछ रचनाएँ कॉलेज पत्रिकामें छपीं, उसका सम्पादन भी किया। सन् १९२९ में गुप्त राजनीतिके सम्पर्कके बाद हिन्दीमें एक उपन्यास लिखा, जेल जानेके बाद कहानियाँ, कविताएँ और एक उपन्यास लिखा, कुछ अनुवाद भी किये।"[1]

अज्ञेयकी रचनाएँ—

प्रकाशित रचनाएँ–(हिन्दीमें)

(१) कहानी-संग्रह
१. विपथगा
२. परम्परा

---

१. साधना, परिचयांक, पृ. २८६-८७, मार्च १९४१

३. कोठरीकी बात
४. शरणार्थी–(१९४९ ई०)

(२) उपन्यास– १. शेखर एक जीवनी, प्रथम भाग
२. ,, ,, दूसरा भाग

(३) कविता– १. विश्व प्रिया, २. एकायन, ३. भग्नदूत } चिन्ता

(४) निबन्ध– त्रिशंकु

आलोचना–

(५) सम्पादन– आधुनिक हिन्दी साहित्य,

(६) अंग्रेजी पुस्तकें—

१. Three Flowers (उपन्यास)
२. After Dawn (शेखरका मूल रूप, उपन्यास)
३. Captive Dreams (कविताएँ)
४. Prison days & other poems (कविताएँ)

(७) अनुवाद (हिन्दीमें)
१. बेरा (नाटक)–ऑस्कर वाइल्ड
२. रूसी क्रान्तिका इतिहास
३. स्टालिन
४. कम्युनिज्म क्या है ?
५. एंगेल्स

अज्ञेयका व्यक्तित्व (personality)—श्री अज्ञेय हिन्दीके एक शक्तिशाली लेखक हैं। इनका-सा व्यापक और प्रभावशाली व्यक्तित्व हिन्दीके किसी भी दूसरे लेखकमें नहीं पाया जाता। इनके व्यक्तित्वके अनेक पहलू हैं। असाधारण प्रतिभा इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इतनी कम उमरमें जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंपर समान अधिकार रखना साधारण व्यक्तिका काम नहीं। इनकी रुचिमें विविधता और विभिन्नता इनके व्यक्तित्व-को और भी महान् बनाती है। एक साथ अनेक भाषाओंका अध्ययन

करना इनकी प्रवृतियोंकी असाधारणताका सूचक है। १४ वर्षमें मैट्रिक पास करना, केवल १० वर्षमें कविताएँ लिखना, सिर्फ १३ वर्षकी उमरमें अंग्रेजीमें उपन्यास और कविताएँ लिख देना और १८ वर्षमें राजनीतिक क्षेत्रमें क्रान्तिकारी कार्य करना—ये अज्ञेयके अद्वितीय तथा महान् व्यक्तित्वके परिचायक हैं। व्यक्तित्वकी यह महानता हिन्दीके किसी भी दूसरे लेखकमें नहीं पायी जाती। अज्ञेय-जैसे व्यक्ति और लेखक इस देशकी दूसरी भाषाओं-में शायद ही मिलें। ये गुलाम भारतमें पैदा न होकर यदि किसी स्वतंत्र और सम्पन्न देशमें पैदा हुए होते तो अबतक ये विश्व-विख्यात लेखक हुए होते और पश्चिमवालोंको इन्हें नोबुल पुरस्कार देनेमें ज़रा भी हिचक न होती। लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि हम ऐसे लेखकका समुचित सम्मान-तक करनेमें असमर्थ हैं। हिन्दीके प्रति हमारे देशके राजनीतिक नेताओंमें सामूहिक तथा साहित्यिक चेतनाका अभाव होनेके कारण आज स्वतंत्र भारत-में भी इनका उचित सम्मान और स्वागत नहीं हो पा रहा है। व्यक्ति अज्ञेय महान् हैं और इससे अधिक महान् है उनका साहित्यिक। प्रो० प्रभाकर माचवेने श्री अज्ञेयके साहित्यिक जीवनका बड़ा ही सुन्दर रेखा-चित्र 'हंस' में खींचा है जिसकी कुछ पंक्तियोंको मैं उद्धृत कर रहा हूँ। इस रेखा-चित्रसे हम यह अच्छी तरह समझ जायेंगे कि अज्ञेयमें जो आसाधारण गुण छिपा है, उसका स्वरूप क्या है। हिन्दी-साहित्यके इतिहास-लेखक, शायद अज्ञानवश, इनकी सदैव उपेक्षा करते रहे हैं। यही कारण है कि हमारे साहित्यके इतिहास-लेखकोंने इनके सम्बन्धमें दो शब्द भी लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी। सच्ची बात तो यह है कि १९२५ के बाद हिन्दी-साहित्यमें जिन प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों—अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि—का आगमन हुआ है, उनके सम्बन्धमें हिन्दीके पाठक बिलकुल अंधकारमें पड़े हैं। इनके साहित्यका अभीतक पुस्तकके रूपमें मूल्यांकनतक नहीं हुआ है। आज कवि-कहानीकार या उपन्यासकारकी अपेक्षा आलोचकोंकी आवश्यकता है। वर्तमान हिन्दी साहित्यमें उच्चकोटिके आलोचकोंका बेतरह अभाव खटकता है। आलोचकोंका अकाल होनेके कारण प्रतिभाके पुत्र अज्ञेय आज-

तक पाठकोंको 'ज्ञेय' न हो सके। प्रो० माचवेने अज्ञेयके रेखा-चित्रमें उनके व्यक्तित्वकी विशालताका परिचय देते हुए उनके कहानी-साहित्यपर भी, संक्षेपमें, बिचार किया है। वह इस प्रकार है— "तार (Telegraphic wire) के नीचे वैसे अक्सर वे अपनेको 'वत्स' लिख देते हैं; मगर एक बार अंग्रेजीमें 'अज्ञेय' लिखा। 'ज्ञ' के द्विविध उच्चारणके कारण उसके हिज्जे हुए 'Agneya'–जिसे चाहो तो हिन्दीमें पढ़ सकते हो 'आग्नेय'। 'अज्ञेय' की कोई भी कहानी जिसने पढ़ी हो, वह जान सकता है कि उनमें कितनी साग्निकता है, कितना विद्रोहीपन। या जैसे उन्होंने स्वयं अपना 'आत्म परिचय' कवितामें लिखा था—

'मैं वह धनु हूँ जिसे लगानेमें प्रत्यंचा टूट गयी' (विश्वबंधु)। 'अज्ञेय' को सिर्फ उनकी किताबोंसे ही नहीं जाँचना होगा, वरन् 'विश्वमित्र' और 'हंस' 'विशाल-भारत' और कभी 'माधुरी' 'विश्व-बंधु' आदि अनेक पत्रोंमें निकली उनकी कहानियाँ, कविताएँ और लेखादि–जैसे शान्ति-निकेतनमें 'महा-युद्धोपरान्त हिन्दी कविता' पर अंग्रेजीमें दिया हुआ व्याख्यान जो मूल 'विश्व भारती' में छपा और भावानुवाद 'विश्वमित्र' में आदि ले लेना होगा। और साहित्यमें ही सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन' को और जानना हो तो 'सैनिक' के सन् ३७ के शुरूके मासोंमेंके सम्पादकीय, 'विशाल भारत' की आजकलकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और कई छोटी-बड़ी आलोचनाएँ और 'नक्काश : एक बन्दी कवि' और 'अन्धोंकी शिक्षा' जैसे लेख भी ले लेने होंगे।, 'एशिया' और दूसरे पत्रोंमें प्रकाशित आपकी अंग्रेजी कविताएँ भी क्या छोड़ देनेकी बात है? और इधरका प्रकाशित उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग)।

अज्ञेयके दो व्यक्तित्व—रोम्याँ-रोला, डी०एच्-लारेंस, वाल्टेयर, अप्टन सिंक्लेअर आदि, अज्ञेयके सबसे ज़्यादा पसन्दके लेखक हैं।...इन चारों लेखकोंकी रचनाओंने उनकी लेखनीको भी अप्रत्यक्षतः प्रभावित किया है। सबसे पहले सन् ३७ के मराठी 'चित्रमय जगत्' में दिल्ली-लाहौर-मेरठ-षडयंत्रोंके क्रान्ति-कारकोंका कुछ दिलचस्प बयान पढ़नेमें आया था। वहीं

नाम पहली बार पढ़ा—'वात्स्यायन'। पर 'वात्स्यायन' नामसे लिखनेवाली लेखनीका लेखन-विषय और 'अज्ञेय' का लेखन-विषय, किञ्चित् क्यों काफ़ी अलग-अलग ढंगका होता है। 'वात्स्यायन' कांग्रेसके वक्तव्यों और अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिपर और 'रोटी और बोटी' यों साहित्य और राजनीतिपर सम्पादकीय टिप्पणी लिख सकते हैं, खासी व्यंग और तर्कशुद्धतासे भरी हुई बातें, मगर अज्ञेय' तो 'अमर बल्लरी' और 'हर सिंगार', 'हारिल' और 'चिड़िया घर' (कहानियाँ) लिखता है। यहाँ जो दो नाम—'वात्स्यायन' और 'अज्ञेय'—बताये वे एक ही आदमीके हैं—एक खासे मोटे ताज़े, कुछ पंजाबी गठनके, सौम्य भव्य चेहरेके भले आदमीके ही ये दो नाम हैं, जो सचमुच, स्वभावसे 'आग्नेय' भी हैं और अज्ञेय भी।

चित्रकार अज्ञेय—निरी फोटोग्राफी ही नहीं, मगर चित्रकलाका भी उन्हें बेहद शौक है।···चित्र-संग्रह उनके पास बहुत बड़ा है, पर साथ ही उनके सम्बन्धमें उनकी जानकारी भी खूब गहरी है। 'लिनोकट' और कार्टून भी वे मजेमें बना लेते हैं, जिनमेंसे कुछ मेरठ-कवि सम्मेलनके 'सम्मेलन' नामक परिहास-पूर्ण रिपोर्टमें सैनिकमें छपे थे। चित्रोंके साथ शिल्पमें भी उन्हें बहुत अधिक रुचि है···बादमें मैंने जाना कि मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि कइयोंके मिट्टीके 'रिलीफ्स' अज्ञेयजीने बताये हैं जिनमेंसे एक जैनेन्द्रजीवाले रिलीफका फोटो उनकी विचार-पुस्तकमें छप चुका है। ... ऐसा जान पड़ता है कि कथा-लेखक या सैनिकसे पहले अज्ञेय एक चित्रकार हैं, जीवनके सहृदय छाया चित्रकार।

राजनीतिक नेता अज्ञेय—"उनकी प्रतिभा-शक्तिका प्रवाह न केवल साहित्य, कविता, चित्रकलाकी दिशामें ही प्रवाहित होता है, वरन् जैसे उन्होंने स्वयं 'साहित्य और राजनीति' की चर्चामें 'झगड़ेका हल' नामक एक पत्रमें लिखा था—"एक आदमीके लिए बिलकुल सम्भव होना चाहिये कि वह एक साथ दोनों (साहित्य और राजनीतिक कार्यकर्त्ता) हो सके, बल्कि इन दोनोंके अलावा बीस चीजें और हो सकता है। और भी शिकायत नहीं।········राजनीतिसे, साहित्यसे—अभिव्यंजनाके बीसियों प्रकारसे—अधिक

स्थायी एक चीज है, वह है रचनेकी, सृजन करनेकी प्रेरणा (Urge to create)। उसीसे आदमी ईश्वरका समकक्ष होता है। जो उस प्रेरणाका आदर करता है, वह स्वयं आदरका पात्र है। जो उसे बेचता है, वह नीच है, और नीचसे बढ़कर बेवकूफ है, क्योंकि वह स्वयं अपना नाश कर रहा है।··· फिर वह शक्ति चाहे साहित्य पैदा करनेकी हो, चाहे इन्क़िलाब पैदा करनेकी चाहे बच्चा पैदा करने की। ···अज्ञेयके विश्वास कितने बुलन्द और स्पष्ट हैं!''

''अज्ञेयकी राजनीतिक प्रतिभाका पता तब मिला जब मेरठमें किसान-कान्फ्रेन्समें 'वे लगातार कई दिन और रात गाँवोंमें घूम-घूमकर किसान-मार्चका संघटन करनेमें उन्होंने अपनेको लगा दिया था।···उत्साह और लगन उनमें इतनी अदम्य भरी हुई हमेशा ही रहती है—वे निरन्तर कर्मरत अपनेको रखते हैं। वे अविश्रान्त जान पड़ते हैं। यह अथक कर्मशक्ति जहाँ एक ओर उन्हें निर्माणकी ओर लेकर बढ़ती है, वहाँ उसके साथ ही साथ, जो प्रशान्त विवेक और संयत गाम्भीर्य उनकी उस शक्तिको थामे है, वह उन्हें एक निर्भीक और निष्पक्ष आलोचक भी बना देता है।········राजनीतिकता भी उनके व्यक्तित्वका ऐसा पहलू है, जिसे जाने बिना उनके साहित्यका शक्तिस्रोत समझा नहीं जा सकता।''

प्रगतिशील लेखक अज्ञेय—अज्ञेय एक राजनीतिक नेता भी हैं जो ज्यादा बोलनेसे करना ही अच्छा समझते हैं। व्याख्यान देनेकी इनकी अपनी शैली है। इन्दौरमें एक बार प्रगतिशील साहित्यपर बड़े ही जोरदार शब्दोंमें कहा था—'कलाकार एक प्रकारके मानसिक संघर्षमें जिया करता है। संघर्ष कलाकी जननी है। यह संघर्ष संकल्प और परिस्थितिमें चला करता है। इसी संघर्षके कारण प्रगति दृश्यमान है। 'प्रगति' शब्द सापेक्ष है। आज जो प्रगति है वह कल प्रगति शायद न रहे। इसीसे प्रगतिको सृजनका मूल बिन्दु नहीं मान सकते। वह आलोचकके सृजे हुए साहित्यपर लगता हुआ आक्षेप हो सकती है। कलाकार यदि सच्चा कलाकार है तो वह अमुक दिशाकी लकीर ही नहीं पीटता बैठता, मगर सर्वांगीण प्रगतिमें विश्वास रखता

है। और जीता है। प्रगति जीवनके लिए लक्ष्य नहीं है, उपलक्ष्य मात्र, क्योंकि प्रगति-ही-प्रगति अपने आपमें अन्तिम नहीं है।' कला और प्रगतिपर इतनी तर्कपुष्ट व्याख्या मैंने कहीं नहीं पढ़ी। यह अज्ञेयके साहित्यका सार-रूप है जिसका व्यावहारिक रूप उनकी कहानियों और 'शेखर:एक जीवनी' के दो भागोंमें पाया जाता है। इस लेखकको समझनेके लिए उपरिलिखित व्याख्याको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। अज्ञेयके सम्बन्धमें विद्वान् आलोचकोंके बीच भारी ग़लतफहमियाँ फैली हैं। 'शेखर:एक जीवनी-' का प्रकाशन होनेके पहले अज्ञेय सचमुच 'अज्ञेय' थे, लेकिन इस अमूल्य और असाधारण उपन्यासके प्रकाशमें आ जानेपर हिन्दीके आलोचकोंने इनकी साहित्यिक शक्तिका अनुभव किया। फिर भी अज्ञेय पूर्णतः, 'ज्ञेय' नहीं हो सके हैं। यही कारण है कि श्रीप्रकाशचन्द्र गुप्त इन्हें अनारक्स्ट (Anarchist) समझते हैं; श्री इलाचन्द्र जोशीके शब्दोंमें ये घोर अहंवादी हैं; श्री नरोत्तम नागरके शब्दोंमें अज्ञेय यातनाका दर्शन प्रचारित करनेवाले हैं और डॉ० नगेन्द्रने इन्हें 'एक प्रच्छन्न हेतुवादी या नियतिविश्वासी' कहा है। इन आलोचकोंके इन कथनोंमें शेखरको ही विशेष रूपसे लक्ष्य किया गया है जो अज्ञेयपर भी लागू हो सकता है।

विद्रोही अज्ञेय—अज्ञेयके व्यक्तित्वमें विप्लव और विस्फोटकी चिनगारियाँ हैं जिनको वे अपनेमें छिपा न सके, वे व्यक्त होकर रही हैं। बचपनमें अपने पिताके साथ अत्यधिक प्रवास और भ्रमण करते रहनेके कारण वे अपने देशके आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवनसे बहुत पहले ही परिचित हो चुके थे। देशके दुश्मनों—अंग्रेज और पूँजीवादी—द्वारा भारतके किसानों और मजदूरोंका शोषण दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा था। अज्ञेयके लिए यह असह्य हो उठा। वे क्रान्तिकारी हो उठे। १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलनमें जहरीले गैसों और विस्फोटक पदार्थोंके बनानेके अपराधमें ये गिफ्तार हुए और कई बर्षोंतक इन्हें जेलमें जीवन बिताना पड़ा। जेल यात्रा उनके लिए बरदान सिद्ध हुई। उनका वास्तविक शिक्षण और अध्ययन जेलमें ही हुआ। अज्ञेयके क्रान्तिकारी लेखकका जन्म भी यहीं

हुआ। कारागृहमें बन्दी रहकर उसने बहुत-कुछ पढ़ा, बहुत-कुछ लिखा और बहुत-कुछ सीखा। 'विपथगा'–अज्ञेयका पहला कहानी-संग्रह–की लगभग सारी कहानियाँ जेलोंमें ही लिखी गयीं। इसकी पहली कहानी 'विपथगा' में हम क्रान्तिकारी अज्ञेयके वास्तविक स्वरूपकी झाँकी पाते हैं। यह लेखककी क्रान्ति-भावनाको पूर्णरूपेण स्पष्ट कर देती है। जेल जाते समय अज्ञेय सिर्फ १९ सालके भावुक युवक थे। जिनकी आँखोंमें शायद युवावस्थाका तरुण सपना झूल रहा था। लोहेके सीखचोंके पीछेसे उन्होंने जो क्रान्तिका गीत गाया उसकी–अभिव्यक्ति उनकी अंग्रेजी कविताओंकी संग्रह-पुस्तक' (Prison days and other Poems' में हुई। उन्होंने कहा–'Mine is the song of man' उनकी रचनाओंका विषय है हाड़-मांसका मनुष्य। अपने पिताके साथ घूमते-घूमते जब ये लाहौर आए तब इनका विद्रोही जाग उठा।

देशकी दयनीय अवस्था देख-देखकर अज्ञेयका मन विद्रोही हो उठा। १९३१ ई० में 'विपथगा' शीर्षक कहानीमें उन्होंने भविष्यवाणी की कि "दीप बुझता है तो धुँआ उठता है। किन्तु हमारे विस्तृत देशके भूखे, पीड़ित, अनाश्रित कृषक-कुटुम्ब सड़कोंपर भटक-भटककर हेमावृत धरतीपर बैठकर अपने भाग्यको कोसने लगते हैं, जब उनके हृदयमें सुरक्षित आशाकी अन्तिम दीप्ति बुझ जाती है, तब एक आहतक नहीं उठती। न-जाने कब-तक वह बुझी हुई राख पड़ी रहती है—पड़ी रहेगी! किन्तु किसी दिन सुन्दर भविष्यमें, किसी घोर झंझासे, उसमें फिर चिनगारी निकलेगी! उसकी ज्वाला—घोरतम, अनवरुद्ध, प्रदीप्त ज्वाला!–किधर फैलेगी, किसको भस्म करेगी, किन नगरों और प्रान्तोंका मान-मर्दन करेगी कौन जाने?"

लेखककी इन पंक्तियोंका निकटसे अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हमारा देश उस स्थितिको प्राप्त कर चुका है जब हम पूँजीवादी सत्ताकी जड़को हमेशाके लिए उखाड़ फेंकने देनेके लिए प्रयत्नशील हो उठे हैं। उसी कहानीमें अज्ञेयने यह लिखा है कि "मैं चाहता हूँ कि संसारमें साम्य हो, शासक और शासितका भेद मिट जाये। मैं सच्चा साम्यवादी हूँ।" अज्ञेय

अपनेको साम्यवादी कहते हैं लेकिन यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि यह लेखक रूसी साम्यवादी न होकर भारतीय साम्यवादी है। देशकी मौजूदा हालतको बदलनेके लिए यह क्रान्ति अवश्य चाहता है लेकिन वह 'हिंसात्मक क्रान्ति'से कोसों दूर रहना चाहता है। रूसी क्रान्तिकारीका कहना है कि 'क्रान्ति सूर्यसे भी अधिक दीप्तिमान, प्रलयसे भी अधिक भयंकर, ज्वालासे भी अधिक उत्तप्त, भूकम्पसे भी अधिक विदारक है।' लेकिन, इसके विपरीत, अज्ञेयने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि 'मैं क्रान्तिवादी हूँ, पर हत्यारा नहीं। इस प्रकारकी हत्याओंसे देशको लाभ नहीं, हानि होगी। सरकार ज्यादा दबाव डालेगी, मार्शल लॉ जारी होगा, फाँसियाँ होंगी। हमारा क्या लाभ होगा?' लेखकने 'सफल क्रान्ति क्या है?' इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'असंख्य बिफल जीवनियोंका, असंख्य निष्फल प्रयत्नोंका, असंख्य विस्मृत आहुतियोंका अशान्तिपूर्ण किन्तु शान्तिपूर्ण निकर्ष।' अज्ञेय हिन्दी-साहित्यके कलाकार हैं जो कलम चलानेके साथ ही हाथ-पाँव हिलाना भी जानते हैं। अपने क्रान्ति-जीवनकी विद्रोही भावनाओंको उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' में बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। उनका विश्वास है कि वर्तमान लेखकको साहित्यिकके अलावा राजनीतिज्ञ भी होना चाहिये। यदि साहित्य मानव-हृदयकी आँखोंको खोलता है तो राजनीति उसकी बौद्धिक-चेतनाको उत्प्रेरित करती है। इसलिए आज बुद्धि और हृदयके समन्वयकी बड़ी आवश्यकता है।

विचारक अज्ञेय—अज्ञेयके लिए जीवन एक अविराम संघर्ष है। जीवनकी विषम परिस्थितियोंका डटकर मुकाबला करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है। संघर्षका दूसरा नाम प्रगति है। प्रगति जीवनका साध्य नहीं, साधन है। भाग्य और भगवान्की अलौकिक शक्तिमें अत्यधिक आस्था रखना अपने अहंकी हत्या करना है। अहंका स्वतन्त्र विकास होना ही चाहिये। इसका विकास दूसरोंके कल्याणार्थ होना चाहिये। जीवनकी विषण्ण परिस्थितियोंके सामने आत्मसमर्पण करना मानव-मनकी बहुत बड़ी कमजोरी है। अतः अविश्रान्त भावसे जीवनकी विभीषिकाओंका वीरता पूर्वक सामना करते हुए

जीवन-यापन करना ही श्रेयस्कर है। अज्ञेयके जीवन-दर्शनका यही सारांश है। ये न तो जैनेन्द्रकी तरह जीवन-संग्राममें हारकर, थककर आत्मसमर्पण करना चाहते हैं और न भगवतीचरण वर्माकी तरह जीवनसे निराश होकर 'दीवानोंकी बस्ती' बसानेके लिए इस जगती-तलसे दूर, क्षितिजके उस पार, कहीं दूर, बहुत दूर पलायन करनेकी कामना करते हैं। जीवनकी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओंपर चलकर अपने लक्ष्यतक पहुँचना अज्ञेयके जीवन-दर्शनका एक-मात्र ध्येय है। प्रत्येक व्यक्तिको जन्मजात स्वतन्त्रता मिली है। इसलिए उसे यह अधिकार है कि वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तिगत विचारोंका निदर्शन भी करे। विचारक अज्ञेयने हिन्दीको राजनीतिक साहित्यकी भेंट दी है। उनकी कहानियोंका बहुत बड़ा हिस्सा राजनीतिक जीवनसे सम्बन्ध रखता है।

विरही अज्ञेय—अज्ञेयके व्यक्तित्वमें जागरूक शक्ति होते हुए भी हम उनके अन्तरतममें अव्यक्त और अस्पष्ट 'वेदनाकी गाँठ' पाते हैं। प्रो० प्रभाकर माचवेने एक प्रश्न उठाया है—"अज्ञेय जैसे सिपाही कलाकारके अन्तरतममें कौन-सी ऐसी वेदनाकी गाँठ है जिससे उन्होंने विपथगा'का समर्पण इस प्रकार किया है—'अपने विपथगा जीवनमें जिसका स्नेह मैंने पाया, उसी बहिन इन्दुको।' निर्माता अपनी जीवनीको विपथगा क्यों समझ बैठे? कौन-सी अतृप्ति उसके प्राणोंको कुरेद रही है?' यह 'बहिन इन्दु' कौन है?"—यह प्रश्न कुछ उसी प्रकारका है जिस तरह अंग्रेजी कवि वड्र्सवर्थके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली लड़की 'लूसी'के बारेमें अक्सर प्रश्न उठता है—यह लूसी कौन है? यह एक रहस्य है जिसके बारेमें हम कुछ नहीं जानते। अपनी कविताओं और कुछ कहानियोंमें अज्ञेयके हृदयकी वेदना बहुत कुछ प्रकट हो गयी है। वे मनकी पीड़ाको बहुत कुछ दबानेकी चेष्टा करते हैं लेकिन वह स्वतः सतहपर उभर ही आती है। अपनी कविताओंमें ये अक्सर पथिकके रूपमें दिखायी पड़ते हैं—

जाना ही है तुम्हें, चले तब जाना,
पर प्रिय, इतनी दया दिखाना,
मुझसे मत कुछ कह कर जाना!

× × ×

आज चल रे, तू अकेला !
कूच का सामान कर अब,
आ गयी प्रस्थान – बेला......

कभी--कभी कवि अज्ञेय निराशाकी न जाने किस वेदनाकुलतामें डूबे जान पड़ते हैं—जैसे, 'आज चिन्तामय हृदय है', 'प्राण मेरे थक गये हैं।' प्रश्न होता है कि कविकी वेदनाकुलताका मूल कारण क्या है? वह इस प्रकारकी पंक्तियाँ बार-बार क्यों लिखता है—'यही है मानवताका जीवन—यह अन्धकारमें अशान्ति, उन्मादमें जलन, विश्वासमें अनिश्चय, सम्पन्नतामें विद्रोह, रात्रिकी प्रशान्त गतिमें यह अपूर्ति और ललकार' जिनका ध्यान हमारे हृदयोंको दृढ़ बनाकर हमें अपने-आपको और अपने कर्मोंको निरपेक्ष दृष्टिसे देखनेको बाधित करता है; जिनकी स्मृति खड्गधारकी तरह संकीर्ण और बज्रकी तरह कठोर कर्त्तव्यपथपर चलनेके लिए हमें शक्ति प्रदान करती है, उन्हीं आदर्शमूर्तियोंको (विपथगा कहानी) सादर समर्पित।' अज्ञेयने अपनी बहुत-सी कहानियोंको 'इन्दु' 'बिन्दु' जैसी बहिनोंको समर्पित किया है यह निश्चयके साथ कहना कठिन है कि इन बहिनोंका लेखकके जीवनके साथ कौन-सा सम्बन्ध है। फिर भी, सजग पाठकोंको यह स्वीकार करते देर नहीं लगती कि अज्ञेयकी कहानियोंमें बहिन और भगिनी-प्रेमका बड़ा विचित्र जिक्र आया है। पता नहीं किस क्षण वह भगिनीत्वकी सीमा लाँघकर प्रेमिकाके समक्ष आ बैठती है। 'शेखर' की राशि ऐसी ही है। अज्ञेयका यह नारी-चित्रण बड़ा कुतूहलास्पद है जो न माता है, न बधू।' इनके इस 'भगिनी-प्रेमसे सहसा अंग्रेजी कवि रोजेटी (Rosetti) की याद आ जाती है जिसकी बहन स्वयं मानो एक करुण कविता थी।' अज्ञेयकी 'रोज' शीर्षक कहानीकी मालती एक ऐसी ही भगिनी है। इस कहानीमें जहाँ लेखक यह कहता है कि 'मालती मेरी दूरके रिश्तेकी बहन है, किन्तु उसे सखी कहना ही उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर सम्बन्ध सख्यका ही

रहा है' वहाँ वह दूसरे स्थानपर यह लिखता है कि 'वह एकटक मेरी ओर देख रही थी, किन्तु उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं।' ये पंक्तियाँ यह स्पष्ट कर देती हैं कि मालती लेखककी पूर्व-प्रेमिका अवश्य रही होगी। अज्ञेयमें निराशाकी जो अस्फुट रेखाएँ यत्र-तत्र पायी जाती हैं उनमें प्रेमकी ठोकरने अवश्य रंग भरा होगा तभी तो लेखक कभी-कभी अव्यक्त वेदनासे विक्रान्त हो उठता है।

हिन्दी-साहित्यमें अज्ञेयका स्थान—मैं कह आया हूँ कि अज्ञेय जैनेन्द्र-स्कूलके कहानीकार हैं। हिन्दी कहानीमें यों तो सन्, २४ में अज्ञेयकी पहली कहानी इलाहाबादकी स्काउट पत्रिका 'सेवा'में छप चुकी थी और जैनेन्द्रकी पहली कहानी 'खेल' १९२८ में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। लेकिन हिन्दीमें मनोवैज्ञानिक साहित्यके श्रीगणेशका पथ-प्रदर्शन करनेका श्रेय जैनेन्द्रको ही दिया जाना चाहिये। १९३० के पहले अज्ञेय निर्माण-की स्थितिमें थे। इनका वास्तविक रचना-काल १९३१ से प्रारम्भ होता है। कहानीकार अज्ञेयका जन्म तबतक नहीं हुआ था जबतक वे १९३० नवम्बरमें, षड्यन्त्रके अभियोगमें, गिरफ्तार नहीं हुए थे। इनकी साहित्य-साधना जेलोंमें ही फली-फूली है। इसीलिए हमने अज्ञेयको जैनेन्द्र-स्कूलके कहानीकारोंमें स्थान दिया है। १९२९ में जैनेन्द्रका प्रसिद्ध उपन्यास 'परख' प्रकाशित हो चुका था। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दीमें उपर्युक्त दो कहानीकारोंका आगमन यद्यपि एक ही कालमें हुआ तथापि कहानी-सृजनकी परिपक्वताकी दृष्टिसे अज्ञेयके पहले जैनेन्द्र ही अधिक पुष्ट लेखक, हिन्दी कहानीमें नयी सजधजके साथ आये।

यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि सिर्फ २० सालकी अवस्थामें ही अज्ञेय 'विपथगा', 'रोज' जैसी उच्चकोटिकी कहानियाँ लिख चुके थे। हिन्दी कहानी-साहित्यमें अज्ञेयका आगमन एक आकस्मिक घटना है। जैनेन्द्रने हिन्दीमें जिस प्रकारकी मनोवैज्ञानिक रचनाओंकी नीव डाली उसका समुचित विकास अज्ञेयने किया। वस्तुतः जैनेन्द्रके बाद अज्ञेय ही ऐसे कहानी-लेखक हैं जिन्होंने मनोविज्ञानको इतनी दूरतक खींचकर अनेक

उच्च कोटिकी कहानियाँ लिखीं। श्री इलाचन्द जोशीका भी कहना है कि 'जैनेन्द्रजीके बाद हिन्दी मनोवैज्ञानिक साहित्य (उपन्यास-कहानी) क्षेत्र-में अज्ञेयजीका नाम लिया जा सकता है।' इस दृष्टिसे वर्तमान हिन्दी-साहित्य-में उन्होंने एक अच्छा ऊँचा स्थान बना लिया है।

कई दृष्टियोंसे अज्ञेय जैनेन्द्रसे बहुत आगे निकल गये हैं। दो-तीन बातें बहुत स्पष्ट हैं :—

जैनेन्द्र और अज्ञेय—जैनेन्द्रने जहाँ अपने अहंकी हत्या की वहाँ अज्ञेयने इसकी रक्षा की है। यद्यपि दोनोंने अहंकी शक्तिको स्वीकार किया है तथापि दोनोंके व्यक्तित्वमें अन्तर पड़ गया है। बात यह है कि जैनेन्द्रको संघर्षकी अपेक्षा समझौता ही अधिक स्वीकार है; इसके विपरीत अज्ञेय जीवनमें अवि-राम संघर्ष बनाये रखना चाहते हैं। जैनेन्द्रके अहंकी हत्या तब हो जाती है जब वे जीवनकी उलझी गाँठोंको खोलनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। तब इनके लिए एक ही रास्ता रह जाता है—आत्मसमर्पणका। जीवनकी विकट परि-स्थितियोंके सामने आत्म-समर्पण करना, अज्ञेयकी दृष्टिमें मानव-मनकी बहुत बड़ी कमज़ोरी है। जैनेन्द्रके चरित्र परिस्थितियोंके दास होते हैं, अज्ञेयके चरित्र परिस्थितियोंपर अपने व्यापक अहंकी शक्तिके ज़ोरसे, विजयी होना चाहते हैं। जैनेन्द्रको भाग्य और भगवानका अस्तित्व, सत्ता और महत्ता स्वी-कार है; लेकिन अज्ञेयके लिए ये कोई विशेष अर्थ नहीं रखते।

जैनेन्द्र मनः संसारको छोड़कर वास्तविक संसारमें आना पसन्द नहीं करते क्योंकि उनका विश्वास है कि व्यक्तिके माध्यमसे ही समाज राष्ट्र और विश्वके विषम जीवनका अध्ययन किया जा सकता है। ये आरम्भसे अन्ततक मनोविश्लेषक बने रहे। बाहर संसारमें क्या हो रहा है, इसके प्रति जैनेन्द्र बिलकुल निश्चेष्ट और अकर्मण्य हैं। इसके विपरीत अज्ञेयने व्यक्ति-जीवन-के आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षोंको लिया है। बाह्य-जीवनकी विषमताका कारण है अर्थका संतुलन, ये इस बातको कभी नहीं भूलते। अज्ञेयकी राज-नीतिक कहानियोंमें, जैसे 'विपथगा' उन्होंने आधुनिक विश्वमें होनेवाले युद्धके कारणोंकी खोज की है। जैनेन्द्रके पात्र समाजसे संघर्ष न कर अपने मनकी

कमजोरियोंसे ही बेतरह उलझे रहते हैं। उनके लिए व्यक्ति एक पहेली है। यद्यपि अज्ञेय फ्रायडवादी हैं तथापि उनके पात्र सामाजिक संघर्षके प्रति भी सजग होते हैं। इनका संघर्ष अपने प्रति और समाजके प्रति भी है। बाह्य और अन्तरका समन्वय अज्ञेयकी कलाकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ये जैनेन्द्रकी अपेक्षा कम व्यक्तिवादी हैं क्योंकि इनका विश्वास है कि लेखकको पूर्ण रूपसे अनुभूति, भावना और कल्पनाका पुतला नहीं होना चाहिये। जीवन एकांगी नहीं है। जीवनकी सम्पूर्णता बाह्य और आन्तरिक जीवनकी एकतामें है। जैनेन्द्र इस बातको भूल जाते हैं क्योंकि ये मूलतः एक दार्शनिक हैं और अज्ञेय राजनीतिज्ञ। इसलिए जैनेन्द्र जहाँ भावुक हैं वहाँ अज्ञेय चिन्तक हैं।

जैनेन्द्रकी अपेक्षा अज्ञेयमें विद्रोहका स्वर काफ़ी ऊँचा है। भारतीय समाजकी रूढ़ि-प्रियता, वर्तमान विश्वकी शक्ति-लोलुपता आदिपर अज्ञेयने मार्मिक चोटें की हैं, उनपर इन्होंने व्यंग्यके छींटे छोड़े हैं, प्रहार किये हैं। जैनेन्द्रमें विद्रोही-स्वर है लेकिन वह नक्कारखानेके सामने तूतीकी आवाज है। उनका विद्रोही समर्पण और सहानुभूतिकी गरमी पाकर मक्खनकी तरह--'संत हृदय नवनीत समाना'--पिघलकर सदय हो जाता है। अज्ञेय झुकना बिलकुल नहीं जानते। जैनेन्द्र, एक संतकी तरह सिर्फ देना-ही-देना जानते हैं, लेना नहीं। अज्ञेयका व्यवहार पारस्परिक है। ये लेना-देना दोनों जानते हैं। लेखककी हैसियतसे ये अधिक व्यावहारिक और सामाजिक हैं। जैनेन्द्रमें बोझिल दार्शनिकताकी अतिशयताके कारण बौद्धिकता कम, भावुकता ज्यादा है। इससे इनकी व्यावहारिकता और सामाजिकतापर हमारा सन्देह पुष्ट और स्वस्थ होने लगता है। दूसरे शब्दोंमें, यह कहा जा सकता है कि यदि जैनेन्द्रका विद्रोह भावात्मक है तो अज्ञेयका बौद्धिक और आर्थिक।

वेदनानुभूति जैनेन्द्रमें बहुत ज्यादा है। अज्ञेयमें भी इसका थोड़ा बहुत अंश अवश्य है लेकिन ये जहाँ अपनी व्यक्तिगत निराशा और क्षोभका

सामूहिक और सामाजिक जीवनकी बलिवेदीपर, बलिदान कर देते हैं वहाँ जैनेन्द्रकी वेदना स्थिर बनी रहती है।

अज्ञेय और जैनेन्द्रकी कहानियोंके केन्द्रमें नारी अवस्थित होती है। दोनों इसकी समस्याओंके प्रति सजग होते हैं। दोनोंके दृष्टिकोण नारीके प्रति उदार हैं लेकिन दोनोंके स्वरूपमें, व्यवहार, और क्रियामें अन्तर है। अज्ञेय नारी-पुरुषके रँगीले मनकी मैना ही नहीं है वरन् वह अपने अधिकारोंके प्रति जागरूक भी हैं। 'हर सिंगार' कहानीमें उन्होंने लिखा है—'स्त्रीके बिना कुछ भी अच्छा नहीं है, कुछ भी मधुर नहीं है, कुछ भी सुन्दर नहीं है; स्त्री–जो केवल स्त्री ही नहीं, संसारकी कुल सुन्दर और मधुर वस्तुओंकी प्रतिनिधि है।' यह नारीका सुन्दर रूप है जिसपर प्रत्येक जवान आदमी अपना सब-कुछ कुर्बान करनेके लिए तैयार रहता है। 'विपथगा' शीर्षक कहानीमें नारी क्रान्तिकारीका रूप धारण करती है। वह साम्यवाद-की उपासिका हैं जो लेखककी अहिंसात्मक क्रान्तिपर व्यंग्यके छींटे डालते हुए उसकी खण्डनात्मक आलोचना करती हुई कहती है—'क्रान्तिका विरोध करोगे, उसे रोकोगे, तुम? सूर्यका उदय होता है, उसको रोकनेकी चेष्टा की है? समुद्रमें प्रलय-लहरी उठती है, उसे रोका है? ज्वालामुखीमें विस्फोट होता है, धरती कांपने लगती है, उसे रोका है? क्रान्ति सूर्यसे भी अधिक दीप्तिमान, प्रलयसे भी अधिक भयंकर, ज्वालासे भी अधिक उत्तप्त, भूकम्प-से भी अधिक विदारक...उसे क्या रोकोगे।' फिर वह अहिंसात्मक क्रान्तिकी निरर्थकतापर मार्मिक चोट करते हुए कहती है—'अहिंसात्मक क्रान्ति! जो भूखे, नंगे, प्रपीड़ित हैं, उनको जाकर कहोगे, चुपचाप बिना आह भरे मरते जाओ! भयंकर सर्दीमें बर्फके नीचे दबते जाओ, लेकिन इस बातका ध्यान रखना कि तुम्हारी लोथ किसी भद्र पुरुषके रास्तेमें न आ जाये! रोते हुए बच्चेसे कहोगे, माताकी छातियोंकी ओर मत देखो, बाहर जाकर मिट्टी पत्थर खाकर भूख मिटाओ! और अत्याचारी शासक तुम्हारी ओर देखकर मन ही मन हँसेंगे और तुम्हारी अहिंसाकी आड़में निर्धनोंका रक्त चूसकर ले जायँगे। यह है तुम्हारी शान्तिमय क्रान्ति, जिसका तुम्हें

इतना अभिमान है।' यह स्मरण रखना चाहिये कि उपरिलिखित बातें लेखक-ने एक रूसी नारीके मुँहसे कहवायी हैं। भारतीय नारियाँ, उसकी दृष्टिमें कोमलता और करुणाकी मूर्तियाँ हैं। इस देशकी बन्दिनी नारियाँ भी दासता-की कड़ियाँ तोड़कर, खुली हवामें आना चाहती हैं, पुरुषकी प्रतिद्वन्दी बन कर नहीं, उसकी संगिनी बनकर। जैनेन्द्रका नारी-विद्रोह प्राचीन रूढ़िगत विश्वासोंकी धूल और धुएं में ओझल हो जाता है।

यहाँ हमने जैनेन्द्र और अज्ञेयमें मौलिक अन्तरकी रेखाओंको ही अलग करनेकी चेष्टाभर की है। अब हमें कहानीकार अज्ञेयका अध्ययन करना है।

कहानीकार अज्ञेय—अज्ञेयके विप्लवी तथा विस्फोटक व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति इनकी कहानियों और उपन्यासोंमें हुई है। इधर हालकी प्रकाशित रचना 'शरणार्थी' में उन्होंने भारतीय शरणार्थियोंकी दयनीय अवस्थाका चित्रण किया है। इनकी कहानियोंका एक ऐसा वर्ग है जिन्हें हम राजनीतिक कहानियाँ कह सकते हैं। इनमें विदेशी वातावरण (रूस और चीन) की सृष्टि की गयी है। वैदेशिक पृष्ठभूमिपर कहानी लिखनेकी परिपाटी अज्ञेय-ने ही शुरू की। 'विपथगा', 'मिलन', 'हारिति', 'अकलंक' और 'एकाकी तारा' ऐसी ही कहानियाँ हैं। इनमें पात्र और घटनाएँ विदेशी चादर ओढ़-कर सामने आये हैं। इन कहानियोंमें लेखकने नारीकी दृढ़ता और कार्य-शक्तिकी निपुणताका परिचय दिया है। इनमें नारी-पुरुषके प्रेम और देश-प्रेमके संघर्षका द्वन्दात्मक चित्रण किया गया है। कर्त्तव्य बड़ा है या प्रेम इसकी विवेचना की गयी है।

अज्ञेयकी दृष्टिमें कहानीकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'कहानी जीवनकी प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है, जो उम्रभर मिलती है और समाप्त नहीं होती।'[१] कहानी-कार अज्ञेयके बारेमें प्रो० प्रभाकर माचवेके निम्नलिखित विचार हैं—"अज्ञेय सिर्फ कहानी नहीं कहता। वह साथमें चोट देते चलता है। कहानीके लिए कहानी लिखना उसने सीखा ही नहीं।......दो ही चीजें तो अज्ञेयकी

---

१. विपथगाकी, 'कड़ियाँ' शीर्षक कहानीमें पृ. २२२.

कथाके प्राण हैं—एक तो बन्दी-जीवनकी झनझनाती हुई जंजीरें और अपरिवर्त और अडिग खड़े सींखचोंको तोड़कर भाग खड़े होनेवाली मुक्ति-लिप्सा · · · · वह दुनियाकी स्वीकृत शासन-व्यवस्था और नीति-मूल्योंके विरुद्ध तनकर खड़ा हो जाना चाहता है और कहता है—'खतरोंका चुम्बन ही जीवन !' या नीत्शेके शब्दोंमें ज्वालामुखीके पास अपने घर बनाओ, सदा युद्ध भावनामें रँगे रहो। और दूसरी चीज है, भावनाके सूक्ष्म तारोंको हलकेसे छोड़ जाना, मनोविज्ञानके लोकमें वह नयीसे नयी गुत्थी स्पर्श मात्रसे खोलकर दिखाना जिसे किसीने आजतक छुआ नहीं हो और भावुक पाठकको अपनी कवितामयतासे मर्माहित कर देना। इस प्रकारकी कहानियोंमें गहरी वेदनानुभूति प्राधान्य है, मानो वे रोजेटी (Rosetti) की सुकुमार पंक्तियोंमें कहती हैं—

'The rose saith in the dewy work
I am not fair;
Yet my loveliness is born
Upon a thorn.'

"सिपाही और चित्रकार-कविकी दोहरी भूमिका उनकी कथाओंमें स्पष्ट बिम्बित दीखती है। पर अंग्रेजीका प्रभाव कहो या बन्दी-जीवनकी मनोभूमिकी ही कुछ विकृति कहो, कई जगह अज्ञेयजी भावुकसे कहीं ज्यादा चिन्तनशील दीख पड़ते हैं। उनके कथा-लेखनके विकासेतिहासमें निश्चय ही दो खण्ड हैं–एक तो 'अमर बल्लरी', "मैना", "सिगनेलर", रेलकी सेटी' आदि संवेदनात्मक और हलके गहरे रोमांससे रंगी-भावना-प्रधान चीजें। और अब बन्दी गृहसे छूटकर आये हुए अज्ञेयने कथा द्वारा वर्तमान सभ्यताके वैषम्यपर व्यंगोपहासपूर्ण ध्वनिसे जो मार्मिक और कठोर चोट देनेकी यह नयी बात विकसित हुई है उसके उदाहरण हैं–'सभ्यताका एक दिन' 'नयी' कहानीका प्लाट', 'राधाका नाच', 'कोठरीकी बात:' 'नम्बर दस' आदि। ये सब नाम 'विपथगा' के बाहरके हैं।" विपथगा' में 'रोज' ही एक ऐसी कहानी है जिसमें हमें अज्ञेयकी उपर्युक्त दोहरी प्रवृत्तियोंका सामूहिक दर्शन

होता है—मालतीके प्रति लेखककी वेदनानुभूति, उसके वियोगकी पीड़ा और भारतीय नारी-जीवनकी दयनीय स्थितिका चित्रण। 'अज्ञेयजीने 'रोज' में भारतीय कुटुम्बकी इस बड़ी गहरी त्रुटिका विश्लेषण किया है, जिसे दूर किये बिना वह श्मशान बना जा रहा है—मुर्दोंकी बस्ती, फिर ऐसे कुटुम्बों-की समष्टि, समाजमें जीवन कहाँसे आवे। 'आहार निद्रा भय मैथुन' के सिवा कुटुम्बमें एक जिन्दादिली, एक चहलपहल भी होनी चाहिये। हमारे जीवनमें तो दिन-रात वही पसीना, वही पसीना। . . . कोई स्वस्थ विनोद वा बौद्धिक मनोरञ्जन जीवनका एक दैनिक अङ्ग हुए बिना, अपने यहाँ अनेक कुटुम्बोंकी आज वही दशा हो रही है जो हम 'रोज' के कुटुम्बकी पाते हैं।'[1] अज्ञेयकी ये पंक्तियाँ वर्तमान भारतीय कौटुम्बिक जीवनपर मार्मिक चोट करती हैं—'मैंने देखा कि सचमुच इस कुटुम्बमें गहरी, भयंकर छाया घर कर गयी है, उसके जीवनके इस पहले ही यौवनमें घुनकी तरह लगी गयी है, उसका इतना अभिन्न अङ्ग हो गयी है कि उसे पहचानते ही नहीं; उसकी परिधिमें घिरे हुए चले जा रहे हैं।'

उस व्यक्तिकी मनोदशाका क्या ठौर-ठिकाना जो 'जीवनके उस गति-संसार और गति-संगीतसे जबरन बंचित कर दिया गया, जिसे अपनी तंग कोठरी, जँगले और पहरेदारोंकी अँधेरी दुनियामें डाल दिया गया है। ऐसी दशामें बन्दीकी एक अपनी खास मनोदशा बन जाती है, जो अनन्य साधारण है। मनोविज्ञानके लिए चाहे वह बड़ा दिलचस्प मसाला हो मगर उस बन्दीके मसले हुए दिलके लिए दिलचस्पी कहाँ? . . चिरन्तन स्थितिमयतापर खड़े होकर सदा गतिमय जीवनकी ओर देखनेवाले ये बन्दी दो तरहके हो जाते हैं, जैसी जिसकी जीवन-स्वीकृति-सामर्थ्य हो। एक तो वे जो 'प्राप्त' के साथ समझौता कर लेते हैं, दार्शनिक बन जाते हैं, पर दूसरे वे होते हैं जिनमें रक्त उबलता है, जिनमें दूषित, शोषक, और केन्द्रहीन दुर्व्यवस्थापर क्रोध उपजता है। . . . वे मानव-मनमें मानवताकी उपेक्षा और दलित पतनोन्मुखताके प्रति आकुल सहवेदना और कभी-कभी अगाध

---

[1] इक्कीस कहानियाँ. भूमिका, पृ० ६१—६२

हार्दिक क्षोभमय तिरष्कार जागृत करते हैं--संक्षेपमें जो अज्ञेयके समान जेलमें भी 'पगोडा वृक्ष' या 'विपथगा' लिखते हैं ।' अज्ञेय ऐसे ही क्रान्तिकारी लेखक हैं । इनका यह रूप दिनोंदिन उग्र होता जा रहा है ।

अज्ञेयकी कहानी-कला—कहानीकार अज्ञेयकी कहानियोंके दो रूप हैं--पहली तरहकी वे कहानियाँ हैं जिनमें लेखकने 'भारतीय समाज-जीवनके कारुणिक खण्ड-चित्र उपस्थित किये हैं। 'रोज', 'हरसिङ्गार', 'दुःख और तितलियाँ', आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं । दूसरे प्रकारकी वे कहानियाँ हैं जिनसे राजनीतिक विद्रोहकी चिनगारियाँ प्रज्वलित हैं । इनमें लेखकने विदेशी वातावरणकी सृष्टि की है । अज्ञेयकी कहानियोंका सामूहिक दृष्टिसे अध्ययन करनेपर ही उनकी कहानी-कलाका मूल्य आँका जा सकता है। यदि हम उनकी कहानियोंके दो वर्ग न भी बनायें तो भी उनमें एक बात सामान्य रूपसे पायी जाती है । वह यह कि इनकी लगभग समस्त कहानियोंमें प्रेम और कर्त्तव्यके तुमुल संघर्षका अच्छा निदर्शन हुआ है । 'रोज' कहानीकी नायिका मालतीके अन्तर्द्वन्द्वोंका बड़ा ही कारुणिक चित्र खींचा गया है । मालतीके पति डॉ० महेश्वरकी अनुपस्थितिमें लेखक आता है और वह मालतीके दुःखसे उठते गिरते भावोंको अच्छी तरह पढ़नेकी चेष्टा करता है । वह लेखकको एकटक देखती है लेकिन उसकी दृष्टि उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं । तत्काल लेखक उसकी आँखोंके सागरमें बहती हुई भाव-लहरियोंको गिनने लगा । वह उसके मनका विश्लेषण करने लगा---'उन आँखोंमें कुछ विचित्र-सा भाव था; मानों मालतीके भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती बातको याद करनेकी, किसी बिखरे हुए वायुमंडलको पुनः जगाकर गतिमान करनेकी, किसी टूटे हुए व्यवहार-तन्तुको पुनरुज्जीवित करनेकी, और चेष्टामें सफल न हो रहा हो ।··· लेखक भी स्वयं अन्तर्द्वन्द्वकी चक्कीमें पिस रहा है। उसके आते ही पहले तो मालती प्रसन्न होती है लेकिन शीघ्र ही उसका मुँह मलिन पड़ जाता है । 'मुझे देखकर, न पहचारकर उसकी मुरझाई हुई मुख-मुद्रा तनिकसे मीठे विस्मयसे जागीसी और फिर पूर्ववत् हो गयी ।' मालती अपने मनकी उलझनमें पड़ी है। लेखक भी अपनी भावनाओंके माया-जालमें फँसा है । वह

कहता है—"काफी देर मौन रहा।' ' ' ' 'मालतीने कोई बात ही नहीं की—यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसे आया हूँ--चुप बैठी है, क्या विवाहके दो वर्षमें ही वे बीते दिन भूल गयी ? या अब मुझे दूर--उस विशेष अन्तरपर--रखना चाहती है ?' यह है अज्ञेयके हृदयकी वेदनाकी गाँठ जिसको सुलझानेके लिए उन्होंने अनेक बार प्रयत्न किये हैं। लेखक अपनेको सँभाल लेता है। वह मालतीकी मौजूदा स्थितिको जाननेकी चेष्टा करता है--मालती अब माँ है, किसीकी पत्नी है, इस महान् परिवर्तनने उसके जीवनकी निर्बाध स्वच्छन्दताका अपहरण कर लिया है। 'हरसिङ्गार'में भी इसी तरह मानसिक संघर्षका सफल वर्णन किया है। इस कहानीका नायक गोविन्दके शब्दोंमें जैसे स्वयं अज्ञेय अपने जीवनकी वेदनाका इतिहास कह रहे हों--'एक ही बार स्त्रीने उसके जीवनमें पैर रखा, वही पद-चिह्नकी तरह पड़ी है—वह फूलोंकी माला।' गोविन्द एक अनाथ है जो गीत और भजन गा-गाकर भीख माँगता है। उसे एक युवतीसे प्रेम हो गया है। वह सोचता है—'वह माँके मरनेपर अनाथ नहीं हुआ, बापके मरनेपर नहीं, समाजसे निकलकर नहीं, पर अनाथालयमें आकर अनाथ हो गया।' प्रेमकी चोट अनाथको भी अनाथ बना देती है।

प्रेम और कर्त्तव्यके संघर्षका मार्मिक चित्रण करना अज्ञेयकी कहानी-कलाकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अन्तर्द्वन्द्वका सजीव वर्णन उन्हीं स्थलोंपर हुआ है जहाँ ये--प्रेम और कर्त्तव्य—आपसमें टकराने लगते हैं। मनका विश्लेषण (Psycho-analysis), ऐसे अवसरपर देखते ही बनता है। हृदयकी वेदनाकुलताको वाणी दी गयी है। ऊपरकी पंक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि अज्ञेयकी कहानी-कलामें मनोवैज्ञानिक चित्रणके लिए काफी गुंजाइश है। चरित्र-चित्रणमें इसका सफल निर्वाह हुआ है।

अज्ञेयकी कहानियोंमें व्यक्तिके जीवनके किसी एक पहलूका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। इसलिए ये कहानियाँ घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान हैं। अज्ञेय घटनाओंका वर्णन नहीं करते; जीवनके किसी एक मार्मिक खण्डका चित्रण ही सर्वत्र हुआ है। इनकी कहानियोंमें प्लाट या कथावस्तु,

बहुत ही सूक्ष्म और संक्षिप्त होती है, एक तरहसे होती ही नहीं। प्रत्येक कथानकमें लेखकका व्यक्तित्व झलकता हुआ होता है। अपनी कहानियोंमें अज्ञेयने अपनेको छिपाने या सँवारने-बनानेकी चेष्टा कभी नहीं की। वे जैसे हैं, उनकी कहानियाँ भी वैसी ही हैं। व्यक्तिगत जीवनके अनुभवों, आशा-निराशा (सामाजिक या राजनीतिक) का यथार्थ चित्रण करना इस लेखकका ध्येय है। कहानी लिखनेके लिए उसे क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ती। उसका जीवन स्वयं कहानीका न समाप्त होनेवाला कथानक है। हम सर्वत्र अज्ञेयको पा लेते हैं। हिन्दीके दूसरे कहानीकारों—प्रेमचन्दको छोड़कर—में यह बात नहीं पायी जाती। इसके अतिरिक्त, अज्ञेय भी जैनेन्द्र-की तरह कहानीकी रूप-रचना या फार्मकी परवाह न कर 'क्या कहना है', इसकी परवाह करते हैं। इसलिए इनकी प्रत्येक कहानीकी शैली अलग-अलग है। लेखकने अपने विचारों और भावोंको ही व्यक्त करनेपर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। मनोवैज्ञानिक गुत्थियोंको सुलझानेमें ही वह अधिक व्यस्त है।

अज्ञेयने कहानीको 'जीवनकी अधूरी कहानी' कहा है। इसका सफल निर्वाह उनकी कहानियोंमें हुआ है। अज्ञेय कोई भी समस्याको खड़ी कर, उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कर अन्तमें उसे ज्योंकी त्यों छोड़ देते हैं। प्रेमचन्द और जैनेन्द्रने उन समस्याओंका समाधान निकाल दिया है लेकिन इसके विपरीत, इनकी कहानियोंमें जीवन अधूरा है, उसकी समस्याएँ अधूरी हैं, मनुष्य स्वयं अधूरा है। इस लेखककी लगभग समस्त कहानियोंमें व्यक्ति किसी अज्ञात मनोभावोंके भँवरमें डूबता उतराता होता है। वह किसी निष्कर्ष-पर पहुँचता ही नहीं। 'रोज़' कहानीका अन्त इन पंक्तियोंसे हुआ है—'मालती चुपचाप ऊपर आकाशमें देख रही थी; किन्तु क्या चन्द्रिका को ? या ताराओंको ? तभी ग्यारहका घण्टा बजा। · · · · ग्यारहके पहले घण्टे-की खड़कनके साथ ही मालतीकी छाती एकाएक फफोलेकी भाँति उठी और धीरे धीरे बैठने लगी और घण्टा 'ध्वनिके कम्पनके साथ ही मूक हो जाने-वाली आवाजमें उसने कहा—ग्यारह बज गये !' 'हरसिंगार' कहानीका

अन्त इस प्रकार हुआ है—'तब क्या आगेके उस विराट अन्धकारमें एक भी किरण नहीं है, इस मरुस्थलमें, जिसे उसने नहीं बनाया, क्या एक भी कली न खिलेगी; वहाँ बाहर सड़कपर, गलियोंमें, क्या एक भी घर नहीं होगा, एक भी मधुर स्त्री-मुख, एक भी मधुर पुकार; अनाथ जीवनकी इस विषैली रिक्तताको भरनेके लिए एक भी स्मृति, हरसिंगारका एक भी फूल ?' ये कहानियाँ न तो दुःखान्त हैं और न सुखान्त। इनमें लेखकने जीवनका एक गम्भीर प्रश्न छोड़ दिया है। इससे ये कहानियाँ प्रश्नान्त हो गयी हैं। पाठककी उत्सुकता और उत्कण्ठा आरम्भ और अन्तमें एक समान बनी रहती है। उसको शान्ति नहीं मिलती। इसीलिए साधारण पाठक इन कहानियोंको पढ़नेमें अपनी रुचि नहीं दिखलाता क्योंकि इनमें सस्ते मनोरञ्जनका पूर्ण अभाव है। ऐसा लगता है कि अज्ञेयने अंग्रेजी उपन्यासकार हार्डी (Hardy) की तरह यह फैसला कर लिया है कि जीवनमें व्यक्तिकी इच्छाओंकी पूर्ति कभी होती ही नहीं। वह सदैव घुट-घुटकर मरनेके लिए ही जीवनसे संघर्ष कर रहा है। उसके अरमान अधूरे रह जाते हैं इस जीवनमें। लेकिन यह समझ रखना चाहिये कि अज्ञेय हार्डीकी तरह निराशावादी नहीं हैं। वह 'संघर्षको कलाकी जननी' कहते हैं। उनका विश्वास है कि 'कलाकार एक प्रकारके मानसिक संघर्षमें जिया करता है।··· यह संघर्ष संकल्प और परिस्थितिमें चला करता है।' इनकी कहानियोंमें इसी 'मानसिक संघर्ष' को मूर्त रूप दिया गया है। 'खतरोंका चुम्बन ही जीवन'— यह इस लेखकके जीवन-दर्शनका सारांश है जिसका निर्वाह उसने अपनी कहानियों और उपन्यासोंमें किया है।

अज्ञेयकी कहानी-कलामें एक और नयी बात पायी जाती है। डॉ० भटनागरके शब्दोंमें इनकी 'अधिकांश कहानियाँ पात्रोंके पिछले दिनोंकी अस्फुट चित्र-कल्पनाएँ हैं। मनुष्यको जब किसी नवीन समस्याको पुरानी घटनाओंके प्रकाशमें सुलझाना होता है तो अतीतके ये चित्र सिनेमा-चित्रोंकी भाँति इस तेज़ीसे आते हैं कि हमारी धारणा-शक्ति उन्हें जहाँ-तहाँ ही पकड़ पाती है।' 'रोज' कहानीमें वर्तमान-जीवनकी घटनाओंका चित्रण कम-से-

कम और पूर्व-स्मृतियोंका वर्णन अधिक-से-अधिक हुआ है। लेखकने 'वे बीते दिन' की स्मृति की है। मालतीके विवाह होनेके पूर्व-जीवनपर भी प्रकाश डाला गया है और वर्तमानकी मनोदशाका वर्णन किया गया है। 'मालती मेरी दूरके रिश्तेमें बहिन है।'—ऐसे वाक्योंको लिखकर लेखकने पूर्व-स्मृतियोंकी पिटारी खोल दी है। सच तो यह है कि अज्ञेयको अक्सर कहानी लिखनेकी प्रेरणा भूतके किसी घटना-विशेषसे ही मिलती है। 'हरसिंगार' कहानी लिखनेकी प्रेरणा किताबके किसी पन्ने में पड़े सूखे फूलकी मालासे मिली, 'विपथगा' शीर्षक कहानीकी प्रेरणा 'सामनेकी दीवारपर टँगी हुई टूटी तलवार' को देखनेसे मिली। 'रोज'में मालतीकी मुरझायी मुख-मुद्राको देखकर उसके जीवनकी पिछली कहानी मूर्त हो उठी है। इस तरह लेखक वर्तमानकी भूमिपर खड़ा होकर भूतकी स्मृतियोंको साकार करनेमें व्यस्त दीख पड़ता है। अज्ञेयकी कहानियोंमें अवचेतन मनका बड़ा ही सफल और सुन्दर विश्लेषण हुआ है।

अज्ञेयकी कहानी-कलाकी सबसे बड़ी विजय है संकलनत्रय (three unities) का सफल निर्बाह। मैं बता आया हूँ कि किसी भी कहानीकी सफलताके लिए इसकी कितनी आवश्यकता है। इस लेखककी कहानियोंमें संकलन-त्रय—समय, स्थान और प्रस्तावकी एकता—का जितना सफल निर्वाह किया गया है उतना हिन्दीके अन्य लेखकोंकी कहानियोंमें नहीं मिलता। जैनेन्द्र और भगवतीचरण वर्मा इसके अपवाद हैं!

मैं कह आया हूँ कि अज्ञेय चित्रकार और शिल्पकार दोनों हैं। अपनी कहानियोंमें इन्होंने अपनी चित्रकारिता और शिल्पकारिताका भी परिचय दिया है। नारी हो या पुरुष—दोनोंके बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्वोंकी मूर्त तसवीर खींचनेमें अज्ञेयकी कलमको बहुत ज़्यादा सफलता मिली है। रूप-विधानकी शक्ति अंग्रेजी उपन्यासकार डिकन्समें बहुत अधिक थी। हिन्दी साहित्यमें व्यक्तित्व-चित्रण करनेकी कार्य-कुशलता, यदि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ तो कह सकता हूँ कि वह केवल अज्ञेयकी कलामें ही है। रूप-विधानके लिए शब्द-संयमकी आवश्यकता पड़ती है। यह लेखक इस कलामें निपुण

है। कुछ थोड़ेसे शब्दोंका जोड़कर जीता-जागता चित्र उपस्थित करनेमें यह लेखक सबसे आगे है। 'रोज' कहानीमें 'युवती माँ' मालती घुटनोंपर हाथ टेककर एक थकी हुई 'हुँह' करके उठी और भीतर चली गयी।' ये शब्द नारीके हृदयकी वेदनाको प्रकट करते हैं। 'मुझे देखकर, पहचानकर अपनी मुरझायी मुख-मुद्रा तनिकसे मीठे विस्मयसे जागी-सी और फिर पूर्ववत् हो गयी।' इस एक वाक्यमें अनेक भावोंका संचार किया गया है। मालतीका चेहरा मुरझाया हुआ है, लेखकको देखकर उसकी मुख-मुद्रा क्षण भरके लिए विहँस पड़ती है, फिर उसमें विस्मयका भाव जागता है और अन्तमें वह पूर्व-वत्-मुरझायी मुख-मुद्रा—हो जाती है।

आधुनिक कनानीमें नाट्यात्मकताका पर्याप्त प्रयोग किया जाता है। जो लेखक चित्रकार और शिल्पी होता है वह उस तत्त्वका अवश्य प्रयोग करता है। अज्ञेयने भी अपनी कहानियोंमें नाटकीय प्रसंगोंकी संयोजना की है। इस तरहके प्रसंगोंकी अवतारणामें लेखकको बहुत अधिक सफलता मिली है। शब्द संयम यहाँ भी देखा जाता है। 'रोज' में मालती लेखकको एकटक देख रही है (लेकिन वह लिखकर) ज्यों ही उसकी ओर उन्मुख होती है, वह अपनी आँखे नीची कर लेती है। इसमें नाटकीयता है।

अज्ञेयकी कहानी-कलामें मार्मिक व्यंग्यके छींटे डाले गये हैं। इससे लेखकका सामाजिक विद्रोह स्पष्ट होता है। लेखकके इस कथन 'पति ढाई बजे खाना खाते हैं, इसलिए पत्नी तीन बजेतक भूखों बैठी रहती हैं,' 'युवती माँ' आदि शब्दों वाक्यों——में उसके विद्रोहकी चिनगारियाँ हैं जो भावना-की राखके नीचे दबी पडी हैं लेकिन वे भड़कनेके लिए उचित समयकी ताकमें हैं। अज्ञेयने व्यंग्योक्तियों द्वारा वर्तमान सभ्यताके वैषम्यपर मार्मिक प्रहार किया है। ऐसे प्रसंगोंकी अवतारणामें लेखकने जैनेन्द्रकी तरह व्यक्तिमाध्यमसे वर्तमान विश्वकी गति-विधिका अध्ययन किया है।

कहानीकी शैलीमें ताजगी है, भाषाकी सरलता है और है स्वच्छंदता। अज्ञेयका गद्य हिन्दी गद्यकी भाषाका आधुनिकतम रूप है। भाषाके लिए हिन्दी-में लचीलापन (Flexibility) की अपेक्षा की जाती रही है वह अज्ञेय और जैनेन्द्रकी भाषामें पाया जाता है।

भगवतीचरण वर्मा

[१६०३.......

सामान्य परिचय—श्रीयुत भगवतीचरण वर्माका जन्म उन्नाव जिलेके शफीपुर गाँवमें सन् १६०३ में हुआ। इनके पिता श्री देवीचरण वर्मा कानपुरमें वकील थे। जब ये पाँच वर्षके थे तभी आपके पिताका देहान्त हो गया। अतः इनके लालन-पालनका भार उनकी मातापर पड़ा।

वर्माजीकी आरम्भिक शिक्षा कानपुरमें आर्यसमाज स्कूलमें हुई! इसके बाद उन्होंने थियोसोफिकल स्कूलमें शिक्षा पायी। स्कूलमें पढ़ते समय ही इनकी रुचि हिन्दीकी ओर हुई। इनके अध्यापक श्री जगमोहन 'विकसित'ने इन्हें हिन्दीकी ओर उत्साहित किया जो स्वयं हिन्दीके एक अच्छे कवि थे। तभीसे ये पद्य-रचना करने लगे थे। कानपुरमें जब ये सातवें दर्जेमें पढ़ते थे तभी कुछ कविताएँ वहाँसे निकलनेवाले प्रमुख पत्र 'प्रताप' में प्रकाशित हुई थीं। इस समय इनकी उम्र सिर्फ चौदह वर्षकी थी। 'प्रताप'के प्रसिद्ध सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने भी इन्हें काफी प्रोत्साहन दिया था। इनके अतिरिक्त, कानपुरके अन्य साहित्यकारों, जैसे श्री रामाशङ्कर अवस्थी, पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' तथा पं० चन्द्रिकाप्रसाद मिश्रसे भी इन्हें समय-समयपर प्रोत्साहन मिलता रहा। वर्माजी आरम्भसे ही हिन्दीके साहित्यिक लेखकोंके सम्पर्कमें रहते आये, जिसका फल यह हुआ कि उनकी साहित्यिक चेतना बहुत शीघ्र ही जाग गयी थी। केवल १८ वर्षकी अवस्थामें, १९२१ में, इनकी पहली कहानी 'हिन्दी मनोरञ्जन' नामक पत्रिकामें प्रकाशित हुई। कहानी लिखनेके पहले वर्माजी कवि थे। हिन्दीके श्रेष्ठ गद्य-लेखकोंके सम्पर्कमें रहनेके बावजूद भी पहले इनका ध्यान कविता लिखनेकी ओर गया और कविके रूपमें ही, पहले-पहल, इनका यश फैला।

कानपुरसे आई. ए. पास करनेके बादसे भगवतीचरण वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालयमें भरती किये गये। वहाँसे इन्होंने बी. ए. और एल. एल. बी. की परीक्षाएँ पास कीं। कानूनकी परीक्षा पास कर लेनेपर ये कानपुर

लौट गये और वहाँ वकालत करने लगे। सन् १९२० में इनके संरक्षक चाचा कालीचरण वर्माका देहान्त हो गया जिसके फलस्वरूप युवक वर्माके कोमल-कन्धोंपर गृहस्थीका भार अच्छी तरह आ पड़ा। केवल १७ वर्ष-की अवस्थामें इनपर मुसीबतोंका पहाड़ टूट पड़ा। 'वर्माजीका शैशवसे आज-तकका जीवन परिस्थितियोंकी उन संकीर्ण गलियोंसे गुजरा है, जिनमें मानव-का दमभरमें दम घुटने लगे। इन्हीं परिस्थितियोंके थपेड़ोंके कारण, उनके अपने संघर्षके कारण, इनके अन्दरका कलाकार संसार और मानवके प्रति संकुचित हो चला। वह इस चहल-पहलमय वातावरणमें खोखलापन महसूस करने लगा—एक विरक्ति।'

'साढ़े चार फीट लम्बे, गठे बदनपर खादीकी धोती, खादीका कुरता, सरपर खादीकी टोपी, पैरोंमें कानपुरी चप्पल और आँखोंपर काँटेदार चश्मा यह हैं मुन्शी भगवतीचरण वर्मा। भगवती बाबूकी तेजी उनकी दोनों आँखोंसे टपकती है, जब कभी वे विस्फारित नेत्रोंसे देखते हैं। उनकी बड़ी-बड़ी गोल-गोल आँखें एक प्रकाश-सा उगल उठती हैं—एक ज्वाला। 'पतन' उपन्यास इनकी आँखोंका उदाहरण है जिनमें चुम्बककी तरह दूसरोंको अपनी ओर खींचनेका आकर्षण है। प्रभातकी मटमैली सफेद-सा उनके बदनका रंग है—एकदम गेहुआँ ! माथा किसी भी गिरजाघरके विन्दुकी भाँति उन्नत है। लेकिन गाल पानकी गिलौरी और सुरतीकी ज्यादतीके कारण प्लेटोके ऊबड़-खाबड़ मैदानकी भाँति भद्दे और कुरूपदीख पड़ते हैं।'[१]

'साहित्य सन्देश' के उपन्यास अंक (अक्टूबर-१९४०) में श्री भगवती-चरण वर्माने अपने साहित्यिक जीवनपर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि साहित्यिक-जीवन सन् १९१७ में कविकी हैसियतसे शुरू होता है। उन दिनों कानपुरमें सातवें दर्जे में पढ़ता था। पहली कविता 'प्रताप' में निकली। 'प्रभा' में मैं बराबर लिखता रहा और धीरे-धीरे मैं प्रतापके ग्रूपमें शामिल हो गया। 'हिन्दी मनोरंजन' में जो विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के सम्पादकत्व-में निकलता था, मैंने कहानियाँ लिखीं। सन् १९२७-२८ तक मैं इलाहाबाद

---

१ 'साधना'—परिचयांक, अप्रैल. १९४१.

विश्वविद्यालयमें रहा और मैंने कम लिखा। १९२१ में एक उपन्यास 'पतन' गंगा पुस्तक मालासे प्रकाशित हुआ जो असफल रहा। ख्याति कवि-के रूपमें ही हुई। १६३१ ई० में कविताओंका पहला संग्रह 'मधुकण' निकला। १९३३. में 'चित्र-लेखा' उपन्यास प्रकाशित हुआ और उन दिनों मैंने लिखना आरम्भ किया। कहानियोंका हिन्दीमें अच्छा स्वागत हुआ और 'चित्र-लेखा' तो उच्च कोटिका उपन्यास मान लिया गया। सन् १६३६ में 'तीन वर्ष' प्रकाशित हुआ। इसके पहले 'इन्स्टालमेण्ट' नामसे कहानियोंका पहला संग्रह प्रकाशित हुआ। मेरा निजी ख्याल है कि मैं कवि बादमें हूँ, कहानी-लेखक और उपन्यास-लेखक पहले हूँ।"[1] यह है वर्माजीके साहित्यिक जीवनकी एक रूप-रेखा। इन दिनों ये फिल्म कम्पनियोंमें संवाद-लेखक तथा गीत-लेखककी हैसियतसे काम कर अपनी रोटीकी समस्या हल करनेमें लगे हैं। ये कलकत्तेके फिल्म कार्पोरेशनके चित्र 'आशा' के संवादगायन और थोड़ा-बहुत निर्देशनका काम भी कर चुके हैं। 'चित्रलेखा' उपन्यासका चित्र फिल्म कार्पोरेशनद्वारा प्रसिद्ध फिल्म-निर्देशक श्री केदार शर्माकी परिचालनामें तैयार हो चुका है। इसके अतिरिक्त 'तीन वर्ष' उपन्यासका भी फिल्म, निर्देशक श्री पी० सी० बरुआके निरीक्षणमें, बँगलामें, तैयार हो चुका है। वर्माजी-की समस्त रचनाओंकी तालिका निम्नलिखित है—

वर्माजीकी रचनाएँ—

कविता—	१. मधुकण
	२. प्रेम-संगीत (१९३७)
	३. मानव (१९४०)
उपन्यास—	१. पतन
	२. चित्रलेखा
	३. तीन वर्ष
	४. टेढ़े मेढ़े रास्ते
गीत-नाट्य—	१. तारा

1. साहित्य संदेश, उपन्यास–अंक।

गद्य-काव्य-संग्रह—   १. एक दिन

कहानी-संग्रह—   १. इन्सटालमेण्ट

२. दो बाँके

हिन्दी-साहित्यमें भगवतीचरणका स्थान—श्रीभगवतीचरण वर्मा आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी उन शक्तियोंमें हैं, जिनके व्यक्तित्व और सृजित साहित्यमें बिजलीकी-सी तेजी है, जिनकी भाषा जल-प्रवाहकी तरह या गायनकी स्वर-लहरीकी तरह मानव-मनमें स्पन्दन करती है. एक उद्वेलन पैदा करती है। उनके साहित्यमें लेखकके जीवन, परिस्थितियोंकी भयानक कुरूपता, उनकी विषमता और इन सबके प्रति कलाके आक्रोशका आह्वान सुनाई पड़ता है। इनकी आत्मा विद्रोह करती है और इस अन्तर-संघर्षसे निकली हुई ज्वाला इनकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों आदिमें व्यक्त हुई है। अपने व्यक्तिगत जीवनकी विषम परिस्थितियोंका यथार्थ चित्रण करनेवाला, वर्माजीको छोड़कर हिन्दीमें कोई भी दूसरा लेखक नहीं है। प्रेमचन्दने अपने जीवनके बहुतसे गुप्त भागोंपर परदा डाल दिया था, बड़ी सावधानीसे छिपा दिया था। लेकिन वर्माजीने अपने कुरूप जीवनमें जो कुछ अनुभव–बुरा या भला किया उसका ज्यों-का-त्यों चित्रण कर दिया है और यही उनकी कलाकी बहुत बड़ी विशेषता है, सफलता है। इतना होने-पर भी उन्होंने अपने अहं-भाव-व्यक्तित्वकी पूरी तरहसे रक्षा की है। वर्माजी अपने बारेमें स्वयं लिखते हैं–'आज जब मैं सोचता हूँ कि किस प्रकार अपना मस्तक ऊँचा करके मैं भूख और बेकारीसे लड़ा हूँ, किस प्रकार मैंने आत्म-सम्मान और 'अपनेपन'की रक्षा की है तब मुझे कुछ शान्ति मिलती है। दुनियामें मैंने अभीतक दुनियावालोंकी नजरमें खोया है, पाया कुछ नहीं, पर अपनी नजरमें मैंने एक महान् अनुभव पाया है, और मैं समझता हूँ कि मैं जीवनके सत्यके बहुत निकट पहुँच चुका हूँ।' वर्माजीके व्यक्तित्व और बच्चनके व्यक्तित्वमें बहुत समानता है। दोनोंमें वर्तमान जीवनके प्रति घोर असंतोष है। इसके प्रति इन दोनोंका विद्रोह भड़क उठा है। श्रीशान्ति-प्रिय द्विवेदीने इन्हें **'आवेगशील'** (क्रान्तिकारी) कवियोंके अन्तर्गत रखा है।

वर्माजीके साहित्य—क्या 'उपन्यास, क्या कहानी, क्या कविता—में उनका व्यक्तित्व झलक उठा है। सबमें हम उनके व्यक्तित्वकी झाँकी पाते हैं। कवि वर्माके व्यक्तित्व और कहानीकार वर्माके व्यक्तित्वमें कोई अन्तर नहीं है। अन्तर इतना ही है कि भगवतीचरण अपने जीवनके उषाकालमें एक मस्त कवि थे और बादमें गम्भीर विचारक हो गये, अपनी कहानियों और उपन्यासोंमें। मैं कह आया हूँ कि कहानी लिखनेके पहले वर्माजी एक कवि थे। इनका वास्तविक रचनाकाल १९२९-से आरम्भ होता है। १९३१ में इनकी कविताओंका पहला संग्रह 'मधुकण' प्रकाशित हुआ। 'मधुकण' और 'प्रेम-संगीत' के कवि भगवतीचरणमें हम एक अजीब निरालापन पाते हैं। इनमें यौवनकी पिपासा और साक़ीकी दौर चला करती थी। वे अपने अन्तरके संसारमें डूबे, खुमारीकी अवस्थामें थे। तब कवि गाता था—

पीने दे, पीने दे, ओ रूपसि ! अपने पराग की हाला !
बस मत कर देना रूपसि ! बस करना है मर जाना !!

और,

हम दीवानों की क्या हस्ती, हम आज यहाँ कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

× × ×

जीवन-सरिता की लहर-लहर,
मिटने को बनती यहाँ प्रिय।
संयोग क्षणिक ! फिर क्या जानें
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिय ?

वर्माजीके व्यक्तित्वका यह पहलू आगे चलकर दूसरे रूपमें बदल गया। उन्होंने गाया—

अब अन्तर में आह्लाद नहीं, अब अन्तरमें अवसाद नहीं;
अब अंतर में उन्माद नहीं, मैं अन्तर को कर चुका नष्ट।

अब वे अपने व्यक्तिगत जीवनकी आशा-निराशसे ऊपर उठे हैं और उन्होंने समझा है कि इस तरहके उत्पीड़क साहित्यके सृजनसे मानवताका

कल्याण नहीं हो सकता। उनकी तीसरी काव्य-पुस्तक 'मानव' में उनका पुराना स्वर बिलकुल बदल गया है। आज ये जीवनकी वास्तविकताको जाननेके लिए प्रयत्नशील है। पहले जहाँ ये हिन्दीके बायरन (Byron) थे, आज वे एक विद्रोही और क्रान्तिकारी लेखक हैं। उद्दाम-वासना और उत्कट लालसा इनकी प्रारम्भिक रचनाओंमें पायी जाती है। आज ये प्रगतिवादी साहित्यके उन्नायकोंमेंसे एक हैं। भगवतीचरण वर्माका व्यक्तित्व हिन्दीके अन्य लेखकोंसे बिलकुल भिन्न है। '१६१०-३२ ई० में जब छायावाद अपने पूर्ण उत्कर्षपर था, इस कविने मादक विद्रोहके स्वरमें, गर्व-भरी वाणी दे अपने निजी दुःख-सुख कहकर छायावाद-काव्यमें एक नयी लोक-परम्परा स्थापित कर दी।' अतएव यदि यह कहा जाय कि 'भगवतीचरण वर्माका साहित्य छायावाद और प्रगतिवादकी सन्धिपर खड़ा है' तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। आजके वर्माजी पूँजीवाद, वर्तमान सभ्यताकी बिडम्बना, विश्वके विभिन्न राष्ट्रोंकी स्वार्थ-लोलुपता, और प्राचीन परम्पराकी अन्धभक्तिके कट्टर दुश्मन हो गये हैं। उनकी कहानियों-'इन्स्टालमेण्ट' और 'दो बाँके' तथा उनकी काव्य-पुस्तक 'मानव' में इनका विद्रोही स्वर काफी बुलन्द हो गया है। आज वे वर्तमान सभ्यताको ललकारते हुए कहते हैं—

हिंसाके ताण्डव - नर्तन का
कह दो क्या होगा कभी अन्त ?
बोलो मानवकी यह पशुता
क्या है अक्षय, क्या है अनन्त ?

और भी,—

भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर !
मैं कहता हूँ खँडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम—
पीछे है पशुताका खँडहर
दानवता का सामने नगर,

मानव का कृश कंकाल लिये
चरमर - चरमर - चूँ-चरर - मरर,
जा रही चली भैंसा गाड़ी।

वर्माजीका पुराना सपना अब टूट चुका है। उन्होंने अपने बारेमें खुद लिखा है--'आज मैं जब कलवाले निजत्वपर विचार करता हूँ, तब मुझे आश्चर्य होता है। मेरा संसार बदल गया है, मेरा दृष्टिकोण बदल गया है। कलवाली कल्पनाएँ, कलवाले सपने---ये सबके सब न-जानें कहाँ गायब हो गये; आज वास्तविकताकी कुरूपतासे जकड़ा हुआ मैं, आजके संघर्षमें अपनेपनको खो चुका हूँ; यही नहीं, यह संघर्ष ही अपनापन बन चुका है।' प्रो० नन्ददुलारे वाजपेयीके शब्दोंमें 'श्री भगवतीचरण वर्माकी रचनाओंमें बराबर परिवर्तन होता जा रहा है और प्रौढ़ता बढ़ रही है। उनका व्यक्तित्व दो स्वरूपोंवाला है--एक तो मादकता और खुमारीसे भरा (पुराना रूप) और दूसरा वास्तविक विद्रोही।' वर्माजीका साहित्य महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मासे बिलकुल भिन्न है। ये बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की साहित्यिक परम्पराके एक विद्रोही लेखक हैं। यह है भगवतीचरण वर्माके साहित्यिक जीवनकी एक रूपरेखा।

भगवतीचरण वर्माका जीवन-दर्शन :—(Philosophy-of life) वर्माजीके साहित्यको अच्छी तरह समझनेके लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले हम उनके जीवन-दर्शनका अध्ययन करें क्योंकि समस्त साहित्यिक रचनाओंके पीछे उनका एक स्वतन्त्र दर्शन काम करता रहता है,। जीवनकी विषम परिस्थितियोंकी निरन्तर ठोकर खाते रहनेके कारण वर्माजीने अपने स्वतन्त्र विचार बना लिये हैं। उनकी समस्त रचनाओंमें विचारोंकी मौलिकता है, जीवन, जगत् और मानवके सम्बन्धमें उनके अपने दृष्टिकोण हैं। ये पूर्णतः नवीन और स्वतन्त्र लेखक हैं। हिन्दी-साहित्यके किसी भी दूसरे लेखकमें दर्शनकी इतनी तीव्र वैयक्तिकता नहीं पायी जाती जितनी हम वर्माजीमें पाते हैं। उनका कहना है कि 'मैं जीवनके सत्यके बहुत निकट पहुँच चुका हूँ।' प्रत्येक लेखकका जीवनके प्रति अपना वैयक्तिक दृष्टिकोण होता है।

युग-युगके भारतीय दार्शनिकोंने यही बताया कि व्यक्ति एक अलौकिक शक्तिके हाथोंका खिलौना है। पर भगवतीचरण व्यक्तिको सत्य मानते हैं। उनका कहना है—

एक सत्य हूँ मैं, जग कहता है जिसको भ्रम !

इस लेखकको वर्तमान जीवनको सहेजकर सुन्दर और सुखमय बनानेमें अटूट विश्वास है। वह अतीत और भविष्यकी कल्पनामें आस्था नहीं रखता। जीवन एक संग्राम-स्थल है, बाधाएँ आती रहती हैं। मनुष्यको इनसे लड़ना है। सुखसे प्रीति हमारा लक्ष्य है लेकिन हमारा उद्देश्य जीवनकी कुरूपताओं-से निरन्तर संघर्ष करना है। कवि भगवतीचरण कहते हैं—

क्या भविष्य है ? नहीं जानता, मुझको ज्ञात अतीत नहीं,
सुखसे मुझको प्रीति नहीं है, दुःखसे मैं भयभीत नहीं।
लड़ता ही रहता हूँ प्रतिपल बाधाओंका पार नहीं,
काल-चक्रके महासमरमें हार नहीं है, जीत नहीं।

अज्ञेय और भगवतीचरणके जीवन-दर्शनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। भगवती बाबूको स्वर्ग-नरक, आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य, पुनर्जन्मकी शक्तिमें तनिक भी विश्वास नहीं है। उनका मत है कि मनुष्यका जन्म एक बार होता है और वह एक ही बार मरता है। इसलिए जीवनका लक्ष्य अत्य-धिक सुख पाना है। इस लेखकके जीवन-दर्शनमें हम भारतके प्रसिद्ध नास्तिक दार्शनिक चार्वाककी विचार-धाराओंकी नियोजना पाते हैं। यह Hidonistic philosophy है जिसमें प्रत्यक्ष (Perception) की एकमात्र सत्यता और उसकी प्रामाणिकतापर अधिक बल दिया जाता है; आत्मा-परमात्माके अनुमान रोचक कहानियाँ हैं; धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य हमारी कपोल-कल्पना है, आत्माकी अमरता और परलोक तथा पुनर्जन्म भ्रामक बातें हैं। इस वर्ग-के दार्शनिकोंका तर्क है कि 'यदि मरनेके बाद कोई 'जीव' नामकी चीज बाकी रह जाती है तो उसे अपने सम्बन्धियोंके करुण क्रन्दन सुनकर लौट आना चाहिये; यदि यज्ञमें बलिदान करनेसे पशु स्वर्गको जाता है तो यजमान अपने पिताका ही बलिदान क्यों नहीं कर डालता ? अगर मरे हुए पितरोंको पिण्ड

पहुँच सकता है तो परदेशकी यात्रा करनेवालोंके साथ पाथेय बाँधना बेकार है; वेदोंके रचयिता तीन हैं—भाँड़, धूर्त और निशाचर (चोर)। ये विचार उनके हैं जो नास्तिक हैं। भगवतीचरणकी भी नास्तिक बुद्धि है। इन्होंने अपनी रचनाओंमें जीवन और जगत्‌की रूढ़िवादिता तथा आडम्बरको खोल-कर दिखा दिया है जिसके कारण हमारा वर्तमान जीवन विषण्ण हो उठा है। वर्माजीने अपने एक लेख 'मैं और मेरा युग' में अपने जीवन-दर्शनको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "मैं 'अहं' का उपासक रहा हूँ; मेरे ऊपर हिन्दीके आलोचकोंका आक्षेप रहा है कि मैं कहीं भी एक क्षणके लिए अहम्-के ऊपर नहीं आ सका हूँ। मुझे हिन्दीके आलोचकोंसे शिकायत नहीं—'अहम्' नामकी चीज गुलामोंमें मिल नहीं सकती—वे अहम्‌की महत्ताको जानते ही नहीं।"

"दुनियामें आजतक कोई अहम्‌के ऊपर न उठ सका है और न उठ सकता है। 'अहम्' अस्तित्व है, जो यह कहता है कि उसने अहम्‌को मिटा दिया है–या जो कहता है कि अहम्‌को मिटा देनेमें ही अपना कल्याण है, वह या तो दुनियाको धोखा देता है या अपनेको धोखा देता है। दुनियामें आज नग्न रूपसे आगे आनेवाली समाजवादकी असफलताका मुख्य कारण यह है कि वह समाजके हितके लिए अहम्‌को मिटा देनेवाले सिद्धान्तपर विश्वास करता है, जबकि यह सिद्धान्त अस्तित्वमें बुनियादी सिद्धान्तका विरोधी है।" इस 'अहं-भाव'की रक्षाकी ओर रविबाबूने भी हमें सावधान किया था।

'Where the clear stream of reason has not lost its way into the dreary desert sand of dead habit.' [१]

भगवती बाबू आगे लिखते हैं—'और फिर भी मैं यह कहता हूँ कि दुनियाकी इन उलझनोंका कारण 'अहम्' है। ऐसी हालतमें मुझसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि फिर यह उलझनें दूर कैसे होंगी? इसका

---

१. Gitanjali पृ. २८.

उत्तर है—अहम्को असीमत्त्व प्रदान करके !... मैं यह माननेवाला हूँ कि अपना हित अपना सत्य है। हम जो काम करते हैं उसके दो पहलू होते हैं, एक निजी (Subjective) और दूसरा परोक्ष (Objective)। हमारे कामका निजी पहलू अपना सत्य है, वह न बुरा है; न भला है; वह प्राकृतिक है, वह अपनेको तुष्ट करना है। 'अहम्' अस्तित्व है—अहम्को तुष्ट करना जीवन है। दूसरोंका खून चूसकर कौड़ी-कौड़ी इकट्ठा करके महल बनानेवाला शोषक अपनी एक आन्तरिक भावनासे प्रेरित होकर ही यह करता है और लाखों रुपयोंका दान करनेवाला भी अपनी एक आन्तरिक भावनासे प्रेरित होकर ही दान करता है। दोनों ही बराबर हैं—अगर उसको तुष्टि न मिलती तो वह शोषक कभी भी खून न चूसता, और अगर उसे तुष्टि न मिलती तो वह दानी कभी भी दान न करता। इन दोनोंमें ही अपनेको तुष्ट करनेकी प्रवृत्ति है। अतः मनुष्यमात्रके लिए अपना हित अपना सत्य है।' इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि अपनेको सुखी बनानेके लिए, अपनेको तुष्टि प्रदान करनेके लिए भी सभी साधनोंका प्रयोग किया जा सकता है।'

भगवतीचरण आगे लिखते हैं—'और दूसरोंका हित मानवताका सत्य है, और इसी मानवताके सत्यमें हमारे कर्मोंका परोक्ष (Objective) पहलू आता है। हमारे हर कामका असर दूसरोंपर पड़ा करता है; हमारे जिस कामका असर दूसरोंके लिए हितकर है, वह मानवताकी दृष्टिसे अच्छा है; जिस कामका असर दूसरेके लिए अहितकर है, वह मानवताकी दृष्टिसे बुरा है। हम अपने लिए जीते हैं अवश्य, पर हमारा जीवन दूसरोंसे सम्बद्ध है। हरएक पशु अपने लिए जीता है और वह केवल अपने लिए ही जीता है—दूसरोंकी उसे जरा भी चिन्ता नहीं। हम पशुतासे ऊपर उठे हुए मनुष्य हैं, हमें दूसरोंसे सम्बद्ध हो जीना है। सीमित और संकुचित अहम् पशुताके निकट और मानवतासे दूर है; उस अहंको विकसित नहीं करना है। हममें कोमल और कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं, हम उन्हें विकसित कर सकते हैं, क्योंकि दूसरोंके सुखमें सुख पानेकी एक दबी हुई अन्तःप्रेरणा हर मनुष्यमें है...अहम्को इतना अधिक विकसित करना कि वह सारी

दुनियाको ढक ले, सारी दुनियाको निजत्वके अन्दर कर लेना—यही अहम्‌को असीमत्व प्रदान करना है। अपना हित अपना सत्य है, दूसरोंका हित मानवताका सत्य है। अपना सत्य और मानवताके सत्यको एक रूप कर देना ही अहम्‌को असीमत्व प्रदान करना है।"

"मैं बुद्धिवादी हूँ मेरा देवता है ज्ञान, और इस देवताके अलावा मुझे किसी देवतापर विश्वास नहीं। मनुष्यको पशुसे पृथक करनेवाली चीज है बुद्धि, और बौद्धिक विकास ही मानवताका चरम विकास है। यह बुद्धि हमें मिली है, इसको हमें विकसित करना है। बुद्धिके ऊपर मेरे लिए कोई दूसरी चीज नहीं। मनुष्य बौद्धिक विकासके क्रममें है, उसकी बुद्धि अर्द्धविकसित है। मैं मानता हूँ कि बुद्धि द्वारा मैं अनेक चीजोंको नहीं समझ सकता, पर उसमें बुद्धिका दोष नहीं है, अपनी अपूर्णताका दोष है। मेरी बुद्धि इतनी अधिक विकसित नहीं कि मैं इसके द्वारा चीजोंको समझ सकूँ। पर हम अपनी पराजय स्वीकार करनेको तैयार नहीं, अपनी कुरूपताओंके प्रति जबर्दस्ती आँखें बन्द कर लेनेकी हममें एक अतिकुरूप प्रवृत्ति है। और इसलिए हम अपने दोषको, अपनी कमजोरीको बुद्धिका दोष और बुद्धिकी कमजोरी कह देते हैं। बुद्धिवादी होनेके कारण न मुझे धर्मपर विश्वास है, न उपासना पर। मैं समझता हूँ मनुष्य केवल बुद्धि द्वारा पूर्णता प्राप्त करेगा।······साहित्य कुरूपताके प्रति मनुष्यमें ग्लानि उत्पन्न कर सुन्दरताके प्रति मनुष्यमें आकर्षण उत्पन्न करता है।"[१]

वर्माजीके जीवन दर्शनका यही सारांश है जिसके आलोकमें उनके कथा-साहित्यका अध्ययन-अध्यापन करना चाहिये।

कहानीकार भगवतीचरण वर्मा—कहानीकारके रूपमें वर्माजीका स्वरूप उग्र रहा है। कहानियोंमें जीवनकी कुरूपताओं और उसके बाह्य द्वन्द्वों-के तुमुल संघर्षका यथार्थ चित्रण किया गया है। इस दृष्टिसे ये उग्र-स्कूल-के कहानीकार माने जा सकते हैं। ऊपरसे देखनेपर ये घोर यथार्थवादी कहानी-कार जान पड़ते हैं लेकिन इनकी कहानियाँ निरुद्देश्य नहीं हैं। उनका एक

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० १७०-१७७

निश्चित लक्ष्य है। वह यह कि जीवनकी कुरूपताओंका दर्शन कराकर सुन्दरताओंके प्रति सचेत करना-यही उनका उद्देश्य है। वर्माजीकी समस्त कहानियोंमें जीवनका नग्न चित्रण किया गया है। इनमें वर्तमान सभ्यता, समाज और नारी-पुरुषके विशृंखलित जीवनका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। इनकी कहानियाँ अज्ञेयकी तरह प्रश्नान्त होती हैं। किसी भी समस्याका समुचित समाधान नहीं दिया गया है। एक भी ऐसी कहानी नहीं है जिसका अन्त सुखमय हुआ हो। हाँ, ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जो दुःखान्त हैं, जैसे-'मत्यु अथवा पराजय'। दुःखान्त कहानियोंमें मानव-मनकी निस्सहायावस्था उसकी लाचारी, उसकी कमजोरी और विवशताका चित्रण किया गया है। इस तरहकी कहानियोंका आधार मनोविज्ञान है। व्यक्तिके मनकी उलझनोंका वर्णन करना इन कहानियोंका एक मात्र लक्ष्य है। भगवतीचरणकी दृष्टिमें आजका प्रत्येक व्यक्ति कमजोर और निस्सहाय है। वह अपने मनोभावोंका गुलाम है। उसके जीवनमें बिषम परिस्थितियाँ उग्र रूप धारण कर आती हैं और वह अपनेको उन परिस्थितियोंके सामने निर्बल समझता है। 'चित्रलेखामें वर्माजीने बताया है कि 'मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियोंका दास है—विवश है। वह कर्त्ता नहीं है, वह केवल साधन है।' इसलिए इनके लगभग सभी पात्र जीवनकी किसी-न-किसी परिस्थितिके जालमें फँसे कराहते होते हैं। वे इससे निकलनेके लिए सारे प्रयत्न करते हैं लेकिन कुछ तो पूँजीपतियोंके शोषणके कारण और कुछ अपनी स्वाभाविक कमजोरीके कारण वे अपनी उलझनोंसे ऊपर उठ नहीं पाते। 'कायरता' शीर्षक कहानीमें एक पात्र जीवनसे निराश होकर यहाँतक कह बैठता है कि 'इस निराशा और असफलताके अस्तित्वकी अपेक्षा मृत्यु अच्छी है...अपनी कायरताके कारण मैं पशुसे भी गया बीता हूँ, मैं कायरता नहीं छोड़ सकता—नहीं छोड़ सकता।' इन पंक्तियोंके साथ इस कहानीका अन्त हुआ है। 'विवशता' कहानीमें लीला अपनी इच्छाके प्रतिकूल एक ४० वर्षके पुरुषके साथ विवाह-बन्धनमें बाँध दी जाती है फिर भी रमेशके यह पूछनेपर कि 'क्या तुम बाबू रामकिशोरसे प्रेम करती हो?' इसके उत्तरमें लीला कहती

है—'बहुत अधिक—जिसकी तुम कल्पनातक न कर सकोगे।' वह आगे चलकर कहती है—'रमेश! आज दिनभर मैं रोयी हूँ, और न-जानें कब-तक मुझे रोना पड़ेगा। पर मैं क्या करूँ, मैं कितनी विवश हूँ।' इस कहानी-में वर्माजीने दिखलाया है कि वर्तमान भारतीय नारी पुरानी रीति-नीतिके दलदलमें आज भी फँसी कराह रही है। वही पुराना राग—पति शराबी-जुआरी क्यों न हों, उसके लिए पति परमेश्वरका अवतार है—अलापा जा रहा है। आजकी नारी पुराने नियमोंकी जंजीरोंमें बँधी है। उसकी इच्छा-अनिच्छाकी कोई परवाह नहीं की जाती। वर्माजीकी नारीका यह करुण स्वरूप है, जिसका चित्रण प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और अज्ञेयने भी अपनी कहानियोंमें किया है।

वर्माजीने कालेजोंमें पढ़नेवाली आधुनिक नारी तथा स्कूलोंमें काम करने-वाली अध्यापिकाओंका भी चित्रण किया है। इन आधुनिक नारियोंके प्रति लेखककी दृष्टि अनुदार है। ये नवीन नारियाँ, वर्माजीकी दृष्टिमें, धनके लिए अपना नैसर्गिक प्रेम बेच देती हैं, परन्तु हृदयका एकांश भी पुरुषको नहीं देतीं। इस तरहकी नारी हमारे समाजकी रंगीन तितलियाँ हैं जो अनेक फूलोंपर बैठकर रसपान करना चाहती हैं और जो पुरुषको अपनी रंगीनीमें भुलावा देकर मृत्युतक ले जाती है। 'बॉय'; 'एक पेग', 'प्रेज़ेण्ट्स', 'एक विचित्र चक्कर' और 'उत्तरदायित्व' कहानियोंमें इसी नारीका वर्णन किया गया है। 'पराजय अथवा मृत्यु' में भुवनेश्वरी देवी एम. ए. स्त्रियोंका पक्ष लेती हुई कहती हैं कि 'पुरुष स्त्रीका आदर नहीं करता वह उसपर अपना अधिकार समझता है। जननी होते हुए भी स्त्री कितनी निरीह है, निराश्रय है। जिस पुरुष के लिए स्त्री सर्वस्व न्यौछावर कर देती है, असह्य यातनाएँ सहती है, वही पुरुष पशुके समान हृदयहीन प्राणी है। जबतक स्त्री अपना अधिकार न समझ लेगी, जबतक स्त्री पुरुषके सरपर पैर न रख सकेगी, तबतक वह गुलाम रहेगी।' आधुनिक पढ़ी-लिखी नारीकी ओरसे आये दिन इसी तरहकी शिकायत सुनी जाती है। भुवनेश्वरी देवीके विश्वासोंका खण्डन करते हुए रमेश कहता है, जिसको वह (भुवनेश्वरी) अव्यक्त भावसे प्रेम करती है 'कि

'स्त्री निर्बल है, वह असहाय है। उसे गुलामी करनी ही पड़ेगी, आप उसकी गुलामी छुड़वा नहीं सकती हैं ?...मैं जानता हूँ कि स्त्रीमें न विश्लेषणकी शक्ति है और न सत्य पहचाननेकी क्षमता। स्त्रीमें केवल एक चीज़ है, वह है भावना और भावना अर्द्धसत्य है'। नारी पुरुषकी समस्याओंकी खींचतानका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण वर्माजीकी कहानियोंमें हुआ है। इनमें नारी-पुरुषके सम्बन्धकी मनोवैज्ञानिक सत्यता और नैतिक मूल्यों (moral values) का तात्त्विक विश्लेषण किया गया है। लेखकने दोनोंकी मनोवैज्ञानिक स्थितिकी व्याख्या इन शब्दोंमें की है—'मैं तो यह जानता हूँ प्रेम पुरुषके लिए एक क्षणिक भावना है, जिसमें बासना और अहमन्यताका ज़बर्दस्त पुट रहता है; वह पुरुषका एक ऐसा खेल है जिसे खेलनेमें उसे सुख मिलता है; पर है वह एक खेल ही—उससे अधिक कुछ नहीं। पर स्त्रीके लिए प्रेम अस्तित्व है—शायद प्रेम ही उसका जीवन है। ऐसा क्यों है, इसीको तो मैं नहीं समझ सका। ... क्या स्त्रीने प्रेम करनेके लिए ही जन्म लिया है ?'

वर्तमान युगमें नारी और पुरुषोंके अधिकारों तथा कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें उतने ही विचार प्रकट किये गये हैं जितने हमारे मुँह हैं—जितने मुँह उतनी बातें। वर्माजीके विचार अभी स्थिर नहीं हुए हैं। लेकिन दोनोंके कर्त्तव्योंके प्रति लेखककी लेखनी अवश्य सजग जान पड़ती है। वर्माजीकी बहुत-सी कहानियोंमें आजकी नारी-समस्याने स्थान ग्रहण किया है।

भगवतीचरण वर्मा एक विद्रोही लेखक हैं और इनका विद्रोह वर्तमान पूँजीवादी शक्तियोंके प्रति है। अर्थके असन्तुलनने हमारे समाजमें भयंकर गरीबीको जन्म दिया है, जिसके फलस्वरूप हमारा नैतिक स्तर बहुत नीचे उतर आया है; समाजमें चारों ओर विश्रृंखलता देखी जाती है। इस ओर भी लेखकने हमारा ध्यान आकृष्ट कर हमें सचेत किया है। तीर्थराज प्रयागके मेलेमें 'चिथड़ोंसे ढँके हुए और मक्खियोंसे घिरे हुए उस बूढ़े भिखारीने बड़े करुण स्वरमें पुकारा—'एक मुट्ठी अन्न।' उसकी उम्र साठके ऊपर रही होगी, उसके बाल सफेद थे और उसका मुख विकृत तथा कुरूप। उसकी आँखें

पथराई हुई-सी तथा भावनासे शून्य और उसका स्वर रूखा-कर्कश और काँपता हुआ। उसके हाथ-पैरकी उँगलियाँ कुष्ठसे गल-गलकर गिर गयी थीं और उसके शरीरसे एक ऐसी भयानक दुर्गन्ध निकल रही थी जो उसके पाससे निकलनेवालेको अपनी नाक दबानेको विवश करती थी। एक औरतने उसके सामने अपनी जूठनकी पूड़ीका एक टुकड़ा फेंका और उसके सामने उस टुकड़ेके गिरते ही उस टुकड़ेका अधिकारी एक कुत्ता झपटा।' ('दो पहलू')--यह है हमारे समाजका एक निर्बल और विवश प्राणी जो कुत्तेका जीवन बितानेके लिए मजबूर किया गया है। आर्थिक दुरवस्थाके कारण हमारा जीवन पशुवत् हो गया है, उसकी जर्जरता और दयनीय अवस्थाका बिलकुल नग्न चित्रण वर्माजीकी कहानियोंमें हुआ है। ये सारी कहानियाँ यथार्थवादके सिद्धान्तोंसे पालित-पोषित हैं। आदर्शवादके लिए इनमें तनिक भी गुञ्जाइश नहीं है।

वर्माजीकी कहानियोंका एक हिस्सा ऐसा है जिसमें आधुनिक सभ्यता तथा मानवतापर व्यंग्य-वाण छोड़ा गया है। आजकी ढोंगी दुनियाकी झूठी शानपर मार्मिक चोट की गयी है। आजका मनुष्य--विशेषतः भारतका मनुष्य-ढोंगी और झूठा है। वह अपनेको धोखा देता है। वह नैतिक-जीवनसे कोसों दूर रहकर भी नैतिकताका ढोल पीटता है। वह आज भी अपने रूढ़िगत अन्धविश्वासों और संस्कारोंके मोह-जालमें फँसकर अपनी आन्तरिक शक्तिको खो रहा है। बर्माजीने यह अच्छी तरह जान लिया है कि आजके व्यक्तिने आत्म-विश्वास नामकी शक्तिको खो दिया है। वह अब अपने ऊपर भी विश्वास नहीं करता। उनका विश्वास है कि 'पूर्ण विकासके लिए यह जरूरी है कि मानव स्वयं अपने ऊपर विश्वास करे। पूर्ण विकासकी ओर बढ़नेवाला मनुष्य कर्त्ता है, स्वामी है। दूसरोंपर अवलम्बित होनेकी प्रवृत्ति गुलामीकी प्रवृत्ति है।....यह युग जटिल समस्याओंका युग है। अपनेद्वारा पैदा की गयी उलझनोंमें हम बुरी तरह उलझ गये हैं।.. दूसरोंको धोखा देते-देते हम स्वयं अपनेको धोखा देने लग गये हैं।' 'दो' बाँके' शीर्षक कहानी उपरिलिखित विचारोंका प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि वर्माजीकी अधिकांश कहानियाँ मानव-जीवनकी गम्भीर स्थितियों और उलझी हुई परिस्थियोंको लेकर चलती

हैं और इस कहानी (दो बाँके) में इसका अभाव है तथापि 'दो बाँके' में मानव-मनकी झूठी शान और कमजोरियोंका बड़ा ही स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया गया है। इसमें लखनऊकी झूठी नवाबी और शान-शौकतका एक नजारा पेश किया गया है। लेखकने व्यंग्यके छींटे डालते हुए कहा है कि 'लखनऊकी जिन्दादिली और लखनऊ की नफासत' वहाँकी खास बातें हैं। और वहाँके रईस, रंडियाँ, शोहदे लखनऊकी नाक हैं। इस शहरसे अगर वे लोग हटा लिये जायें तो लोगोंका यह कहना कि 'लखनऊ तो जनानोंका शहर है. सोलह आने सच्चा उतर जायें। वहाँके तीन-चौथाई इक्केवाले शाही खानदानके हैं। उनकी बदकिस्मती है कि जिनके बुजुर्ग हुकूमत करते थे, ऐशोआरामसे जिन्दगी बिताते थे पर उनके लिए आज भूखों मरनेकी नौबत आ गयी है। लखनऊके बाँकोंकी लड़ाइयाँ देखते ही बनती हैं। अभी लड़ाई शुरू भी नहीं हुई है मगर लाशोंको उठानेके लिए चारपाइयां पहलेसे ही मौजूद हैं। वे अपनी बात-चीतके सिल-सिलेमें खून बहा देते हैं, लाशें गिरा देते हैं, क़हर मचा देते हैं, कमायत हो जाती है लेकिन मजा तो इस बातका है कि किसीके बदनमें धूलतक नहीं लगती, लाश गिरनेकी बात तो दूरकी है। वर्माजीने ठीक ही कहा है कि 'एक बाँका दूसरे बाँकेसे ही लड़ सकता है।' उन्होंने एक स्थानपर लिखा है--

मैं देख रहा यह मानवता
कितनी निर्बल कितनी अनित्य।

'दो बाँके' में अवधकी ह्रासकालीन अवशिष्ट संस्कृतिका परिहासपूर्ण और व्यग्यपूर्ण चित्रण किया गया है। शहरी जीवनके खोखलेपनकी ओर भी लेखकने संकेत कर दिया है। साथ ही उसने बतला दिया है कि आजका मानव—अहम्-शक्तिके अभावमें-कितना निरुपाय, निर्बल और अशक्त है। उसमें स्फूर्ति तथा स्पन्दनतक नहीं रहा। वह आज अपनी निर्बलता छिपानेके लिए भाग्य और भगवानका शिकार बना हुआ है। पुराना धर्म, पुरानी रूढ़ि, पुरानी संस्कृति आदि उसे आज भी प्रिय हैं। वह भूतको वर्तमानमें लौटा लेनेके लिए लालायित है। उसे मालूम नहीं है कि वह कितने गहरे

पानीमें खड़ा है और ह्रासके किस चरम शिखरपर पहुँच चुका है। अपने ह्रास और शक्तिका समुचित ज्ञान न होनेके कारण ही उसकी आज दयनीय स्थिति है। वर्माजीका यह सन्देश है कि 'आज मानवमें अहं-शक्ति जगानेकी बड़ी आवश्यकता है।'

भगवतीचरण वर्माकी कहानी-कला—'दो बाँके' कहानी-संग्रहमें वर्माजीने 'दो शब्दों' में लिखा है—'क्या लिखा जाता है और क्यों लिखा जाता है? किसी भी कलाकारकी कृतिको पढ़नेके समय ऐसे प्रश्नोंको उठाना कलाकारके साथ ही नहीं, वरन् कलाके साथ अन्याय करना है। आपलोगोंको देखना चाहिए 'किस तरह लिखा जाता है?' और यहीं कलाकारकी सफलता है।' इन पंक्तियोंमें लेखकने कहानीकी टेकनिक (technique) की परखकी ओर इशारा किया है और बताया है कि कहानीमें कोई भी भाव या विचार हो सकता है; कहानीमें श्लील और अश्लील कोई भी विषय हो सकता है। पाठक या आलोचकको इसके सम्बन्धमें किसी तरहकी शिकायत नहीं करनी चाहिये। पाठकको यह देखना चाहिए कि कहानीकारने अपने विषयको किस तरह रखा है। कलाकी सफलता विषयके विवेचनमें नहीं, उसकी समुचित व्यवस्था-में है। इसके विपरीत, जैनेन्द्रका कहना है कि 'क्या कहना है'—इसपर ही कहानीकी सफलता असफलता निर्भर करती है। कहनेका मतलब यह कि जहाँ जैनेन्द्र और अज्ञेय अपनी कहानियोंमें विचारोंकी उद्भावना करते हैं वहाँ भगवतीचरण अपनी कहानियोंमें श्लील और अश्लील भावों या विचारों-की परवाह न कर उसकी कथन-शैली और साज-सँवारकी व्यवस्थापर जोर देते हैं। कलाका काम सृजन करना है। प्रत्येक कलाकार सृजनकर्ता होता है। सबकी सृजन-शक्ति भिन्न होती है। जिस तरह मनुष्यके दो चेहरोंमें असमानता होती है, उसी तरह दो कलाकारोंकी लेखन-शैली तथा कथन-शैली-में भी अन्तर होना स्वाभाविक है। जैनेन्द्र, अज्ञेय और भगवतीचरण-इन लेखकोंकी शैलियोंमें भी भिन्नता है। सच तो यह है कि इन तीन लेखकोंमें-से किसीने भी कहानीकी विशिष्ट शैली या टेकनिकका निर्वाह नहीं किया। प्रेमचन्दकी कहानी-शैली नपी-तुली और निश्चित है। लेकिन उन तीन लेखकों-

की अभिव्यञ्जना-प्रणाली विविध और एक दूसरेसे भिन्न है। इनकी कहानियोंमें रूप-रचना (Form) की अपेक्षा विचार या भाव (Matter) पर ही अधिक बल दिया गया है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ जैनेन्द्र और अज्ञेयके मनोभाव संयत हैं वहाँ भगवतीचरणकी भावनाएँ विशृंखल और असंयत हैं। बात यह है कि विचारोंकी आँधी जब उनके मनमें चलने लगती है तो ये अपनेको संयत न रख सके हैं। वे अपने मनकी उठती-गिरती भाव-लहरियोंको ज्यों-की-त्यों कागजके पन्नोंपर उतार देना चाहते हैं। इसलिए वे भाव काफी स्वाभाविक और ताजे जँचते हैं; यह तो अच्छा हुआ लेकिन भावोंको असंयत छोड़ देनेसे उच्छृंखल और अश्लील विचार आ जानेकी आशंका बनी ही रहती है। इसलिए किन्हीं आलोचकोंको वर्माजीकी कहानियोंमें कहीं कहीं 'अश्लीलता' और कहीं कहीं 'नैतिकताका अभाव' खटकने लगता है। इसके उत्तरमें वर्माजीका कहना है कि 'संसार में' अश्लीलता नामकी कोई चीज है भी, इसपर मुझे शक है। यह पहले आक्षेपका उत्तर है। 'रही नैतिकताकी बात, वहाँ मनुष्यका अपना निजी दृष्टिकोण है। अगर आपको अधिकार है कि आप मुझे गलती-पर समझें तो मुझे भी यह अधिकार प्राप्त है कि मैं आपको गलतीपर समझूँ।' इस तरह दोनों आक्षेप आप ही कट जाते हैं।

वर्माजीकी कहानियोंमें अधिकतर जीवनकी कुरूपताओंकी ही विवेचना हुई है। 'विवशता' कहानीमें उन्होंने इस कथनकी आलोचना करते हुए लिखा है कि 'जीवन की कुरूपताओंकी विवेचना कुछ थोड़े समयके लिए भले ही रुचिकर हो, पर कुरूपता अन्तमें कुरूपता है, इसे अधिक देरतक देखते रहनेपर आँखें ही नहीं जल उठती हैं, सारा शरीर जल उठता है; यहाँतक कि उस जलनसे आत्मातक झुलस उठती है।' इन पंक्तियोंमें वर्माजीने जो कुछ कहा है, वे बातें इनकी कहानियोंपर अच्छी तरह लागू होती हैं। जीवनके दुःख, दैन्य, मानवकी विवशता, व्यक्तिका शोषण आदि-की करुण कहानी पढ़कर साधारण पाठक खीझ उठ सकता है क्योंकि इस तरहकी यथार्थ-प्रधान कहानियोंमें मानवीय भावनाओंको ठहरने देनेके लिए

आधारका बिलकुल अभाव है। दुःख-दुःख कहकर चिल्लाने-दौड़नेसे ही दुःखका अन्त नहीं होता बल्कि इसके उपाय ढूँढ़नेकी आवश्यकता पड़ेगी। लेकिन जैसा कि वर्माजीने स्वयं लिखा है कि 'लम्बी-लम्बी बातोंकी, लम्बे लम्बे सिद्धान्तोंकी हमें जरूरत नहीं है। मैं तो केवल एक बात जानता हूँ। साहित्य कुरूपताके प्रति मनुष्यमें ग्लानि उत्पन्न कर सुन्दरताके प्रति मनुष्यमें आकर्षण उत्पन्न कर सकता है।' यद्यपि वर्माजीने मानव-जीवनकी विषमताको दूर करनेके लिए प्रेम और त्यागकी आवश्यकता महसूस की है तथापि हम इनकी कहानियोंमें इसकी ओर संकेत नहीं पाते। कहानियोंमें ये मनोविश्लेषक हैं, या विद्रोही या व्यंगकार।

वर्माजीकी कहानियोंमें कथानककी समानता होती है। होटल, रेलवे प्लेटफॉर्म, शराबखाना, चायकी दूकान, शहरका कोई भाग—इन कहानियोंके कथानकोंमें स्थान ग्रहण करते हैं। कहानी कहनेका ढंग भी एक ही रहता है। इसके सम्बन्धमें डॉ. रामरतन भटनागरने लिखा है कि "इस प्रकारके ढंगमें केवल एक ही प्रकारका दृष्टिकोण दिया जा सकता है और यह प्रत्येक कहानीमें अवांछनीय है। यह कहानीको अनावश्यक रूपसे संकीर्ण बना देता है।"[1] यह सच है कि उनकी कहानियोंके कथानक एक समान हैं लेकिन इससे लाभ यह हुआ है कि लेखकको अमेरिकन कहानीकार ओ० हेनरी (O' Henry) की तरह कथानकोंमें स्थानीय रंग Local colour) भरनेका अच्छा अवसर मिला है। इससे कहानी-कलामें विशिष्टता आ गयी है। स्थानगत विशेषताओंका विवरण वर्माजीकी कई कहानियोंमें दिया गया है। 'दो बाँके' कहानीमें लखनऊ शहरके जीवनका बिलकुल स्वाभाविक चित्र आँका गया है। वहाँकी स्थानीय विशेषताओंका पूरा समावेश उसमें हो गया है। स्थानीय रंग भरनेमें भगवतीचरण वर्माको पूरी सफलता मिली है। इस कलामें हिन्दीका कोई भी दूसरा लेखक कुशल नहीं है।

वर्माजीकी एक विशिष्ट शैली है जो उनकी लगभग सभी कहानियोंमें समान रूपसे पायी जाती है।

---

१ हिन्दी साहित्य, पृ. ३२१

कहानी प्रारम्भ करनेकी इनकी एक विशेष प्रणाली है। वर्माजीकी कहानियोंका प्रारम्भ प्रायः विश्लेषणात्मक या विवेचनात्मक शैलीसे होता है। कहानीके विषय और उद्देश्यकी विवेचना, आरम्भमें कर दी जाती है। उदाहरणार्थ, 'दो बाँके' कहानीका प्रारम्भ इन शब्दोंसे हुआ है—'शायद ही कोई ऐसा अभागा हो, जिसने लखनऊका नाम न सुना हो, और युक्तप्रान्तमें नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तानमें; और मैं तो यहाँतक कहूँगा कि सारी दुनियामें लखनऊकी शोहरत है' आदि। 'पराजय अथवा मृत्यु' कहानीका प्रारम्भ इस तरह किया गया है—'आप लोगोंसे कितने अपने जीवनका लक्ष्य जान सके हैं।' आदि। वर्माजीकी कहानियोंका प्रारम्भ कुछ इस ढंगका होता है कि कभी-कभी इन्हें कहानी कहनेमें सन्देह होने लगता है। ऐसा लगता है कि ये कहानियाँ कहानी न होकर चार्ल्स लेम्बकी तरह व्यक्तिगत निबन्ध (Personal-Essay) हैं। यदि पहले दो-तीन पैराग्राफोंको निकाल दिया जाय तो वे कहानियाँ हो सकती हैं। बात ऐसी है कि वर्माजी अपनी प्रत्येक कहानीमें अपने व्यक्तिगत जीवनके अनुभवोंको स्पर्श करनेका प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि इनकी लगभग सारी कहानियाँ प्रथम पुरुष-(First Person) में लिखी गयी हैं। कहानी लिखनेकी यह विशिष्ट प्रणाली दूसरे लेखकोंमें नहीं पायी जाती। यह वर्माजीकी अपनी शैली है।

भगवतीचरण वर्माकी कहानी-कलामें स्वच्छन्दता और विशिष्टता है जो इनकी निजी है। ये कहानीके नियमोंके पाबन्द नहीं हैं। इनकी कहानी-कला जैनेन्द्र और अज्ञेयकी कलासे भिन्न है। इन दो कहानीकारोंने जहाँ अपनी कहानियोंमें कथानक या घटनाओंकी अपेक्षा चरित्र-चित्रणपर अधिक बल दिया है, वहाँ वर्माजीने कथानक और चरित्र-चित्रण दोनोंपर एक दृष्टि रक्खी है। जीवनकी कुरूपताओंका प्रदर्शन करनेके लिए ये घटनात्मक कथानककी सृष्टि करते हैं लेकिन जहाँतक सम्भव हो सका है ये कम-से-कम घटनाएँ लानेकी कोशिशमें रहते हैं। जीवनके किसी असाधारण घटना-विन्दुके आधारपर ही कथानकका विकास करते हैं। चरित्र-चित्रण करते समय मनसे सम्बन्ध रखनेवाली मनोवैज्ञानिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया

गया है। अतएव, इनके चरित्र मनोवैज्ञानिक हैं। व्यक्तिके चरित्रकी कमजोरियोंको खोलकर दिखा देनेमें वर्माजी बड़े ही कुशल कहानीकार हैं।

कहानीकार भगवतीचरण संकलन-त्रय (Three unitis) के समुचित निर्वाहके प्रति सावधान नहीं मालूम होते। इनकी कहानियोंमें प्रभावकी एकता (Unity of Impression) के प्रति लेखककी सावधानता तो है लेकिन समय और स्थानकी एकताके प्रति ये सजग नहीं मालूम होते। इनमें भी समयकी एकताका निर्वाह कम-से-कम कहानियोंमें हुआ है। 'दो बाँके' में संकलन-त्रयका अवश्य निर्वाह हुआ है। लेकिन कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें मयकी एकताका कोई ख्याल नहीं किया गया है। 'विवशता' कहानीकी' वधि पाँच सालकी है। संकलन-त्रयके नियमोंका निश्चित पालन इनकी कहानियोंमें नहीं हुआ है। फिर भी यह बहुत बड़ा दोष नहीं है।

डॉ० भटनागरके शब्दोंमें "वर्माजीकी कहानियोंकी प्रधान दिलचस्पी उनकी भाषा है जो उर्दूका अवश्य पुट पाकर उनकी अपनी विशेष चीज बन गयी है।" भाषाकी यह जिन्दादिली प्रेमचन्द और उग्रके बाद वर्माजीकी कहानियोंमें ही देखी गया। भाषाकी सरलता और स्पष्टता इसकी अपनी विशेषता है। उर्दू शब्दोंके व्यवहारसे भाषामें चलतापन आ गया है। स्थानीय भाषा-शब्दोंका व्यवहार करनेमें ये कुशल लेखक हैं। 'दो बाँके' की भाषामें जो जिन्दादिली है वह लखनऊ जैसे शहरके अनुकूल है। कथोपकथन स्वाभाविक और सजीव हुआ है।

वर्माजीकी कहानी-कलामें मार्मिक व्यंग्य और परिहासका बहुत बड़ा हाथ है। "इन्स्टालमेण्ट"की पन्द्रह कहानियोंमें जितने उच्चकोटिके व्यंग्य-परिहास पाये गये, उनके दूसरे संग्रह "दो बाँके" में नहीं देखे गये। इस कहानी-संग्रहमें 'दो बाँके' कहानी ही ऐसी है जिसमें इसके लिए उचित अवसर मिल सका है, अन्यथा अन्य कहानियोंमें इसका अभाव ही है। वर्माजीमें अब गम्भीरता आने लगी है।

भगवतीचरण वर्मा आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यके एक अद्वितीय कहानीकार हैं जिनकी मौलिक कल्पना उनके उर्वर मस्तिष्ककी देन है। वर्माजी-

को हम किसी कहानी-स्कूलके बन्धनमें बाँधकर नहीं रख सकते। क्योंकि उनकी कलापर किसी भी देशी-विदेशी लेखकका प्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित नहीं होता। संक्षेपमें, हम कह सकते हैं कि वर्माजी जैनेन्द्र-स्कूल और उग्र-स्कूलकी संधिपर उसी प्रकार खड़े हैं जिस तरह ये हिन्दी कवितामें छायावाद और प्रगतिवादकी संधिपर अवस्थित हैं। इनकी अलग श्रेणी मानी जा सकती है।

—:*:—

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'

[१८९१–१९४५ ई०]

सामान्य परिचय—श्रीयुत 'कौशिक'का जन्म अम्बाला छावनीमें आदि गौड़ वंशके कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण-परिवारमें, १८९१ ई० में हुआ था। इनके पूर्वज सहारनपुर जिलेके गंगोह नामक कसबेके निवासी थे। इनके पिता पं० हरिश्चन्द्र कौशिक जीविकाके लिए अम्बाला गये। वहाँ वे फौजमें स्टोरकीपर हो गये। वहाँ 'कौशिक'जीका जन्म हुआ।

कौशिकजीके चाचा पं० इन्द्रसेन कानपुरमें वकालत करते थे और निःसंतान थे। पं० इन्द्रसेनने चार वर्षीय बालक 'कौशिक'को अपना दत्तकपुत्र (Adopted son) बना लिया जिसका संकेत कौशिकजीके प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' और उनकी कहानियोंमें प्रायः पाया जाता है। तबसे ये कानपुरमें ही निवास करने लगे। यद्यपि गंगोहमें अब भी इनकी पैतृक सम्पति मौजूद है किन्तु पं० इन्द्रसेनकी उपार्जित जमींदारी और शहरी जायदादके कारण उन्हें वहीं बस जाना पड़ा। इनके दो भाई और थे, इनमेंसे एककी मृत्यु हो चुकी थी। दूसरे भाई अम्बाला छावनीमें अब भी रहते हैं। कौशिकजी अपने भाइयोंमें सबसे छोटे थे।

कौशिकजीको सिर्फ मैट्रिकतक शिक्षा मिली। मैट्रिक पास करनेके बाद इनकी स्कूली पढ़ाई बन्द हो गयी। इन्होंने स्कूलमें फारसी और उर्दू पढ़ी तथा

घरपर प्राइवेट रूपसे हिन्दी और संस्कृत। ये पहले उर्दू में कविता किया करते थे। इनका उपनाम 'रागिब' था। सन् १९०६ से हिन्दी-प्रेम जगा और उर्दू से विराग होने लगा। फिर भी कभी-कभी गद्य-लेख उर्दू में लिख दिया करते थे। अन्तमें उसे भी छोड़ देना पड़ा। सन् १९११ से 'कौशिक'जी नियमित रूपसे हिन्दीमें लिखने लगे। कानपुरके स्थानीय साप्ताहिक पत्र 'जीवन' में कहानियाँ लिखने लगे। हिन्दीमें कहानी लिखनेकी प्रेरणा इन्हें पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीसे मिली। इसके बारेमें 'कौशिक'जीने 'साहित्य-सन्देश' के उपन्यास-अङ्कमें इस प्रकार लिखा है—'एक बार स्व० पूज्य द्विवेदीजीसे मिलनेका प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझसे पूछा कि 'तुम्हारी रुचि किस ओर—है?' मैंने कहा—'कहानी तथा उपन्यासकी ओर।' उन्होंने कहा—'तो वही लिखा करो।' मैं बँगला जानता था, अतएव, उन्होंने रवीन्द्र-कृत 'षोड़सी' कहानी-संग्रह दिया और कहा कि इसमेंसे एक कहानीका अनुवाद कर दो। मैंने 'निशीथ' नामक कहानीका अनुवाद कर दिया। इसके पश्चात् अपनी इच्छासे ही 'रक्षा-बन्धन' मौलिक कहानी लिखकर दी। उन्होंने पसन्द की। तबसे बराबर मौलिक कहानियाँ लिखने लगा। द्विवेदीजीका आशीर्वाद था—चल डगरा।' सन् १९१२ में 'कौशिक' जीकी पहली मौलिक कहानी 'रक्षा-बन्धन' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। यह कहानी 'इक्कीस कहानियाँ' में संग्रहीत की गयी है। लेखककी प्रारम्भिक 'कहानीकलाका अनुमान इस कहानीसे लगाया जा सकता है। १९४६ में इनका देहान्त हो गया।

व्यक्ति कौशिक—'साधना' के 'परिचयांक' में एक लेखक श्री शम्भूनाथ सक्सेनाने 'कौशिक'जीके व्यक्तित्वकी अच्छी तसवीर खींची है। वह इस प्रकार है—'कौशिक'जीके बदनका बनाव कुछ अजीब-सा है। वैसे तो वे स्वयं एक अजीब व्यक्ति हैं। उनका साहित्य प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा जाता है। लेकिन इन सबके होते हुए भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि कारूँ और कुबेरके खजाने चाहे धनसे दिवाला मार बैठें, लेकिन 'कौशिक'जीके पास हास्यकी वह अन्नपूर्णा है जहाँ व्ययसे अधिक संचय होता रहता है। उनके व्यक्तित्वमें अन्य व्यक्तिवादी सुलेखकोंकी भाँति न बारूद जैसी तेजी है

और न गुप्तजीकी भाँति वैष्णवी धर्म-परायणता ही। वे सीधे-सादे व्यावहारिक आदमी हैं जिनके जीवनका ध्येय है–नेकी कर और कुएँ में डाल। न किसीके लेनेमें और न किसीके देनेमें। बस! कुछ लिखना है, कुछ जीवनमें करना है। यही साध लिये यह साहित्यिक तपस्वी कानपुरके बंगाली मुहालमें अपना आसन जमाये रहते थे।

"'कौशिक'जीकी तोंद बदनका विश्लेषण है जिसका विकास साहित्यमें विजयानन्द चौबेके रूपमें हुआ है। सिरके बाल खिचड़ी हो गये हैं, लेकिन वही राग-रङ्गका जीवन है। उनके जीवनके साथ ही उनका कलाकार भी रस-प्रधान है। कौशिकजीके व्यंग और शैली चुटीली और मार्केकी होती है और पारिवारिक जीवनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उसके चित्रांकनमें तो वे एक ही हैं। घरके आसूदा होनेके कारण अन्य साहित्य-सेवियोंकी भाँति उनके सामने 'रोटीका सवाल' नहीं है। .. कुछ दिनोंतक इन्होंने भी हिन्दीके अन्य लेखकोंकी तरह सिनेमाकी हवा खायी है। उन दिनों टॉकीजका प्रचार न था। थियेटर्स ही चारों ओर दीख पड़ते थे। उस समय कौशिकजी पं० राधेश्याम कथावाचक बरेलीवालोंके साथ नाटक आदि लिखनेका काम किया करते थे। उनकी विनोदपूर्ण दुबेजी की चिट्ठियोंको पढ़कर स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्तके कल्पित नामसे लिखे गये 'शिवशम्भुका चिट्ठा' की याद आ जाती है।

"कौशिकजी एक सफल सम्पादक भी थे। 'प्रभा' का इन्होंने ही सम्पादन किया था और उस कालमें कितने ही कवियोंको जन्म दिया जो आज हिन्दीकी बिभूतियोंमें गिने जाते हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा कौशिकजीकी ही देन हैं।...कौशिकजी दर्शनीय जीव थे। उनकी मस्ती और कार्य-तत्परता हमें अंग्रेजी कवि स्कॉट (Scott) की निम्नलिखित पंक्तियोंका स्मरण दिलातीं है—

'One crowded hour of glorious life
Is worth an age without name'

कौशिकजीकी रचनाएँ

(१) कहानी संग्रह—१. कल्प-मन्दिर २. चित्रशाला-२ भाग

३. मणिमाला
४. कल्लोल

(२) उपन्यास—१. माँ
२. भिखारिणी

(३) संकलन—१. ज़ारीना–रूसकी महारानी ज़ारीनाका जीवन-चरित्र
२. रूसका राहू-राजपुटिनकी जीवनी

(४) अनुवाद—१. मिलन मन्दिर (बँगलासे)
२. अत्याचारका परिणाम (बँगला-नाटक)

(५) चिट्ठी—दुबेजीकी चिट्ठियाँ–बिजयानन्द दुबेके नामसे लिखी हुई चिट्ठियोंका संग्रह ।

हिन्दी साहित्यमें स्थान–हिन्दी संसारमें 'कौशिक' जी प्रेमचन्दजीसे पहले आये । कौशिकका रचना-काल १६११ से आरम्भ होता है और प्रेमचन्दका १९१६ से । हिन्दीमें लिखनेके पहले ये दोनों उर्दूके लेखक थे । दोनों उर्दूसे हिन्दीमें आये । इन दो लेखकोंने मिलकर आधुनिक कहानी-साहित्यके विकृत रूपको बदलकर बिलकुल नया रूप दिया ।

कौशिकजी वर्तमान हिन्दी-कहानी-साहित्यके निर्माणकर्त्ताओंकी सजीव शक्तियोंमेंसे एक थे । इनकी साहित्य-यात्राका बहुत बड़ा भाग बीत चुका है। वह समय था जब आधुनिक कहानी-साहित्यकी रूपरेखाको साकार रूप दिया जा रहा था । कहानियोंमें अश्लीलता और कौतूहलसे कुछ अधिक नहीं था । उन कहानियों-उपन्यासोंको पढ़कर ऐसा मालूम होता था जैसे कोकशास्त्र या ऐय्याशीकी शिक्षा दी जा रही है । १६ वीं शताब्दीकी कहानियों तथा उपन्यासोंका यही भ्रष्ट रूप था । यद्यपि उन लेखकोंकी कथा-वस्तु (Plot) में रोचकता और मन लगानेके लिए आकर्षणकी सामग्रियाँ काफी रहती थीं लेकिन वहाँ न तो हमारी समस्याएँ थीं और न समाजका चित्रण। उस समय कौशिकजी साहित्याकाशपर एक शुभ ज्वलन्त नक्षत्रकी तरह अपनी सम्पूर्ण कलाओंके साथ प्रस्फुटित हुए ।

आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्यका प्रारम्भ १६०० से माना जाता है ।

इसके प्रारम्भिक कालमें हिन्दीके तीन कहानीकारोंने अपने अथक परिश्रमसे, कहानी-साहित्यके विकासमें पर्याप्त सहयोग दिया। ये कहानी-साहित्यके बृहतत्रयी कहानीकार हैं। वे हैं—प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन। ये तीनों मिलकर प्रेमचन्द स्कूलकी कहानी-कलाको जन्म देते हैं जिसका प्रभाव हिन्दी-के अन्य कहानी-लेखकोंपर भी पड़ा है। कथा-वर्णन, कथोपकथन और भाषाकी प्रवाह-मयी शैलीकी दृष्टिसे इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है लेकिन कुछ बातोंमें अन्तर बना रह गया है।

प्रेमचन्द और कौशिक—दोनों समसामयिक थे। दोनोंने अपने चरित्रों-को व्यक्तिकी अपेक्षा वर्गका प्रतीक बनाकर उपस्थित किया है। दोनोंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं और चरित्रोंके मानसिक विश्लेषणका सुन्दर चरित्रांकन किया है। भाषाशैलीमें विशेष भेद नहीं है। फिर भी दोनोंमें भेद बना हुआ है।

(१) प्रेमचन्दकी अपेक्षा कौशिकके कहानी-साहित्यका क्षेत्र सीमित है। कौशिकने केवल सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियोंमें सुधारवादी दृष्टिकोण है क्योंकि जिस युगमें ये पैदा हुए वह समाज-सुधारका काल था। प्रेमचन्द स्कूलके कहानीकार भी इस सुधार-भावनासे बहुत प्रभावित हुए थे। कौशिकके कहानी-साहित्यपर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था। 'रक्षाबन्धन' इसी सुधार भावनाकी प्रधानता है। 'यदि लड़की पसन्द आ जाय तो सब सहन किया जा सकता है'—इस ओर लेखकका नया दृष्टिकोण है। प्रेमचन्दके कहानी-साहित्यमें विषयकी विविधता है; उनकी दृष्टि समाजपर ही नहीं गयी वरन् जीवनके अन्य प्रश्नोंपर भी उनका ध्यान केन्द्रित हुआ है। इस दृष्टिसे प्रेमचन्द कौशिकसे निस्सन्देह ऊँची सतहपर पहुँच चुके थे। फिर भी, कौशिकने जिस क्षेत्रमें अपने पाँव रखे, उसकी ओर ये सदैव जागरूक रहे। उन्होंने सामाजिक उत्पीड़न और शोषणके कारणोंका वैज्ञानिक अध्ययन किया था। इस तरह अपने क्षेत्रमें कौशिकको अच्छी सफलता मिली है। शहरी जीवन-के अच्छे चित्र उपस्थित किये हैं।

(२) प्रेमचन्द और कौशिकमें सबसे भारी अन्तर है भावुकता का।

कौशिककी भावुकता प्रेमचन्दसे तीव्र है। हृदयको स्पर्श करनेकी क्षमता जितनी कौशिकमें है उतनी प्रेमचन्दमें नहीं। कथा-प्रवाहमें ये इतने अधिक भावुक हो जाते हैं कि जीवनकी व्यावहारिकताकी इन्हें सुधतक नहीं रहती। 'रक्षा-बन्धन' में एक युवक, घनश्याम, जिसका विवाहतक नहीं हुआ है, भावावेशमें आकर एक बालिकाको 'बिटिया'–'बेटी' जैसे शब्दोंसे सम्बोधित करता है। प्रेमचन्द भावुक कम, व्यावहारिक अधिक हैं। 'भिखारिणी' उपन्यासमें रामनाथ ऐसा ही भावुक युवक है जो रोमांटिक युवकोंकी भावुकताका प्रतिनिधित्व करता है।

(३) प्रेमचन्द और कौशिकके बीच सबसे बड़ा भेद यह है कि प्रेमचन्दकी कथावस्तु बहुत उलझी हुई होती है किन्तु कौशिकके कथानकमें स्पष्टता और सरलता होती है। इनकी कथावस्तु बहुत सरल और स्वाभाविक रूपसे विकसित होती है। प्रेमचन्द और प्रसादकी कहानियोंमें नयी-नयी घटनाएँ और नये-नये पात्र आते हैं जिनका कहानीसे कोई सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु कौशिककी कथावस्तु एक पेड़के सदृश होती है जिसकी शाखा-प्रतिशाखाएँ कुछ दूरतक फैलकर मूल शाखामें विलीन हो जाती हैं। कथानककी सरलता और रमणीयताके ये कुशल कहानीकार हैं। थोड़ेसे पात्रोंके द्वारा तथा साधारण घटनाओंको लेकर हृदय-स्पर्शी चित्र उपस्थित कर देनेकी क्षमता उनमें अद्भुत है। अतएव, कथानकके निर्माणमें कौशिकको प्रेमचन्दसे अधिक सफलता मिली है।

(४) प्रेमचन्दकी कहानियोंमें कथानककी अपेक्षा चरित्रोंको प्रधानता दी गयी है। कहानी-कलाके बिकास-पथपर कौशिक पहले पथिक कलाकार हैं जिनकी रचनाओंमें हिन्दी-कहानी-कलाका पहला रूप देखनेको मिला। उन्होंने अस्वाभाविक रोमांटिक कहानियोंको सामाजिक रूप दिया और उसे कथानक-प्रधान बना दिया। कौशिककी अधिकांश कहानियाँ कथानक-प्रधान हैं। डॉ० श्री कृष्णालालके शब्दोंमें 'कौशिक इस प्रकारके कहानी-लेखकोंमें सर्वश्रेष्ठ है।' पं० ज्वालादत्त शर्मा और पदुमलाल पुन्नालाल भी इसी वर्गके कहानीकारोंमें आते हैं। प्रेमचन्दकी अधिकांश कहानियोंमें चरित्रोंकी मनो-

वैज्ञानिक विशेषताओंका उद्घाटन किया गया है। कौशिककी कहानियाँ हिन्दी-कहानी-कलाकी प्रारम्भिक स्थितिमें हैं और प्रेमचन्दकी उसकी दूसरी स्थितिमें। कौशिकके कथानकमें दैव-घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences)का अत्यधिक समावेश हुआ है जिसके कारण उनकी कहानी कुछ अस्वाभाविक जँचने लगती है। प्रेमचन्दमें दैव-घटनाओं और संयोगोंके स्थान-पर मानव-मनके किसी मनोवैज्ञानिक सत्यका अन्वेषण किया गया है। संक्षेप-में, कौशिककी कहानियाँ यदि कथानक-प्रधान हैं तो प्रेमचन्दकी कहानियाँ चरित्र-प्रधान। डॉ० श्री कृष्णलालके शब्दोंमें 'कौशिककी कहानी 'रक्षा-बंधन' में संयोगों और दैव-घटनाओंसे ही एक मनोरञ्जक कहानी बन गयी है।''[1] बालिका सरस्वतीसे घनश्यामका मिलन एक 'संयोग' है और फिर युवती सरस्वतीसे घनश्यामके मिलनेको दैवी-संयोग ही कहा जायगा। इस तरह की कहानी बड़ी अस्वाभाविक होती है।

प्रेमचन्द और कौशिकमें यही मोटा-मोटा अन्तर है।

'कौशिक' की कहानी-कला—कौशिक अपनी कहानियोंमें किसी चरित्रका चित्रण न कर एक रोचक कहानी कहते हैं। इसलिए इनकी कहा-नियोंका प्रधान आकर्षण इनकी कथावस्तु है। कथाको सजाने-सँवारनेमें इन्हें काफी सफलता मिली है। प्रधान कहानियोंमें चरित्र-चित्रण अथवा वाता-वरणपर जोर न देकर उन उलझनोंपर विशेष बल दिया गया है जो विविध चरित्रोंकी विविध परिस्थितियोंमें पड़नेके कारण उत्पन्न होती है। इस तरहकी कहानीमें अनेक चरित्रों और उनकी परिस्थितियोंके सम्बन्धपर जोर दिया जाता है। कौशिककी 'रक्षा-बंधन' तथा 'पावन पतित' कहानियोंमें चरित्रों-की भिन्न परिस्थितियोंका वर्णन किया गया है। इनमें कोई भी पात्र प्रधान नहीं है। 'रक्षा-बन्धन' में सरस्वती, घनश्याम सरस्वतीकी माँ, सबकी कथा कही गयी है। सरस्वती और घनश्यामके पुनर्मिलनमें अमरनाथ मध्यस्थका काम करता है। इस तरह इस कहानीमें किसी भी चरित्रकी प्रधानता नहीं हैं। दैव-घटना और संयोगोंके आधारपर कथानककी कल्पना की गयी है।

---

१. आधुनिक हि. सा. का विकास पृ. ३२७

किसी भी पात्रका व्यक्तित्व स्वतंत्र नहीं है। सभी चरित्र, लेखककी अँगुलियोंपर कठपुतलीकी तरह नाच रहे हैं। अतः इसका कथानक अस्वाभाविक है। कथा-प्रवाहके बीचमें लेखकका यह कहना कि 'पाठक समझ गये होंगे कि घनश्याम कौन है—कहानी-कलाकी हत्या करता है। इससे पाठककी कौतूहल-वृत्ति खण्डित हो गयी है। 'रक्षा-बन्धन' कौशिककी पहली कहानी होनेके नाते असफल सिद्ध हुई है। यह स्मरण रखना चाहिये कि कथानक-प्रधान कहानी आजकल निम्न-कोटिकी कहानी समझी जाती है। इस दृष्टिसे कौशिक हमारे युगकी माँगसे बहुत पीछे पड़ गये हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'ताई' समझी जाती है जो कथानककी दृष्टिसे एक सफल कहानी है।

कौशिककी कहानियोंमें संकलन-त्रय (Three unities) का निर्वाह नहीं किया गया है। 'रक्षा-बन्धन'में ही इसका पूर्ण अभाव खटकता है। इसमें न तो समयकी एकता है और न स्थानकी। एक घटना कानपुरकी है तो दूसरी लखनऊकी। इस कहानीके पूरे कथानकका समय पाँच वर्षका है। बालिका सरस्वती और युवती सरस्वतीके बीचकी कहानी लेखकने स्वयं कही है। आधुनिक कहानीमें इतनी लम्बी अवधिके लिए कोई जगह नहीं है। प्रभावकी एकता कौशिककी प्रायः समस्त कहानियोंमें पायी जाती है। जिस उद्देश्यसे प्रेरित होकर ये कहानियाँ लिखते हैं उसका सफल निर्वाह किया गया है। 'रक्षा-बन्धन' में कभी-कभी ऐसा लगता है कि सरस्वती और घनश्यामका पारस्परिक सम्बन्ध भाई-बहनका न होकर प्रेमी-प्रेमिकाका है। लेकिन अन्तमें पाठकका यह भ्रम जाता रहता है। कौशिककी कहानियोंमें जीवनका खण्ड-चित्र नहीं मिलता, मिलती है उपन्यासकी कथाकी सामग्री। 'रक्षा-बन्धन' कहानीके आधारपर एक उपन्यास लिखा जा सकता है।

कौशिककी कहानियोंमें यों तो चरित्रोंका चित्रण होता ही नहीं है लेकिन जहाँ कहीं भी अवसर मिला है वहाँ लेखकने इसका उपयोग करनेका भरसक प्रयत्न किया है। पर इनका चरित्र-चित्रणका ढंग नितान्त नवीन होता है। इनका चरित्र-चित्रण नाटकीय ढंगका है। इसके लिए उन्होंने

पात्रोंके क्रिया-कलापों एवं वार्तालापका विधान किया है। इस कलामें कौशिक जितने कुशल हैं उतना हिन्दीका कोई भी दूसरा लेखक सफल न हो सका। इनका जैसा सुन्दर, सुखद, सार्थक और चुस्त कथोपकथन हिन्दीके किसी भी दूसरे कहानीकारमें नहीं पाया जाता। इससे एक ओर इनकी कथावस्तु विकसित होती चलती है और दूसरी ओर पात्रोंका चरित्र-चित्रण होता रहता है। इसके लिए उन्हें कहीं-भी क्षेपक जोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ी है। कथा-वस्तुके वर्णनमें लेखकने कल्पनाके साथ ही अनुभूतिका व्यवहार किया है, जिससे भावुकताका रङ्ग कुछ गहरा हो गया है।

भाषाकी दृष्टिसे कौशिककी कहानियाँ आदर्श मानी जा सकती हैं। 'भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिये' के आदर्शने प्रेमचन्दके चरित्रोंसे जिस भाषा-का व्यवहार कराया है उसे समझनेके लिए कभी-कभी बड़े-बड़े विद्वानोंको भी उर्दू-कोशोंकी शरण लेनी पड़ी है। दूसरी ओर, प्रसादके सारे पात्र जिस संस्कृत-गर्भित दार्शनिक भाषाका प्रयोग करते हैं उसे देखनेसे ज्ञात होता है जैसे ये हमारे लोक-जीवनका चित्र न होकर किसी आदर्श-लोककी कल्पना हैं। कौशिक यद्यपि कहीं-कहीं थोड़ा बहके अवश्य हैं, फिर भी भाषाकी सहजता, सरलता और स्वाभाविकताकी इन्होंने पूरी रक्षा की है।

'इतना कुछ होते हुए भी कौशिक इस युगसे कुछ पीछेके प्रतीत होते हैं। उनकी कहानियोंमें वह संघर्ष, नवीनता एवं विश्लेषण नहीं पाया जाता जो इस युगकी प्रधान वस्तु है। कौशिकने जिस समाजके बाह्यरूपका चित्रण किया है उसमें उन्होंने सुधारक बननेकी मनोवृत्तिका परिचय दिया है; उसकी भीतरी आत्मातक पहुँचनेका प्रयत्न नहीं किया। इन कार्योंके पीछे अन्तः-करणकी भावनाओंकी जो धारा बहती है, कौशिक उसकी ओर बहुत कम गये। पात्रोंका न्यायोचित अन्त देखनेकी अभिलाषा उन्हें जीवनमें अधिक प्रयोग (Experiment) नहीं करने देती। वे अपने पात्रोंको उसी सीमातक आगे बढ़ाते हैं जो इनके मानदंडके अनुकूल हो और जहाँसे वे लौटकर अपने निर्दिष्ट स्थानपर आ सकें। इसीलिए इनके पात्रोंमें कोई

विशेषता या 'असाधारणता' नहीं पायी जाती जो साधारण हृदयको अधिक आकृष्ट कर सके।''[१]

फिर भी, कौशिकका हिन्दी-कहानी साहित्यमें ऊँचा स्थान है जिन्होंने कहानी-साहित्यके आरम्भिक दिनोंमें जीवनके सुन्दर सामाजिक चित्र दिये। इनकी अनेक कहानियोंके विषय सामाजिक कुरीतियाँ तथा रूढ़ियाँ हैं। परदा-प्रथा आदिका विरोध किया है और विधवा-विवाहका समर्थन। आधुनिक अंग्रेजी पढ़ी-लिखी लड़कियोंसे ये अधिक असन्तुष्ट हैं।

सुदर्शन

[१८९६ ई०]

सामान्य परिचय—पं० सुदर्शनका पूरा नाम पं० बदरीनाथ भट्ट है। हिन्दी और उर्दू साहित्यमें ये 'सुदर्शन' नामसे ही प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म पंजाब प्रान्तके सियालकोट शहरमें, एक साधारण परिवारमें, हुआ। इन्हें बी. ए तक शिक्षा मिली। साहित्यकी ओर इनकी रुचि बचपनसे ही थी। जिन दिनों ये छठे क्लासमें पढ़ते थे तभी इन्होंने उर्दूमें एक कहानी लिखी थी। यह उनकी पहली रचना थी। ये इकहरे बदनके यूक्रेन नक्षत्रकी आकृति लिये हुए—नाक कुछ उठी हुई, चेहरेपर एक गहरी गम्भीरताकी छाप, नाकपर चश्मा, आँखोंमें एक हल्की-सी चमक, जो सदैव इनके कलाकारको पथ-प्रदर्शिकाका काम करती है। पं० सुदर्शनकी आकृति देखकर उन महान् कलाकारोंकी याद आ जाती है जो Simple living and high thinking के यथार्थ रूपके प्रतीक होते हैं। हिन्दी कहानी-साहित्यमें सुदर्शन एक सजीव शक्ति हैं।

हिन्दी-साहित्यके अतिरिक्त सुदर्शनका सिनेमा-संसारमें एक प्रमुख स्थान है। प्रेमचन्दको इस क्षेत्रमें असफलता मिलनेपर हिन्दी लेखकोंको एक प्रकार-

१. साहित्य-सन्देश अक्टूबर १९४०

से उदासीन हो जाना पड़ा था। पं० सुदर्शनने साहस किया और इस क्षेत्रमें प्रवेश किया। पहले ये कलकत्तेकी न्यू थिएटर्स फिल्म कम्पनीमें निर्देशक नितीन बोसके सहयोगी हुए और फिर कथा-लेखक। 'रूप-लेखा' 'भाग्य-चक्र' और 'धरती-माता' के कथानक सुदर्शनने ही लिखे थे। सिनेमा-जगत्में कुशल सम्बाद और गायन-लेखनमें ये एक ही हैं। इस क्षेत्रमें यदि हिन्दीके किसी लेखकने अधिक सफलता पायी तो वे पं० सुदर्शन ही हैं। न्यू थिएटर्स-को छोड़कर ये बम्बई मिनर्वा फिल्म कम्पनीमें चले गये। वहाँ उन्हें बड़ी ख्याति मिली। निर्देशक सोहराबमोदीके निर्देशनमें निकलनेवाले चित्र 'सिकन्दर' के सम्बाद और गायन लिखकर लोगोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। इसी कम्पनीसे दूसरा चित्र 'पत्थरका सौदागर' निकला जिसका कथानक, सम्बाद और गायन सुदर्शनने ही लिखा था। इन दिनों ये फिल्म-संसारमें ही लगे हुए हैं।

कहानीकार सुदर्शन—द्विवेदी-युगके कहानीकारोंमें प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन सतहके लेखक हैं। कुशल कथानक और चरित्र-चित्रण इनकी कहानी-कलाकी विशेषता है। प्रेमचन्द और कौशिककी तरह सुदर्शन भी उर्दू भाषामें अपनी कलम माँजकर हिन्दीमें आये। हिन्दी संसारमें इनका आगमन कुछ देर करके हुआ। सन् २० की 'सरस्वती' में इनकी पहली हिन्दी-कहानी प्रकाशित हुई। हिन्दीमें इनका रचना-काल १९२० से आरम्भ होता है। तबसे आजतक ये सैकड़ों कहानियाँ, हिन्दीमें लिख चुके हैं। हिन्दी कहानी-साहित्यमें प्रेमचन्दके बाद, उर्दू मुहावरों और भाषाके प्रवाहके लिए, सुदर्शनका ही नाम लिया जाता है। कहानी-साहित्यके विकासमें इनका भी ऊँचा स्थान है। सच तो यह है कि १९३५ ई० तक हिन्दी-कहानीको प्रगतिशील रूप देनेमें इन बृहत्त्रयी लेखकों—प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन-के ही हाथ थे। इनके उद्देश्योंमें समानता होते हुए भी इनकी कलमें तथा विषयमें अन्तर था। प्रेमचन्द और कौशिक कहानी-साहित्यके प्रथम विकास-में आते हैं। सुदर्शनने कहानीको एक दूसरा रूप दिया। डॉ० श्री कृष्ण-लालके शब्दोंमें 'कहानीके द्वितीय विकासमें सचेतन कलाकी विजय होती

है। इसमें कलाकार कहानीके रूपमें किसी महान् सत्यकी व्यंजना करता है।' उदाहरणके लिए 'कमलकी बेटी', 'संसारकी सबसे बड़ी कहानी' तथा 'हार-की जीत' आदि कहानियाँ रखी जा सकती हैं। इन कहानियोंमें सुदर्शनने अपनी दिव्य दृष्टिसे जीवनके चिरन्तन सत्यको प्रत्यक्षकर प्रकट कहानीके रूपमें, किया है। इस प्रकारकी कहानी लिखनेकी प्रेरणा लेखकको प्राचीनकालकी पुराण-कथा (Mythology) अथवा रूपक-कथा (Parables) से मिली होगी। इनमें जीवनके चिरन्तन सत्यकी झाँकी दी गयी है। ईसामसीह और स्वामी रामकृष्ण परमहंस द्वारा लिखित रूपक-कथाएँ इसी तरह-की हैं।

आधुनिक युग पुराण-कथाओंका युग नहीं है। हम जिस युगसे गुजर रहे हैं वह है बुद्धिवाद और संशयवादका युग। रूपक-कथा तथा पुराण-कथा-की रचना करना एक कला है। इस कलामें सबलोग निपुण नहीं हो सकते। 'यदि ऐसी पुराण-कथाओंकी सृष्टि की जाय जिनपर जनताका अन्धविश्वास न हो फिर भी वे विद्वानों और शिक्षित मनुष्योंकी मानसिक तुष्टि कर सकें और उनमें मानव-जीवनके चिरन्तन सत्यकी व्यंजना हो, तो वे अवश्य ही कलापूर्ण सृष्टि कहलायेंगी। सुदर्शनने इसी प्रकारकी कहानियाँ लिखी हैं। हिन्दीमें अन्य कहानी लेखकोंने इस प्रकारकी कलापूर्ण कहानियाँ नहीं लिखीं। इस प्रकारके कुशल कहानीकारोंमें प्रसाद और गोविन्द वल्लभ पंतके भी नाम लिये जाते हैं।

'हारकी जीत' कहानी सुदर्शनकी बहुत पहलेकी रचना है लेकिन आज भी इसकी प्रशंसा की जाती है। क्योंकि लेखकने इसमें जीवनके जिस चिरन्तन सत्यकी झाँकी दी है वह सार्वभौम, शाश्वत और सार्वकालिक है। कला और विषयकी दृष्टिसे इस कहानीका एक विशिष्ट स्थान है। रविबाबूकी 'हार जीत' और प्रेमचन्दकी 'हारकी जीत' जैसी कहानियोंसे इसकी तुलना की जा सकती हैं। तीनोंने—सुदर्शन, रविबाबू और प्रेमचन्द—जीवनके शाश्वत सत्यको प्रकट करनेकी चेष्टा की है लेकिन उनके रास्ते अलग-अलग हैं। रवि बाबूने बताया है कि जीवनका चिरन्तन सत्य, अलौकिक सौन्दर्य-का दर्शन है जिसको सुदर्शनने भी अपनी कहानी 'कमलकी बेटी' में स्वीकार

किया है लेकिन इस कहानी 'हारकी जीत' में यह दिखलाया है कि मानव-मनको जीतनेके लिए अहिंसा और श्रुतिमधुर बचनकी आवश्यकता है। जीवनका भम्बल प्रेम है। यह प्रेम जड़ और चेतन दोनोंको बाँधता है। बाबा भारती न केवल मनुष्य-जातिसे प्रेम करते हैं वरन् वे पशुओं, जैसे घोड़ासे भी उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जिस तरह किसी सभ्य पुरुषसे किया जाता है। प्रेमचन्दकी कहानी 'हारकी जीत' में यह बतानेका प्रयत्न किया गया है कि मानव-मनको जीतनेके लिए पर्याप्त पौरुष-बलकी आवश्यकता है। इसके विपरीत, सुदर्शनका कहना है कि जो व्यक्ति बीर और पराक्रमी है वह नीच कभी नहीं होगा। उसे अहिंसाका सहारा लेना ही होगा। जीवन-सागर-में प्रेमकी अविरल धारा बह रही है। मानवको इसीको पकड़ना है। श्रीयुत् गुलाबरायके शब्दोंमें 'सुदर्शनकी लिखी हुई 'हारकी जीत' कहानीमें उच्च मानवताके दशन होते हैं।'

डॉ. श्रीकृष्णलालने सुदर्शनको वातावरण-प्रधान कहानी-लेखकोंमें 'सर्वश्रेष्ठ लेखक' माना है। इस तरहके कहानीकारोंमें उन्होंने प्रसाद, गोबिन्द वल्लभ पन्त, राधिकारमण सिंह, हृदयेश आदिके नाम भी गिनाये हैं। इन लेखकोंमें सुदशनकी एक विशिष्टता है। जहाँ प्रसाद, पन्त, राजा राधिकारमण आदि कहानी-लेखकोंने अपनी कहानियोंमें 'कवित्वपूर्ण भावनाओंको कवित्व-पूर्ण वातावरण'का रूप दिया है वहाँ 'सुदर्शनने अपनी वातावरण-प्रधान कहानियोंमें यथार्थवादी भावनाओंको यथार्थ वातावरणमें चित्रित किया है। 'हारकी जीत' में एक यथार्थवादी वातावरणमें बाबा भारतीकी मनोभावनाओं-का कलापूर्ण चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। बाबा भारतीके पास एक बहुत ही अच्छा घोड़ा है जिसे खड्गसिंह डाकू लेना चाहता है। एक दिन वह एक अपाहिज बनकर घोड़ेको ले भागता है। बाबा भारती डाकूसे केवल एक प्रार्थना करते हैं कि यह बात वह किसीसे भी न कहे। कारण पूछनेपर उदार-हृदय बाबाने कहा—'लोगोंको यदि इस घटनाका पता लग गया तो वे किसी गरीबपर विश्वास न करेंगे।' यह बात डाकूके हृदयमें चुभ जाती है और दूसरे दिन वह चुपचाप बाबा भारतीके पास घोड़ा छोड़ जाता है।

बाबाजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं। वे कह उठते हैं—"अब कोई गरीबोंकी सहायतासे मुँह न मोड़ेगा।' इस कहानीमें बाबा भारती और खड्गसिंह डाकूके चरित्र-चित्रणका कोई महत्व नहीं है। न तो उनका प्रकार-चरित्र (Type) की भाँति ही महत्व है और न उनके व्यक्तित्वका। कहानीका समस्त महत्व, समस्त सौन्दर्य बाबा भारतीके एक वाक्यमें निहित है—'लोगोंको यदि इस घटनाका पता लग गया तो वे किसी गरीबपर विश्वास न करेंगे और केवल इसी भावनाकी व्यंजनाके लिए यह कहानी गढ़ी गयी। बाबा भारती और डाकू गढ़ लिए गये। वास्तवमें यह कहानी एक भावनाकी व्यंजना है जिसके लिए लेखकने यथार्थवादी वातावरण, परिस्थिति और चरित्रोंकी अवतारणा की।"[१]

"पं० सुदर्शनकी कहानियोंमें हमें जीवनकी व्याख्या मिलेगी। उनके पात्र हमारे दैनिक जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले होते हैं। और साथ ही कहानीकी पाठ्य-सामग्री भी हमारी आँखोंसे गुजरनेवाली क्रियामें नित्य अभिव्यक्त होती है। कहानी, सुदर्शनकी दृष्टिमें, हमारे जीवनकी, युगकी, समाजकी मीमांसा है, हमारी समस्याओंका हल है। वहाँ न तो नीलमपरी और लालपरी-की कल्पनाका अस्तित्व ही दीख पड़ेगा, और न यथार्थ जीवनके नरककुण्ड, जिन्हें आजके प्रगतिशील साहित्यिक जीवनका एक विशेष दृष्टिकोण बना बैठे हैं ? संक्षेपमें, उनकी कहानियोंके बारेमें यही कहना होगा कि सुदर्शनकी कहानियाँ मानव-जीवनकी कहानियाँ हैं, जहाँ यथार्थ अपने व्यापक रूपमें है, उसका रूप सँकरा नहीं है।"[२]

सुदर्शन आधुनिक कहानीका सम्बन्ध प्राचीन कालकी उपनिषदोंकी कहानियोंसे जोड़ते हैं। कुछ लोगोंको सुदर्शनकी कहानियोंमें पौराणिकताका दर्शन होता है। यह सच है कि उनकी बुद्धि पौराणिक है लेकिन इनकी पौराणिकतामें अन्धविश्वासके लिए कोई जगह नहीं है। ये मानव-मनकी नैतिक भावनाओंको परिष्कृत और उच्च बनानेके पक्षपाती हैं। सुदर्शनने अपने एक निबन्ध 'कहानीकी कहानी' में लिखा है कि 'वर्तमान युगका कहानी-लेखक

---

१. आ. हि. सा. का इतिहास ३२७–२८ २. साधना, अप्रैल १९४१

बाहरका कहानी-लेखक नहीं, अन्दरका कहानी-लेखक है। दुनियाको देखनेवाले बहुत हो चुके हैं, अब दिल और घरको देखनेवालोंकी जरूरत है।' ये सारगर्भित पंक्तियाँ सुदर्शनकी कहानियोंकी विशेषताओंकी सारांश हैं। इनका दृष्टिकोण आजके प्रगतिवादी लेखकोंसे बिलकुल भिन्न है। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि आजके संसारमें विप्लव और अशान्तिका मूल कारण यह है कि वर्तमान मानव पथभ्रष्ट हो गया है। वह हृदयके नैतिक मूल्यों (Moral values) को खो बैठा है। इन्हीं नैतिक मूल्योंको उसे फिरसे अपनाना होगा। तभी शान्ति कायम रह सकती है।

उपरिकथित निबन्ध 'कहानीकी कहानी' में ही सुदर्शनने एक स्थानपर एक मार्मिक वाक्य लिखा है कि 'कहानीमें खुला उपदेश न हो। कहानीसे उपदेश मिल जाय, यह दूसरी बात है; परन्तु उसमें प्रकट रूपसे उपदेश न दिया जाय। प्रकट रूपसे उपदेश आया और कहानी कला-हीन हुई।' सुदर्शनके मतानुसार कहानीमें प्रत्यक्ष उपदेश नहीं देना चाहिये। कहानी-कलाकी रक्षाके लिए इस बातकी जरूरत है कि कहानीकार अपनी कहानियोंमें उपदेशको प्रच्छन्न बनाये रखे। सुदर्शनकी कहानियोंमें इस सिद्धान्तका समुचित पालन किया गया है। 'हारकी जीत' में बाबा भारतीके इस सारगर्भित कथन—लोगोंको यदि इस घटनाका पता लग गया तो वे किसी गरीबपर विश्वास न करेंगे—में लेखकने प्रच्छन्न उपदेश दिया है। साधारण लेखक, ऐसे अवसरपर झट लिख देता–चोरी करना पाप है। चोरी नहीं करनी चाहिये आदि। सुदर्शन कहानीको कलात्मकरूप देना पसन्द करते हैं। इसीलिए इनकी कहानियोंमें इसका सम्यक् निर्वाह किया गया है।

अपनी स्वाभाविक, मनोरंजक कहानियों तथा सरल एवं लालित्यपूर्ण भाषाके कारण सुदर्शनने पाठकोंकी बहुत बड़ी संख्याको अपनी कहानियोंकी ओर अकृष्ट किया है। प्रेमचन्दके बाद ये ही लोक-प्रिय कहानीकार है। इनकी कहानियोंकी शैलीमें शब्दाडम्बर नहीं मिलेगा और न अकाशकी बातें ही। भाषाका आवरण सादा पर चुभता हुआ होता है। सुदर्शन 'अपनी बात' कहनेमें कुशल लेखक हैं। इनकी कहानियोंमें संकलन-त्रयकी रक्षा की गयी

है। 'प्रभावकी एकता' उपस्थित करनेमें ये सिद्ध-हस्त लेखक हैं। भाषा-शैली और कथोपकथनका ढंग प्रेमचन्दी है।

'पं० सुदर्शन यद्यपि हिन्दीके किशोरीलाल गोस्वामीके प्रतिरूप हैं तथापि वे अपनी कला और भाषाको प्रशस्त रूप दे चुके हैं। सुदर्शन हिन्दीमें सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक 'मानरो बालज़ाक' की श्रेणीमें आते हैं।'[१] ऐसे कुशल कहानी-कारपर आज एक स्वतन्त्र आलोचनात्मक पुस्तक लिखनेकी आवश्यकता है।

'सुदर्शनकी कहानी-शैलीमें वही चमत्कार है जो प्रेमचन्दकी शैलीमें है। उनकी उर्दू मिश्रित हिन्दी लगभग उतनी ही सरस है, चरम सीमा उतना ही ओजपूर्ण है किन्तु वातावरण, कथानक और पात्र-पात्रीके चित्रणमें ये प्रेम-चन्दसे अधिक कल्पनाशील और आदर्शवादी हैं। इस दिव्यताके कारण इनका आदर कदाचित् संघर्षमें फँसे हुए साधारण श्रेणीके पाठकोंमें न हो, परन्तु मध्यम वर्गके समाजमें अवश्य होता रहेगा।'[२]

रचनाएँ—कहानी संग्रह—(१) सुदर्शन-सुधा
(२) सुदर्शन-सुमन
(३) तीर्थ-यात्रा
(४) पुष्प-लता
(५) गल्प-मंजरी
(६) सुप्रभात
(७) चार कहानियाँ
(८) परिवर्तन
(९) नगीना
(१०) पनघट

———

१. साधना, अप्रैल, १९११; २ हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० १४-१५

राय कृष्णदास

[१८९२ ई०....]

सामान्य परिचय—श्रीयुत् रायकृष्णदास का जन्म १८९२ ई. में काशीके एक प्रतिष्ठित अग्रवाल परिवारमें हुआ था। इनके पूर्वज मोग़लोंके समयमें रायकी पदवीसे विभूषित हुए थे। इनके पिताराय प्रह्लाददास संस्कृतके कवि थे। ये भारतेन्दु हरिश्चन्दके भाई—उनकी बुआके पुत्र—थे। १२ बर्षकी अवस्थामें रायकृष्णदासके पिता स्वर्गवासी हो गये थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई। उसके बाद स्कूलोंमें शिक्षा दी गयी। ये अपनी साहित्यिक रुचिका परिचय बचपनमें ही देने लगे थे। आठ वर्षकी उम्रमें इन्होंने कुछ छंदोंकी रचना कर ली थी। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्रीयुत् मैथिलीशरण गुप्तसे इन्हें साहित्यिक प्रेरणा मिली। इनके संसर्गमें रहनेके कारण इन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। रायकृष्णदासके प्रारम्भिक जीवन-निर्माणमें हिन्दीके इन दो साहित्यिक लेखकोंका विशेष हाथ था। इन्हींकी प्रेरणासे ये 'सरस्वती' में कुछ लिखने लगे। राय साहबका साहित्यिक जीवन कवितासे प्रारम्भ हुआ। इसके बाद हिन्दीके महाकवि श्रीयुत जयशंकर प्रसादके व्यक्तित्वका प्रभाव पड़नेपर ये गद्यकाव्य और कहानियाँ लिखने लगे। भावात्मक गद्यकाव्य लिखनेकी प्रेरणा इन्हें महाकबि रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे मिली थी। आरम्भसे ही रायसाहबपर हिन्दीके महान कवियोंका प्रभाव पड़ता रहा है। १५ वर्षकी छोटी अबस्थामें इन्होंने 'दुलारे रामचन्द्र' नामका एक अधूरा उपन्यास लिखा था। रवीन्द्रकी 'गीतांजलि'का प्रकाशन होनेके बाद इन्होंने इसी ढंगकी स्वतंत्र गद्य-रचना लिखी—'साधना' जो हिन्दी गद्य-काव्यकी पहली पुस्तक समझी जाती है। हिन्दीमें गद्यकाव्यके जन्मदाता रायसाहब ही हैं। कविताओं और गद्य-गीतोंकी रचना कर लेनेके बाद १९१७ ई० से इन्होंने कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। कहानी-लेखनमें भी उन्हें बँगला साहित्यसे प्रेरणा मिली। हिन्दीमें रायसाहब एक उत्कृष्ट

गद्य-काव्यके लेखकके रूपमें प्रकट हुए । इनके गद्य-भाषाकी हिन्दी-संसारमें प्रशंसा होने लगी ।

रायसाहब सर्वप्रथम एक भारतीय कलाकार हैं, फिर और कुछ । बचपन-से ही इन्हें चित्रकला बहुत प्रिय थी । इनकी समस्त साधनाका परिणाम है उनका 'भारत-कला-भवन' जिसकी स्थापना सन्. २० में इन्होंने बड़े उत्साह और लगनके साथ की थी । उनके जीवनका यही सर्वश्रेष्ठ कार्य था । इस कला-भवनमें राजपूत, मुगल तथा काँगड़ा शैलियोंके लगभग एक हज़ार अच्छे चित्र संग्रहीत किये गये हैं । चित्रोंके अतिरिक्त हस्तलिखित ऐति-हासिक ग्रंथ, सोने-चाँदीकी बहुमूल्य वस्तुएँ, सिक्के, मूर्तियाँ तथा अनेक अनोखी वस्तुएँ दर्शनीय हैं । इस कला–भवनकी उन्नतिमें उन्होंने अपने धनका बहुत बड़ा हिस्सा लगा दिया था और कुछ दिनोंके बाद इसे काशी नागरी प्रचारिणी सभाको दे दिया जिससे सर्वसाधारण व्यक्ति उससे लाभ उठा सके । हिन्दीके साहित्यिकोंमें ललित-कलाओंके एकमात्र पारखी, ज्ञाता और प्रचारक रायसाहब ही हैं । भारतीय कलाओंकी रक्षा और उन्नयन उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य है ।

रायसाहबकी साहित्यिक साधना कई भागोंमें बाँटी जा सकती है । ये कवि भी हैं, गद्य काव्यकार भी हैं और कहानीकार भी । कविताके क्षेत्रमें उनकी उतनी प्रसिद्धि नहीं हुई जितनी गद्यकाव्य और कहानीके क्षेत्रोंमें हुई । गद्य-काव्यके क्षेत्रमें इनकी प्रवृत्ति रहस्योन्मुखी है । इसपर आध्यात्मिकताका गहरा रङ्ग है जो पाठकके मनको लोकोत्तर आनन्दकी ओर प्रवृत्त करता है । इनकी कहानियाँ मनोवृत्ति-मूलक तथा भावात्मक हैं । इनकी कृतियोंमें काव्य-कला, चित्रकला आदि ललित-कलाओंका अच्छा समावेश हुआ है । ललित-कलाओंको भूल जाना इनके वशकी बात नहीं है ।

रायसाहबकी ही प्रेरणा और अथक परिश्रमसे द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ तैयार हुआ और द्विवेदीजीको यह समर्पित किया गया । पुस्तकोंके सुन्दर प्रकाशनमें भी उन्होंने अपनी कलाकारिताका परिचय दिया है । इसके लिए उन्होंने हिन्दीकी अच्छी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए 'भारती-भण्डार' नामकी

पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाकी स्थापना की जिसने हिन्दीके उच्चकोटिके लेखकोंकी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। यह संस्था इन दिनों लीडर प्रेसके अधीन है। रायसाहब हिन्दीकी महान शक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने हिन्दीके लिए बहुत-कुछ किया। ये गम्भीर, भावुक तथा सहृदय व्यक्ति हैं।

रायसाहबकी रचनाएँ—

कहानी-संग्रह	१. अनाख्या
	२, सुधांशु,
	३. आँखोंकी थाह
कहानी-संकलन	१. इक्कीस कहानियाँ,
	२. नयी कहानियाँ
गद्य-काव्य	१. साधना
	२. छायापथ
	३. संलाप
	४. प्रवाल
कविता	१. भावुक
	२ व्रजरज
ललितकलापर निबन्ध	१. भारतीय मूर्तिकला
	२. भारतीय चित्रकला

कहानीकार रायकृष्णदास—रायसाहबके कहानी लिखनेका क्रम सन् १७ से शुरू होता है। महाबीरप्रसाद द्विवेदीकी प्रेरणा और जयशंकर प्रसादका प्रभाव ग्रहण कर उन्होंने कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। मैं कह चुका हूँ कि रायसाहब प्रसाद-स्कूलके एकमात्र कहानीकार हैं। द्विवेदी-युगके कहानीकारोंमें इनका एक अन्यतम स्थान है। प्रसादजीकी तरह इन्होंने भी लगभग तीन प्रकारकी कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें साधारण कोटिकी भावात्मकता है। कलाकी दृष्टिसे ये निम्न कोटिकी हैं किन्तु जिन कहानियोंमें इनकी रहस्यात्मक तथा यथार्थवादात्मक बुद्धि-चेतना उद्बुद्ध हुई हैं वे हिन्दीमें अपना महत्त्व रखती हैं। इन्होंने ऐतिहासिक,

प्रागैतिहासिक और सामाजिक सभी प्रकारकी कहानियाँ लिखी हैं तथापि इनमें वे कहानियाँ ही अच्छी कही जा सकती हैं जिनमें उन्होंने प्रागैतिहासिक युगको साकार करनेकी चेष्टा की है। 'रमणीका रहस्य' और 'अन्तःपुरका आरम्भ' ऐसी ही कहानियाँ हैं। उनकी सामाजिक कहानियोंकी रचना-शैलीपर प्रेमचन्दका प्रभाव जान पड़ता है और ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक कहानियोंपर प्रसादका अक्षुण्ण प्रभाव मालूम होता है। दूसरे वर्गकी कहानियों और प्रसादकी कहानियोंमें किसी तरहका भेद नहीं मालूम होता।

कलाके सम्बन्धमें रायसाहबकी अपनी धारणाएँ हैं। उनकी सहज प्रवृत्ति कलाकी उन्मुक्तताकी ओर झुकी है। वे कलाको उपादेयताकी वस्तु नहीं समझते। उनकी रायमें कलाकी सार्थकता आनन्दकी सृष्टि करनेमें है, उसकी व्यावहारिक उपयोगितामें नहीं। 'कला कलाके लिए है'—रायसाहबको यह सिद्धान्त मान्य है। इसलिए उनकी कहानियोंकी रचनाका उद्देश्य सामाजिक या राजनीतिक जीवनके बोझिल प्रश्नोंका समाधान निकालना नहीं है। रायसाहब सुदर्शनकी तरह जीवनके चिरन्तन प्रश्नोंको ही अपनी कहानियोंमें स्थान देते हैं। लेकिन दोनोंकी प्रवृत्तियों और उनके स्वरूपमें अन्तर हैं। जहाँ सुदर्शनकी दृष्टि सामाजिक है वहाँ रायसाहबकी दृष्टि आध्यात्मिक तथा रहस्योन्मुख है। पहले लेखकमें यदि भावावेश है तो दूसरेमें भावुकता। एक सामाजिक जीवनमें लोकोत्तर आनन्दकी सृष्टि करता है तो दूसरा अपने यथार्थ जीवनसे भिन्न किसी अन्य लोककी सृष्टि कर लोकोत्तर आनन्दका संचार करता है।

हिन्दीमें वातावरण-प्रधान कहानियोंकी कमी नहीं है। जयशंकर प्रसाद, रायकृष्णदास, सुदर्शन आदि कहानी-लेखक इसी वर्गके कहानीकार हैं। इन कहानियोंका महत्व कलाके प्रदर्शनमें है। कवित्वपूर्ण भावनाओंको कवित्वपूर्ण वातावरणका रूप देना इन कहानियोंका उद्देश्य है। सुदर्शनने अपनी कहानियोंमें जिस वातावरणकी सृष्टि की है वह हमारे भारतीय सामाजिक जीवनका यथार्थ चित्र है। इसलिए इनमें भावुकता तथा कवित्वको उतना स्थान नहीं दिया गया है, जितना जीवनकी यथार्थताको दिया गया है। प्रसाद या

रायकृष्णदास कवित्वपूर्ण वातावरण, कवित्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियोंकी सृष्टि करनेमें अद्वितीय हैं। यदि सुदर्शनकी कलामें यथार्थवादका चित्रण मिलता है तो रायसाहबकी कलामें स्वच्छन्दवाद (Romanticism) की अभिव्यंजना। इसीलिए दोनोंकी अभिव्यञ्जना-प्रणालीमें भी बहुत अन्तर है।

रायकृष्णदासने प्रथमबार कहानी-कलाको कलाका वास्तविक रूप प्रदान किया। उनकी कहानियोंमें कथानक छोटा कविताके विषयकी तरह एक मनोदशा, हृदयका एक चित्र, किसी घटनाका मार्मिक तथा सूक्ष्म वर्णन, प्रेमकी एक झलक अथवा निष्ठुरता आदिका सफल चित्रण किया गया है। यही उनकी कहानियोंके विषय है। उनकी सामाजिक तथा ऐतिहासिक कहानियोंमें इन्हीं सब विषयोंका समावेश हुआ है। इसके लिए उन्हें विशेष श्रम नहीं करना पड़ा है, इधर-उधरसे सामग्रियोंका संचय करना नहीं पड़ा है। उनके मनमें भावनाएँ उठीं और कहानियाँ लिख दी गयीं। जीवनमें आये दिन जो प्रश्न उठते रहते हैं, उन्हींको रायसाहब चिरन्तन रूप देनेका प्रयत्न करते हैं। ये जीवनके राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्नोंसे दूर रहते हैं।

रायसाहबकी अधिकांश कहानियाँ भावात्मक हैं। ये अपनेमें स्वच्छन्द हैं। इसलिए इनकी कहानियाँ कहानी-कलाकी निश्चित कसौटीपर कसी नहीं जा सकतीं। भावात्मक कहानियाँ स्वान्तः सुखाय लिखी जाती हैं। इनका कोई उद्देश्य नहीं होता; प्रचारकी दृष्टिसे इनका महत्त्व नहीं है। 'कला,' कलाके लिए नामपर लिखी जानेवाली कहानियोंमें कहानीकारकी तन्मयता तथा भावुकताकी उड़ान दर्शनीय होती है। इनमें जीवनके राग-विरागका सुख, दुःखके संघर्षका तुमुल अन्तर्द्वन्द्व देखते ही बनता है। अधिकांश पाठकोंको रायसाहबकी कहानियाँ अस्वाभाविक जँचेगी क्योंकि उनमें समाजके संघर्षमय जीवनके प्रश्नोंका समाधान उन्हें नहीं मिलता। इन भावात्मक कहानियोंमें उन्हें मनोरञ्जनकी कोई सामग्री नहीं मिलती। वे खीझ उठते हैं। सच तो यह है कि इन कहानियोंकी सराहना वही कर सकता है जिसकी बुद्धि परिष्कृत, मन संस्कृत और आत्मा सचेत है। साधारण कोटिके पाठकों-

को ये कहानियाँ अस्वाभाविक जँचती हैं। रायसाहबकी अधिकांश कहानियोंमें जीवनके किसी-न-किसी रहस्यका उद्घाटन करना है। ये स्थूल जगत्से सम्बन्ध न रखकर भाव-जगत्से सम्बन्ध रखती हैं। 'रमणीका रहस्य' नारी-स्वभावका विश्लेषण और उसके जीवनका लक्ष्य इंगित करनेके उद्देश्यसे यह कहानी लिखी गयी है। इसका मुख्य वाक्य सम्भवतः यह हो सकता है—'नारीका प्रकृत रूप उसके मुसकानमें नहीं, आँसुओंमें प्रत्यक्ष होता है।' लेखकने कल्पना और भावुकताके बलपर उत्तरी ध्रुवमें एक विचित्र देशकी कल्पना की है जहाँ रमणीका जन्म और पालन-पोषण होता है। प्रागैतिहासिक युगकी सजीव तसवीर, खींच दी गयी है। लेखकने उस विचित्र देशका चित्र खींचा है 'जहाँ सूर्य कभी अस्त नहीं होता और नारीका चन्द्रानन नित्य उदित रहता है।' वातावरण-प्रधान कहानी लिखनेमें रायकृष्णदासकी समता करनेवाला, प्रसादको छोड़कर, दूसरा कोई भी हिन्दी लेखक नजर नहीं आता। इस कलामें ये अकेले और अद्वितीय हैं। ललित-कलाओंमें दक्ष होनेके नाते इन्होंने जिस युगका अंकन किया है, वह ज्यों-का-त्यों है, न कम न अधिक। प्रागैतिहासिक युगके वातावरणका वर्णन करनेमें इन्होंने अपनी स्वच्छन्द कल्पनाका आश्रय लिया है। हिन्दी-कहानी-साहित्यमें रायकृष्णदास ही एक ऐसे लेखक हैं जिनकी कहानी-कलामें उन्मुक्त स्वच्छन्दताका दर्शन होता है। ये प्रधानतः कलाकार हैं, कहानीकार बादमें। उन्होंने अपनी कहानी 'कला और कृत्रिम कला' में वास्तविक कला और कृत्रिम कलाका अन्तर बड़े ही कलात्मक ढंगसे बताया है।

वातावरण-प्रधान कहानीका उद्देश्य कलात्मकताकी सृष्टि करना होता है। अतः ऐसी कहानियोंमें चरित्र-चित्रणका कोई महत्त्व नहीं होता है। यदि चरित्रोंकी कल्पना की भी जाती है तो वे प्रकार-विशेष (Type) ही होते हैं। उनके व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होते। रायसाहबके पात्र टाइप हैं। 'अन्तःपुरका आरम्भ' 'मिठास', 'रमणीका रहस्य' आदि कहानियोंमें उन्होंने जिन नारी-पुरुषोंका वर्णन किया है वे अपने वर्गगत स्वभावके अनुकूल हैं। राय साहबकी दृष्टिमें नारी सदैव नारी रहेगी और पुरुष सदैव पुरुष रहेगा।

दोनोंके अपने-अपने क्षेत्र हैं। उनकी लगभग सभी कहानियोंमें उन्होंने नारी-पुरुषके स्वाभाविक तथा पारस्परिक सम्बन्धका वर्णन किया है। नारी कलाकी जननी है। कला सुन्दर इसलिए है कि वह नारीगत प्रवृत्तियोंसे विभूषित है। दया, क्षमा और करुणाकी साकार प्रतिमा नारी, रायसाहबके मतमें सौन्दर्यकी पूज्य देवी है जिसके अभावमें कलाकी आराधना अधूरी रह जाती, जीवन अधूरा रह जाता, पुरुष अधूरा रह जाता। 'रमणीका रहस्य' में रमणी नारी-वर्गका प्रतिनिधित्व करती है और वणिक्-पुत्र पुरुष वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। इस कहानीमें नारीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए लेखक कहता है—'नारी जगज्जननी हैं। उनका हृदय दया-मया करुणासे निर्मित होता है। वहाँसे इनकी निरन्तर वृष्टि हुआ करती है जो इस धधकते हुए जगती-तलको शीतल और हरा-भरा बनाये रहती हैं।' पुरुषकी जन्मजात निर्ममता-को कोमल बनाये रखनेमें नारीका प्रत्यक्ष हाथ रहा है।

रायकृष्णदासकी कहानियोंका सबसे बड़ा आकर्षण उनकी भाषा शैली है। श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद शर्माके शब्दोंमें 'रायकृष्ण जी भाव-प्रकाशनकी एक विचित्र-शैली लेकर गद्य-साहित्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। परोक्ष सत्ताकी जो भावात्मक अनुभूति मानव-हृदयमें होती है उसकी व्यंजना इन्होंने बड़ी ही मार्मिक प्रणालीसे की है। एक प्रकारसे इस प्रणालीका उन्होंने शिलान्यास किया। अनुभूतिके भावात्मक होनेके कारण कल्पनाका इन्होंने विशेष आधार रखा है। भावनाओंकी गम्भीरताके साथ-साथ इनकी भाषामें बड़ा संयम पाया जाता है। इतनी व्यावहारिक और नित्यकी चलती-फिरती, सीधी-सादी भाषा-का ऐसा उपयोग किया गया है कि भाव-व्यंजनामें बड़ी ही स्पष्टता आ गयी है। इस भाषाको चलती-फिरती कहनेका तात्पर्य केवल यह है कि तत्समताके साथ 'कलपते' और 'अचरज' ऐसे कितने शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त साधारण उर्दूके शब्द भी प्रयोगमें आये हैं। यों तो स्थान-स्थानपर इन शब्दोंके तत्सम रूप ही लिखे गये हैं, परन्तु अधिकतर तद्भव रूप तो एक ओर रहा, मुहावरोंतकको हिन्दीका झोलगा पहनाया गया है। 'दिलका छोटा है' के स्थानपर उसका शुद्ध अनुवाद करके 'हृदयके लघुतर

हैं', लिखा गया है। कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो या तो तद्भवताके कारण बिगड़ गये हैं अथवा उनका प्रान्तीय प्रयोग हुआ है। 'रमणीके रहस्य'में ऐसे बहुतसे शब्द पाये जाते हैं–'साहुत' 'काँदने' 'आराव' 'महीनवें' इत्यादि। ऐसा करनेके केवल दो कारण हो सकते हैं। एक तो पदावलीकी रमणीयता और दूसरा भाषाके चलतेपनका विचार। साथ ही 'सा' (वह, इसलिए) हौ (हो) 'लों' (तक) इत्यादि शब्दोंके व्यवहार हुए हैं। इनसे लेखकका पंडितऊपन प्रकट होता है'।[1] यह भाषाकी सरसता और स्वाभाविकताके विचारसे लिखा गया है। 'रमणीका रहस्य' कहानीमें 'सो' का व्यवहार दो-तीन स्थानपर हुआ है–'सो मैं जानती हूँ', 'सो इसे ग्रहण करो,' 'सो मेरी इच्छा है।' इस तरहके वाक्य लल्लूलाल और सदल मिश्रकी गद्य-भाषामें पाये जाते थे।

रायसाहबकी गद्य-भाषामें गद्य-काव्यका-सा आनन्द आता है। 'परन्तु गद्य-काव्यके प्रलोभनको रोक न सकनेके कारण संस्कृतकी 'कादंबरी'की शैली अपनाकर जो लेखक हिन्दीमें संस्कृतके तत्सम शब्दोंकी समासांत पदावली भर देते हैं' उनका अनुकरण रायसाहबने नहीं किया। भावुकता-प्रधान होनेपर भी उनकी शैलीमें कहीं भी प्रसादजीकी अस्पष्टता नहीं है, संस्कृतकी तत्समतामें उनके आध्यात्मिक विचार पाठकोंकी बुद्धिके लिए 'अजेय दुर्ग' नहीं बन गये हैं।'[2]

रायकृष्णदासकी कहानी-कलाकी सबसे बड़ी खूबी इस बातमें है कि इनकी कहानियाँ भावात्मक होते हुए भी घटनात्मक और वर्णनात्मक होती हैं। कलाकी यह कुशलता हिन्दीके कम ही लेखकोंमें पायी जाती है। मानव-जीवनके बाह्य और आन्तरिक पक्षोंका संतुलित वर्णन इनकी कहानियोंमें हुआ है। यहीं प्रसादजी और रायकृष्णदासकी कहानी-कलामें अन्तर दीख पड़ता है। रायसाहबकी नारीपर शरद्का प्रभाव मालूम होता है और उनकी आध्यत्मिक भावुकतापर प्रसाद और रवीन्द्रनाथकी छाप।

---

१. हिन्दीकी गद्य-शैलीका विकास पृ०–१४९–५०
२. हमारे गद्य-निर्माता पृ० १४५

महादेवी वर्मा

[१९०७ ई०.......]

सामान्य परिचय—श्रीमती महादेवी वर्माका जन्म सन् १९०७ ई० में फर्रूखाबादमें हुआ था। उनके पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एम.ए.एल. एल.बी. भागलपुरके एक स्कूलमें हेडमास्टर थे। उनकी माता श्रीमती हेमरानी देवी भी हिन्दीकी विदुषी और भक्त थीं। महादेवीके नाना भी ब्रजभाषाके एक अच्छे कवि थे। इससे यह स्पष्ट है कि उनका जन्म एक विद्वान् और भक्त-परिवारमें हुआ था। उनके एक भाई श्री जगमोहन वर्मा एम० ए०, एल० एल० बी० तथा दूसरे भाई श्री मनमोहन वर्मा एम० ए० हैं। उनकी एक बहन भी हैं। वह भी शिक्षित और विदुषी हैं।

महादेवीकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौरमें हुई। वहाँ उन्होंने छठी कक्षातक शिक्षा प्राप्त की। घरपर चित्रण और संगीतकी शिक्षा भी उन्हें दी गयी। तुलसी, सूर और मीराका साहित्य उन्होंने अपनी मातासे ही पढ़ा। वह बचपनसे ही साहित्य-प्रिय और भावुक हैं। ९ वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह डॉ० स्वरूप नारायण वर्माके साथ हुआ। इससे उनकी शिक्षाका क्रम टूट गया। उनके श्वसुर लड़कियोंकी शिक्षाके पक्षमें नहीं थे। अबतक उनकी शिक्षा पिता और माताके आग्रहके कारण ही हो सकी थी। इसलिए श्वसुरके देहान्त होनेपर वह पुनः 'शिक्षा प्राप्त करनेकी ओर अग्रसर हुईं। सन् १९२० में १३ वर्षकी उम्रमें उन्होंने प्रयागसे प्रथम श्रेणीमें मिडिलकी परीक्षा पास की। युक्तप्रान्तके विद्यार्थियोंमें उनका स्थान सर्वप्रथम रहा। इसके फलस्वरूप उन्हें छात्रवृत्ति मिली। सन्'२४ में १७वर्षकी उम्रमें उन्होंने एंट्रेन्सकी परीक्षा प्रथमश्रेणीमें पास की और फिर संयुक्तप्रान्तमें उन्हें सर्वप्रथम स्थान मिला। इस बार भी उन्हें छात्रवृत्ति मिली। सन् '२६ में उन्होंने इन्टरमीडिएट और सन्' २८ में बी० ए० की परीक्षाएँ क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेजसे पास की। अन्तमें उन्होंने संस्कृतमें एम० ए० की परीक्षा पास की। इस प्रकार उनका विद्यार्थी-जीवन आदिसे अन्ततक बहुत सफल रहा। बी० ए० में

उनका एक विषय दर्शन भी था। इसलिए उन्होंने भारतीय दर्शनका गम्भीर अध्ययन किया। इस अध्ययनकी छाप उनपर अबतक बनी हुई है। एम० ए० पास करनेके बाद महादेवी प्रयाग महिला विद्यापीठकी प्रधान अध्यापिका नियुक्त हुईं। महादेवीका अबतकका जीवन शिक्षा-विभागमें ही व्यतीत हुआ है। आज भी वह उसी पदपर काम कर रही हैं। उनके सतत उद्योगसे उक्त विद्यापीठने उत्तरोत्तर उन्नति की है। वह 'चाँद' की सम्पादिका भी रह चुकी हैं। इधर कुछ दिन हुए उन्होंने प्रयागमें 'साहित्य-संसद्' नामकी एक संस्था स्थापित की है। इस संस्था द्वारा वह हिन्दी-लेखकोंकी सहायता करना चाहती हैं।

विद्यार्थी-जीवनकी तरह महादेवीकी साहित्य-साधना भी अत्यन्त सफल रही। बचपनसे ही कविता करनेकी ओर उनका आकर्षण रहा। बड़ी होनेपर वह अपनी माताके पदोंमें अपनी ओरसे कुछ कड़ियाँ जोड़ दिया करती थीं। स्वतन्त्र रूपसे भी वह तुकबन्दियाँ करती थीं, पर उन्हें पढ़कर वह प्रायः फेंक दिया करती थीं। वह अपनी तुकबन्दियोंको किसीको दिखाना पसन्द नहीं करती थीं। कविता लिखकर नष्ट कर देनेमें ही उन्हें सन्तोष मिलता था पर ज्यों-ज्यों उनकी शिक्षा उन्नत होती गयी, त्यों-त्यों उनकी कवितामें भी प्रौढ़ता आती गयी। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'चाँद' में प्रकाशित होनेके लिए भेजीं। हिन्दी-संसारमें उनकी उन प्रारम्भिक रचनाओंका अच्छा स्वागत हुआ। इससे महादेवीको अधिक प्रोत्साहन मिला और वह काव्य-साधनाकी ओर अग्रसर हुईं। अबतक उन्होंने गद्यरचना नहीं की थी। आज हिन्दीमें वह रहस्यवादकी एकमात्र अप्रतिम कवयित्री समझी जाती हैं। 'नीरजा' पर उन्हें ५००) का सेक्सरिया पुरस्कार और 'यामा' पर १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है। ५००) का सेक्सरिया पुरस्कार उन्होंने महिला-विद्यापीठको दान कर दिया।

"महादेवीका व्यक्तित्व—हिन्दीके कवियों तथा कवयित्रियोंके बीच अपनी विशेषताओंके कारण किसीसे मेल नहीं खाता। उन्होंने व्यक्तित्वका स्वयं निर्माण किया है। पहले शरीरसे दुबली-पतली होनेपर भी उनमें स्फूर्ति थी।

उनके जीवनमें कृत्रिमता नहीं है। शारीरिक सौन्दर्यकी अपेक्षा वह मानसिक सौन्दर्यको बहुत अच्छा समझती हैं। उनके जीवनमें सादगी है, पर विचारोंमें उच्चता है। उनका भोजन सादा और रहन-सहन साधारण है। अपने शरीर-शृंगार सादे वस्त्रोंसे ही करती हैं। उनके वस्त्रोंसे, उनकी रहन-सहनसे उनकी सुरुचिका यथेष्ट परिचय मिल जाता है। शरीरमें सबल प्राण महादेवीको ही मिला है। इनकी आत्मा उनके शरीरसे अधिक बलवती है। प्रायः रुग्ण रहनेपर भी वह अपनी आत्मामें किसी प्रकारकी दुर्बलताको स्थान नहीं देतीं। इसीलिए वह मानव-जीवनकी विविध कठिनाइयोंको झेलनेमें समर्थ हुई हैं। उनके जीवनमें वेदना भी है, पुलक भी है, हास्य भी है, रुदन भी है। इन सबके समन्वयमें ही उनके व्यक्तित्वकी विशेषता है।

"महादेवी स्पष्ट वक्ता हैं। उन्हें जो कुछ कहना होता है उसे थोड़ेमें वह कह देती हैं। उनकी स्पष्टवादिताके लिए कोई उन्हें क्या कहेगा—इसकी चिन्ता वह नहीं करतीं। उनके हृदयमें सहृदयता, सहानुभूति और करुणाका स्रोत बराबर बहता रहता है। वह अपने घरसे बाहर बहुत कम निकलती हैं। नाम कमानेकी अथवा जनतामें लोक-प्रिय बननेकी लालसा उनमें नहीं है। इसलिए साहित्य-सम्मेलन आदिमें भी वह कम सम्मिलित होती हैं। अपने कामसे ही वह बाहर आती हैं। महादेवी अध्ययनशील कवियत्री हैं। उन्होंने अपने अध्ययनसे अपने व्यक्तित्वका निर्माण किया है। भारतीय दर्शनके प्रति उनका स्वाभाविक अनुराग है। उस अनुरागने उनके व्यक्तित्त्वको विशेषता दी है। उनमें जितनी सौम्यता, जितनी दार्शनिकता, जितनी चिन्तनशीलता है वह केवल इसी अनुरागके कारण है। वह अपने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें एक भारतीय महिला हैं। चित्र-कलासे उन्हें विशेष प्रेम है, प्रेम ही नहीं वह स्वयं भी चित्रकार हैं। संगीतकलासे भलीभाँति परिचित हैं।...महादेवीके दाम्पत्य जीवनके अनुभवोंके सम्बन्धमें अधिकार पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता, पर उनकी कविताओंकी प्रतिध्वनि इस बातकी ओर अवश्य संकेत करती है कि उन्हें सांसारिक कटु अनुभव हुए हैं, तभी एक स्थानपर उन्होंने लिखा है—'समताके धरातलपर सुख-दुःखका मुक्त

आदान-प्रदान यदि मित्रताकी, परिभाषा मानी जाय तो मेरे पास मित्रका अभाव है।' वस्तुतः उनके इसी वाक्य,में उनके हृदयकी समस्त वेदना छिपी हुई है। वेदनाके प्रति उनके स्नेहको इसी अभावने विकसित और प्रसारित किया है। उनकी यही लौकिक वेदना उनकी रचनाओंमें अलौकिक वेदना बन गयी है। इस वेदनाको विकासकी प्रेरणा मिली है उनके अध्ययन, उनके चिन्तन तथा उनके व्यक्तिगत एवं साहित्यिक वातावरणसे। विस्मयकी भावना तो उनमें बचपनसे ही बद्धमूल थी। अपनी माँसे, अपने वातावरणसे और स्वयं अपनेसे कौतूहलपूर्ण प्रश्न करती हुई वह रहस्यमयी बनी हैं। साथ ही, उन्होंने मीराकी करुण रचनाओं, भगवान् बुद्धके सिद्धान्तों, स्वामी विवेकानन्द तथा रामतीर्थके वैदान्तिक व्याख्यानों, वैदिक तथा आर्य-समाजी सिद्धान्तों और भारतीय दर्शनोंके अध्ययनसे बहुत कुछ लेकर अपनी रहस्यमयी साधनाका पाथेय बनाया है।

"महादेवीने हिन्दी जगत्के सामने कवि, कहानीकार, निबन्ध-लेखिका और आलोचकके रूपमें आकर अपनी साहित्य-साधनाका परिचय दिया है। इधर वेदोंके विशिष्ट अंशोंका अनुवाद भी उन्होंने आरम्भ किया है और इस प्रकार वह एक सफल अनुवादिका भी सिद्ध हो रही हैं।...महादेवीकी साहित्य-साधना बहुमुखी है और हिन्दीके आधुनिक जीवित कवियोंमें उनका स्थान सर्वप्रथम है।"[1]

महादेवीकी रचाएँ—

कविता—
(१) नीहार
(२) रश्मि
(३) नीरजा
(४) सान्ध्यगीत
(५) दीपशिखा
(६) यामा ('नीहार', 'रश्मि' और 'नीरजा'का संग्रह)

कहानी-संस्मरण— (१) अतीतके चलचित्र

---

१. आधुनिक कवियोंकी काव्य-साधना, पृ० ३०३,

(२) स्मृतिकी रेखाएँ

निबन्ध— (१) शृंखलाकी कड़ियाँ

आलोचना— (१) हिन्दीका विवेचनात्मक गद्य

हिन्दी गद्य-साहित्यमें महादेवीका स्थान—हिन्दी गद्य-साहित्यके उन्नायकोंमें स्त्रियोंका सहयोग नगण्य है। एक तो वैसे ही स्त्रियाँ साहित्यके क्षेत्रमें कम आती हैं, जो आती भी हैं वे भावुक और कोमल हृदयकी होती हैं और स्वभावतः कविताकी ओर झुक जाती हैं। विश्वके दूसरे-दूसरे देशोंकी अपेक्षा भारतीय साहित्यमे लेखिकाओंका बहुत अभाव है। हिन्दी साहित्यमें कुछ इनी-गिनी ही लेखिकाएँ हैं जिन्होंने साहित्य-साधनामें अपना योग दिया है। इसका एकमात्र कारण है अशिक्षा। सुभाद्राकुमारी चौहान जैसी कुछेक कवयित्री तो देखनेको मिल जाती हैं लेकिन गद्यके क्षेत्रमें उनका प्रायः अभाव ही है। मासिक पत्रोंमें कभी किसी महिलाका लेख देखनेको मिल जाय तो यह अपवाद होगा। स्त्री-शिक्षाका ज्यों-ज्यों प्रसार होता जा रहा है त्यों-त्यों नयी-नयी लेखिकाएँ इस ओर आ रही हैं। इनमें सुश्री चन्दाबाई, कमलाबाई कीवे, कुमारी गोदावरी केतकर, चन्द्रावती त्रिपाठी, रामेश्वरी नेहरू, महादेवी बर्मा इत्यादिके नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी गद्य-साहित्यमें सम्भवतः पहले-पहल महादेवी वर्मा ही हिन्दी गद्यकी ओर प्रवृत्त हुईं। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि महादेवीका जितना अधिकार पद्यपर है उतना ही गद्यपर भी है। लोगोंकी इस अज्ञानताके कारण ही अबतक इनके गद्य-साहित्यपर कहीं भी कुछ लिखा हुआ नहीं पाया जाता। उनकी गद्यकी चार प्रौढ़ रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन हिन्दीमें एक भी ऐसी पुस्तक नहीं है जिसके अध्ययनसे हिन्दीपाठक उनके गद्य-साहित्यसे परिचित हो सकें। यह हमारे लिए दुर्भाग्यकी बात है। जिस शक्ति और गतिके साथ महादेवीने हिन्दीको पद्य-साहित्य दिया है उतनी ही तत्परताके साथ उन्होंने गद्य-साहित्य भी दिया है। इनके गद्यके बारेमें कभी-कभी पत्र-पत्रिकाओंमें या किसी पुस्तकमें अवश्य दो-चार पंक्तियाँ लिख दी जाती हैं लेकिन उनसे हमारे ज्ञानकी तुष्टि नहीं होती। आज महादेवीज-

गद्य-साहित्यकी सम्यक् आलोचना होनी चाहिये। पर इस ओर आलोचक निश्चेष्ट हैं।

हिन्दी गद्यको महादेवीने एक नितान्त नूतन भाषा-शैली दी है। इनका-सा गद्य अबतक लिखा ही नहीं गया। हिन्दी-गद्यमें संस्मरण लिखनेका एक नया ढंग इन्होंने ही अपनाया है। 'अतीतके चल-चित्र' और 'स्मृतिकी रेखाएँ' हिन्दी गद्य-साहित्यकी अमूल्य निधियाँ हैं। इनकी टक्करका, जहाँतक मैं जानता हूँ, हिन्दीमें एक भी दूसरी पुस्तक देखनेको नहीं मिलती। इन पुस्तकोंको महादेवीने शैलीका एक अभिनव रूप दिया है। इनमें शब्द-चित्र भी हैं, रेखा-चित्र भी हैं, संस्मरण भी हैं और कहानियाँ भी हैं। इन रेखा-चित्रोंको शान्तिप्रिय द्विवेदीने 'संस्मरण' की संज्ञा दी है और रायकृष्णदासने 'कहानियाँ' मानकर 'इक्कीस कहानियाँ' में उनके 'घीसा' शीर्षक रेखा-चित्रको स्थान दिया है। श्री शन्तिप्रिय द्विवेदीने महादेवीके रेखा-चित्रोंके सम्बन्धमें उचित ही कहा है कि ये रेखाचित्र 'संस्मरणमें कहानी हैं, कहानीमें संस्मरण।'[1] वस्तुतः ये संस्मरण ही हैं। हम उनमें कहानी-कलाके तत्वोंका दर्शन नहीं करते। 'घीसा' वास्तवमें संस्मरण साहित्यका एक उत्कृष्ट उदाहरण है हम इसे कहानी नहीं कह सकते।

"साहित्यिक अभिव्यक्तिके विविध साधनों (कविता, कहानी, नाटक उपन्यास, निबन्ध) के उत्कर्षके बाद अब साधनोंका नूतन संस्करण हो रहा है; नाटकोंने एकांकी, काव्यने इम्प्रेसेनिस्ट कविता (Empressionist poetry) का, निबन्धों, कहानियों और जीवन-चरित्रोंने शब्द-चित्रों और संस्मरणोंका नव-अवयव अपनाया है। इन विभिन्न रूपान्तरोंमें 'आप बीती जगबीती' के रूपमें आजका युग कथा-साहित्यका युग है। भाव-युग (छायावाद-युग) के बाद साहित्य अनुभव-युगमें है। शब्द-चित्रों और संस्मरणोंका अभी प्रारम्भ है। इस दिशाके कतिपय उल्लेखनीय लेखक हैं— बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, निराला, विनोदशंकर व्यास, रामनाथ 'सुमन,' सत्यजीवन वर्मा, श्रीराम शर्मा"।[2]

---

१ सामयिकी पृ. २७६.   २. वही पृ. २७६

महादेवीका संस्मरण—"हमारे साहित्यमें पुरुषकी आँखोंसे देखा हुआ समाज पर्याप्त आ चुका है, किन्तु यह पहला गम्भीर प्रयत्न है जो नारी-की आँखोंसे समाजका चित्रोद्घाटन करता है। शरदने समाजकी जिस मर्यादाका भार देवियोंके कन्धोंपर डाल दिया है, 'अतीतके चलचित्र' में महादेवीने उसे ही सँभाला है। यह पुस्तक एक स्वच्छ सामाजिक दर्पण है, अत्याचारी इसमें अपनी मुखाकृति देख सकते हैं और नारी अपनी साधनाका प्रकाश। इसका प्रत्येक आख्यान साँचोंमें ढली सुघर सृष्टिकी तरह सुडौल है। कवि होनेके कारण महादेवीकी भाषामें रसात्मकता और चित्र-मनोरमता है। किन्तु कवित्वके नीचे वस्तुत्व दब नहीं गया है बल्कि वह हृदय-स्निग्ध होकर पत्थरसे संगमर्मर हो गया है। काव्यके मानस-लोककी महा-देवीका समाज-लोक 'अतीतके चल-चित्र' में है। उनकी कविताओंमें अनुभूतियोंका संगीत है, उनके संस्मरणोंमें अनुभूतियोंकी स्वरलिपि, उनके जीवनका अनुभव-सूत्र। शरदकी आर्घ्य-कन्याएँ यदि अपने संस्मरण स्वयं लिखती हैं तो उनकी कथाका जो वास्तविक और सात्त्विक रूप होता वही इन जीवित कहानियोंमें है। 'स्मृतिकी रेखाएँ' संस्मरणसे अधिक कथा-निबन्ध बन गयी हैं। तथापि इनमें भी रसात्मकता और चित्रात्मकता है। पात्रोंका चरित्र-चित्रण इतना सजीव है कि मानो वे पृथ्वीसे उठाकर शब्दोंमें रोप दिये गये हैं।"[१]

अतएव महादेवीके संस्मरण जीवनके सामाजिक स्तरपर खड़े हैं। अपने संस्मरणोंमें महादेवी वेदनाके भाव-लोकसे निकलकर सहानुभूतिके वस्तु-लोकमें आयी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इनके गद्य और पद्यके वर्ण्य विषयमें पृथ्वी और आकाशका अन्तर है। महादेवीके वस्तु-लोकके दृश्य उनके संस्मरणों ('स्मृतिकी रेखाएँ' और 'अतीतके चल-चित्र') में साकार तथा मूर्त हो उठे हैं और उनकी व्याख्या 'शृंखलाकी कड़ियाँ' (निबन्ध-संग्रह) सजीव हो उठी है। गद्य-लेखिका महादेवीको समझनेके लिए इन प्रौढ़ रचनाओंका अध्ययन अपेक्षित है। महादेवीका शान्त-अशान्त व्यक्तित्व

१. सामयिकी. पृ. २७७

इनमें आइनेकी तरह चमक उठा है। रहस्यवादिनी महादेवी अपने संस्मरणोंमें साम्यवादिनी हो गयी हैं। अपने काव्य-साहित्यमें ये जितनी ही शान्त और गम्भीर हैं, गद्य-साहित्यमें उतनी ही उग्र और कठोर। व्यक्तित्वका यह दोहरा रूप हिन्दीके दूसरे कवियोंमें नहीं पाया जाता। महादेवीका वास्तविक स्वरूप इन्हीं संस्मरणोंमें छिपा है।

"समाजके पीड़ित, उपेक्षित वर्गके प्रति ममताका जो स्वरूप महादेवीके संस्मरणोंमें पाया जाता है वह शरदको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। हिन्दी कहानियोंमें प्रगतिका सच्चा स्वरूप उपस्थित करनेका श्रेय श्रीमती महादेवी वर्माको ही है। इसके पहले कहानीकारोंने निम्न वर्गके इन प्राणियोंको अपने साहित्यमें इस रूपमें नहीं अपनाया था। जीवनका यह कठोर सत्य उनकी कवितामें स्थान न पा सका तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं।"[१]

महादेवीके कहानी-संस्मरणके केन्द्रमें 'जन्मसे अभिशप्त और जीवनसे संतप्त किन्तु अक्षय वात्सल्य-वरदानमयी भारतीय नारी' होती है। उसीकी करुण-कहानी कही गयी है। भारतीय नारीकी वर्तमान समस्याओंका जितना मार्मिक विवेचन महादेवीने अपने संस्मरणोंमें तथा अपनी पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ'में किया है उतना हिन्दीके किसी भी दूसरे लेखकने नहीं किया। 'अज्ञेय' ने भी नारी-समस्याको खोलकर रखनेकी चेष्टा की है लेकिन जहाँ महादेवीने नारी-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न प्रश्नोंका विश्लेषण किया है वहाँ अज्ञेयने उसके कुछ ही पहलुओंपर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त अज्ञेयकी दृष्टि शहरमें बसनेवाली स्त्रियोंपर ही गयी है; महादेवीका दृष्टिकोण व्यापक है। उन्होंने नगर और गाँवोंके नारी-जीवनका सन्तुलित अध्ययन किया है और उनके सम्पर्कमें आनेका उन्हें अवसर भी मिल चुका है। व्यवसाय, जाति, अवस्था आदि सभी दृष्टियोंसे उन्होंने वर्त्तमान नारीका चित्रण किया है। भारतीय नारीके प्रश्नका कोई भी कोना अछूता नहीं रहा जहाँ महादेवीकी पैनी दृष्टि न गयी हो। नारीकी लेखनीसे नारीकी वस्तु-स्थितिकी मार्मिक अभिव्यंजना बड़ी ही स्वाभाविक और हृदयपर चोट करने-

---

१. आधुनिक कथा-साहित्य पृ. ३३.

वाली होती है क्योंकि नारी ही नारीके हृदयकी ऊर्मियोंको पढ़ सकती है। भारतीय नारीके बारेमें महादेवीका अध्ययन और निरीक्षण व्यापक और यथार्थ है। उन्होंने एक स्थानपर लिखा है कि 'मैंने भारतीय नारीको अनेक दृष्टिविन्दुओंसे देखनेका प्रयास किया है। अन्यायके प्रति मैं स्वभावसे असहिष्णु हूँ।' अतः उनकी कहानियोंमें उग्रता और कठोरताका होना स्वाभाविक ही है।

प्रेमचन्दके बाद महादेवीने ही अपनी कहानियोंके माध्यमसे ग्रामीण जीवनकी कुछ प्रमुख समस्याओंके प्रति अपनी सावधानता और सचेतनताका परिचय दिया है। लेकिन यह सच है कि प्रेमचन्दकी अपेक्षा महादेवीने केवल ग्रामीण नारी-जीवनकी दयनीय स्थिति, उसकी धर्मान्धता, आडम्बर, अन्ध-विश्वास इत्यादिपर ही दृष्टि-निक्षेप किया है। लेकिन जिस क्षेत्रको इन्होंने (महादेवी) ने अपनाया है उसको पूर्णता प्रदान की है। इस कलामें ये अद्वितीय हैं।

गाँवोंकी स्त्रियोंकी ज़िन्दगी सालके ३६५ दिन सदा एक लीकपर चल रही है। उषा-कालमें चक्कीकी घरघराहटके साथ इनका कण्ठ फूटता है और क्रमशः पारिवारिक परिस्थितियोंके अनुसार जलाशयोंमें पानी भरकर लाने, रोटी बनाने, बरतन माँजने, खेतोंमें जाकर घास काटकर लाने और रातमें गृहस्थीका काम-काज सहेजनेके बाद इनकी आँखें निद्राके लिए कहीं बन्द हो पाती हैं। इनका जीवन इतना व्यस्त है कि इन्हें मनोरंजनकी सामग्रियोंका उपयोग करनेके लिए अवकाश ही नहीं मिलता। इनका जीवन मशीनवत् है–रोज-रोज एक ही काम, एक ही व्यापार। इसके अतिरिक्त ग्रामीण स्त्रियाँ जरूरतसे ज़्यादा धार्मिक होती हैं। इनकी यह धार्मिकता अंध-भक्ति और अंध-विश्वासके उच्च शिखरपर पहुँच गयी है। भावनाकी बहुलताने इनके विवेककी हत्या कर दी है। ये ग्रामीण स्त्रियाँ, शिक्षाके अभावमें तमाम धार्मिक आचार-विचारोंका यथार्थ रहस्य समझे बिना, केवल पूर्व खचित लीकपर चल रही हैं। अंध-विश्वासकी मोह-मायामें पड़कर लम्पट साधुओंके वशीभूत होकर न केवल अपने आभूषणोंको खो देती है, बल्कि कभी-कभी तो उन्हें आचरण-

चरित्रसे भी हाथ धो देना पड़ता है। अंध विश्वासकी चरम सीमा तब देखी जाती है जब कोई ग्रामीण स्त्री, अदृश्यके हाथोंमें पड़कर, अपने प्राणोंके प्रतिबिम्ब संतान तककी बलि चढ़ा देती है। महादेवीको किसी भी युवती स्त्रीका वैधव्य बहुत अखरता है। 'घीसा' में लेखिकाने एक उपेक्षिता-मानिनी विधवाका बड़ा ही करुण चित्रण किया है। आस्तिकतामें अडिग विश्वास रखनेवाली महादेवीने इनमें 'भगवानकी असहिष्णुता' और 'क्रूरतम नियति' पर कठोर व्यंग-वाण छोड़े हैं। गाँवोंमें विधवाओंकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति दयनीय होते हुए भी वहाँकी स्त्रियाँ आज भी भाग्य और भगवान्के सहारे सड़े-गले पुराने शास्त्र-सम्मत नियमोंकी लीकपर चल रही हैं। घीसा-की माँ अपनी जवानीमें विधवा हो जाती है। पतिकी मृत्युके ६ महीने बाद घीसाका जन्म होता है। गाँववालोंकी नज़रोंमें वह कलंकित है। वह सुन्दर है, जवान है, पर है एक गर्बीली नारी। गाँवके अनेक विधुर और अविवाहित पुरुषोंने उसकी जीवन नैया पार लगानेका उत्तरदायित्व लेना चाहा परन्तु उसने केवल उत्तर ही नहीं दिया प्रत्युत उसे नमक-मिर्च लगाकर तीता भी कर दिया, कहा—हम सिंवके मेहरारू होइके सियारनके जाब'। और बिना स्वर-तालके आँसू गिराकर, बाल खोलकर, चूड़ियाँ फोड़कर और बिना किनारेकी धोती पहनकर उसने बड़े घरकी विधवाका स्वाँग भरना आरम्भ किया। उसका प्यारा बेटा घीसा नाटकीय जीवन बिताकर ज्यों-त्यों बड़ा होता है। महादेवीने इसका बड़ा ही मार्मिक और यथार्थ चित्र खींचा है—'पक्का रंग पर गठनमें और अधिक सुडौल मलिन मुख जिसमें दो पीली पर सचेत आँखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं। कसकर बन्द किये हुए पतले होठों-की दृढ़ता और सिरपर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालोंकी उग्रता उसके मुखकी संकोच-भरी कोमलतासे विद्रोह कर रही थीं। वात्सल्यके प्रति महादेवीके हृदयमें अक्षय प्रेम है और विधवाके लिए अपार सहानुभूति। इनकी समस्त कहानियाँ इन्हीं दो बातोंको आधार बनाकर चलती हैं। महादेवीकी दृष्टिमें आज-के भारतीय गाँवोंमें भावुकता, अंध-विश्वास और धर्मान्धताका भूत ताण्डव-नर्तन कर रही है, जिससे वहाँका समस्त वातावरण विषाक्त और जर्जर हो

गया है। वहाँ आज विवेकपूर्ण विद्रोह—विचारोंकी क्रान्ति—की आवश्यकता है। इसके बिना ग्रामीण नारीका जीवन दुःखमय बना रहेगा। महादेवीने 'घीसा'में नारीकी विवशता, बालकोंकी उच्छृंखला तथा अज्ञानताके नैपथ्यमें समाजके घोर अत्याचारका दर्शन किया है। इसीलिए कहानियोंमें इनकी भावनाएँ उग्र और कठोर हो उठी हैं। गाँवके लोग निर्दोष हैं, इसलिए वे अत्यधिक भावुक हैं और भावुक इसलिए हैं वे रुढ़ि-ग्रस्त परम्पराके पुराने सड़े-गले धार्मिक संस्कारोंकी जंजीरोंसे जकड़े हैं। घीसाके भगवान हैं पर कठोर और असहिष्णु। उसकी माँको नारकीय जीवन बिताना स्वीकार है, लेकिन अपनी किस्मतको बदलनेके लिए किसी दूसरेको अपना जीवन-साथी चुनना पसन्द नहीं। वह समाजमें कलंकिता और उपेक्षिता है लेकिन उसे इस बातका संतोष है कि नियति और भगवान्‌ने उसके ललाटपर ऐसा होना ही लिख दिया था। वह करे तो क्या। उसके पास अपना व्यक्तित्व ही कहाँ है।

महादेवीकी कहानी-कला—हम कह आये हैं कि महादेवीकी कहानियाँ, सच्चे अर्थमें कहानियाँ नहीं हैं, संस्मरण हैं। इसलिए इनकी आलोचना कहानीके तत्त्वोंके आधारपर नहीं की जानी चाहिये। 'घीसा' महादेवीकी कहानियोंमें एक प्रशंसित रचना है। यह संस्मरणका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कहानीको पढ़कर ही हम लेखिकाकी संस्मरण-कला तथा कहानी-कलासे अच्छी तरह अवगत हो सकते हैं। इसके सम्बन्धमें श्रीयुत रायकृष्णदासका स्पष्ट कहना है कि 'यह वस्तुतः एक संस्मरण है, किन्तु इसे हम कहानीकी परिधिमें ले सकते हैं।' जीवनके प्रति जब लेखककी गम्भीर अनुभूति क्रियाशील होती है तब वह 'अभिव्यञ्जनाके लिए रास्ता बना ही लेती है। यह अनुभूति जीवनके वास्तविक चरित्रोंके प्रति भी जगती है और उसकी कुछ विशेष घटनाओंके प्रति भी। संस्मरण जीवनकी सत्यता तथा वास्तविकताकी अनुभूतिमय अभिव्यक्ति है, इसमें कल्पनाके लिए कम-से-कम स्थान है। कहानी और संस्मरणमें इतना ही अन्तर है कि जहाँ कहानीमें कल्पनाकी स्वच्छंद उड़ान भरी जा सकती है वहाँ संस्मरणमें इसके लिए कम गुञ्जाइश है। इसमें (संस्मरणमें) कल्पनाका स्थान पात्र या घटनाके प्रति हुई प्रतिक्रियापर लेखक

की टिप्पणी (Comment) ग्रहण करती है। कहानीमें टिप्पणी या आलोचनाके लिए बहुत कम स्थान रहता है। यह एक ऐसी कला है जिसमें लेखकको अपनी ओरसे कम कहना पड़ता है, संस्मरणमें अपनी ओरसे बहुत कुछ कहना पड़ता है। अतएव कहानीकी शैली सांकेतिक है तो संस्मरणकी विश्लेषणात्मक। यदि कहानीकी सफलता चित्रणमें तो संस्मरणकी सफलता, वर्णनमें। कलाकी दृष्टिसे कहानी संस्मरणकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इतना होते हुए भी संस्मरण-का जितना प्रत्यक्ष प्रभाव पाठकके मनपर पड़ता है उतना कहानीका नहीं। महादेवीके 'घीसा' और अज्ञेयके 'रोज'के प्रभावमें अन्तर है। दोनोंमें नारीकी दुरवस्थाकी तस्वीर खींची गयी है। इतनी समता होते हुए भी महादेवीकी नारी जितनी यथार्थ, स्वाभाविक और सजीव है उतनी अज्ञेयकी मालती नहीं है। घीसाकी माँ जैसी स्त्रियाँ हम रोज देखते हैं, लेकिन मालती-जैसी नारी कम ही देखनेको मिलती है। दोनोंके नारी-चित्रणमें स्वाभाविकता तथा विश्वसनीयता है लेकिन जहाँ अज्ञेयने नारीके व्यथित हृदयकी दबी भावनाओंको सतहपर लाने की चेष्टा की है वहाँ महादेवीने उसके बाह्य जीवनकी जर्जरताका वर्णन किया है; उसके हृदय-प्रदेशके तुमुल संघर्षको वाणी नहीं दी है। 'घीसा' यदि कहानी है तो इसलिए कि उसमें एक व्यक्तिका चरित्र-चित्रण किया गया है क्योंकि चरित्र-चित्रण कहानी-कलाका एक प्रधान तत्व है। इसलिए यह कहानी चरित्रकी प्रधानता लिए हुए है। घीसाके चरित्रके प्रखर प्रकाशके सामने घटनाएँ नगण्य और गौण हैं। जिन घटनाओंका वर्णन लेखिकाने किया है वे उनके जीवनकी अनुभूत सत्य हैं। सारी घटनाएँ इनकी आँखोंके सामने ही घटी थीं। इसलिए यह संस्मरण है। अतीतके धूमिल चित्रोंकी साकार अभिव्यक्ति संस्मरण है। अतीतकी स्मृतियाँ सुखद और दुःखद दोनों होती हैं। लेकिन महादेवीकी स्मृतियाँ वेदना-विह्वल हैं क्योंकि उन्हें वेदनासे बेतरह प्रेम है। इनका संस्मरण युग-युगकी नारीकी वेदनाका नवीनतम संस्करण है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीने ठीक ही कहा है कि 'महादेवी' का रेखा-चित्र 'संस्मरणमें कहानी है, कहानीमें संस्मरण।' शैलीकी इस विचित्रताके कारण इनके संस्मरण कहानी-संग्रहमें स्थान पाते हैं। 'घीसा' भी

एक ऐसी ही रचना है । यह रचना प्रसिद्ध अंग्रेजी-संस्मरण-लेखक चार्ल्स-लैम्ब (Charles Lamb) के व्यक्तिगत निबन्ध (Personal Essay) से किसी तरह घटकर नहीं है । यदि हम कहें कि महादेवीके संस्मरणोंमें लैम्ब (Lamb) का दर्शन होता है तो कोई अत्युक्ति न होगी । उसने अपने प्रसिद्ध निबन्ध ड्रीम चिल्ड्रेन (Dream children) में अपने पारिवारिक-जीवनकी पूर्व स्मृतियोंको साकार बनानेकी चेष्टा की है । उसी तरहका प्रयास हम महादेवीके संस्मरणोंमें पाते हैं । इसीलए ये निबन्ध, कहानी, रेखा-चित्र सब-कुछ मालूम होते हैं । साहित्यकी यह शैली लेखिकाकी कलाकी अपनी देन है ।

महादेवीकी शैली कवित्वमय है, किन्तु खलनेवाली नहीं, क्योंकि वह दुलहिनकी भाँति अवगुण्ठित और अलङ्कारोंके बोझसे लदी-दबी नहीं है । नवीन उपमा, भाषाकी नयी सजधज, नयी वाक्यावलियाँ—सब-कुछ इनकी अपनी है । उदाहरणार्थ—'गाँवका एक नन्हा, मलिन, सहमा, विद्यार्थी एक छोटी लहरके समान उनके जीवन-तटको अपनी सारी आर्द्रतासे छूकर अनन्त जलराशिमें विलीन हो गया है ।' इन पंक्तियोंमें कितनी सुन्दर करुण-भावनाओंकी अभिव्यक्ति हुई है ।

महादेवीकी चित्र-कला कहानी-कलामें व्याप गयी है । शब्द-चित्र उपस्थित करनेमें इनकी कला बड़ी कुशल है । घीसाका रूपविधान बड़ा सुन्दर हुआ है । गाँवकी स्त्रियोंका यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है ।

महादेवीकी गद्य-भाषा नवीन, शैली अद्भुत और अभिव्यंजना सुघर है ।

———

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१५	Wake	Make
४	उद्धरण	कहानी के तल	कहानी कला
१४	१४	Vigueltes	Vignettes
,,	२४	Viquettes	Viguettes
२८	११	Talcs	Tales

वाणी-विहार
बनारस